कबीर साहेब

का

बीजक

सम्पादक

हंसदास शास्त्री, महाबीर प्रसाद

कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति

मु० पो० हरक, जिला बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशक
महाबीर प्रसाद प्रकाशन मंत्री
कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति
मु० पो० हरक, ज़ि० बाराबंकी

प्रथमवार सम्वत् २००७ विक्रम
मूल्य ५।)

मुद्रक
पंडित बिहारीलाल शुक्ल
शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ

प्राक्कथन

कबीर पर प्रामाणिक साहित्य की बहुत कमी है। उनकी प्रकाशित सभी रचनाएँ प्रामाणिक नहीं कही जा सकतीं। विभिन्न प्रतियों में प्राप्त शब्दों तथा भाषा के रूपों में बड़ा भेद है। कुछ ग्रंथ, जैसे कबीर ग्रंथावली, संत कबीर आदि प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्रकाशित हुए और प्रति का यथार्थ रूप ही उन में मिलता है। संपादकों ने इन के संशोधन या रूप-विपर्य्यय का कोई प्रयत्न नहीं किया, परन्तु, इस के साथ ही जो अन्य बहुतेरे ग्रन्थ कबीर के नाम से प्रकाशित हुए हैं जिसमें भाषा का नितान्त आधुनिक रूप ही देखने को मिलता है और जो कबीर की निजी भाषा का रूप नहीं कहा जा सकता। उसका कारण एक तो यह है कि मौखिक वाणियाँ होने के कारण उनके शिष्यों ने अपनी भाषा के रूप में उन्हें ढाल लिया है और दूसरा यह कि लोगों (लेखकों और पाठकों) ने कबीर के अर्थ की ओर विशेष ध्यान रखा है शब्दों पर उतना नहीं। अतः एक ही अर्थ देने वाले भी प्रायः विभिन्न पाठ उन की साखी, सबदी और रमैनियों के हमें देखने को मिलते हैं। कबीर की रचनाओं का प्राचीन और प्रामाणिक पाठ हमारी पहली आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के बिना न तो अधिकार पूर्वक उनकी भाषा के ही रूप पर कुछ कहा जा सकता है और न उनके भावों और विचारों की प्रामाणिकता और तारतम्यता ही दृढ़ हो पाती है। साथ ही साथ एक और बड़ी हानि यह हुई है कि इस रचना-पाठ सम्बन्धी अप्रामाणिकता के कारण कबीर के भाषा-सम्बन्धी अधिकार पर विरोधी मत देखने को मिलते हैं। कुछ तो उनकी भाषा को शिथिल और गँवारू कह कर उन्हें काव्य के क्षेत्र में असम्मानित करने का प्रयत्न करते हैं और कुछ उनके भाषा सम्बन्धी असाधारण अधिकार की घोषणा करते हैं। अतः प्रथम आवश्यकता प्रामाणिक पाठों वाली कबीर की रचनाओं की विभिन्न प्रतियों के प्रकाशन की है। और इस दिशा में अभी कुछ अधिक कार्य नहीं हो पाया। जिसके प्रमुख कारण यह हैं; प्रथम तो यह कि इस प्रकार की प्रतियाँ जिन किन्हीं सज्जनों के पास हैं, वे न तो स्वयं उन्हें प्रकाशित करने की इच्छा रखते हैं और न दूसरों को ही यह कार्य करने के लिए देते हैं और द्वितीय यह कि इस प्रकार की कठिनाई एवं ऐसे साहित्य के प्रकाशन में अधिक आर्थिक आशा न होने

के कारण प्रकाशक भी कुछ अधिक उत्साह नहीं दिखाते । जो कुछ हो, कबीर की रचनाओं के प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर प्रकाशित पाठों की आवश्यकता सर्वमान्य है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'बीजक' के संपादकों का इस प्रकार का प्रयास नहीं जो ऊपर कथित आवश्यकता की पूर्ति करता हो । परन्तु, उसका विशेष महत्व अन्य दृष्टियों से अवश्य है । विशेषता सम्बन्धी पहली बात तो यह है कि इस बीजक का सम्पादन एक व्यक्ति ने नहीं किया, जिसका अपना निजी दृष्टिकोण ही प्रधानरूप से व्याप्त हो, वरन् तीन व्यक्तियों ने किया है और वे तीनों ही कबीर पंथी हैं । श्री हंसदासजी शास्त्री एक कबीर पंथी मठ के अध्यक्ष हैं, श्री उदयशङ्करजी शास्त्री कबीरपंथी महन्त श्री गुरुशरणदासजी के पुत्र हैं । और श्री महावीरप्रसाद जी कबीरपंथ में दीक्षित हैं । ऐसी दशा में भाव और विचारधारा की दृष्टि से ये बानियाँ साम्प्रदायिक परंपरा से सम्मत होने के कारण महत्वपूर्ण हैं । एक और दृष्टि से इस बीजक की प्रामाणिकता है । इस में अब तक प्रकाशित १८,१९ बीजकों के आधार पर शब्दों और भाषा का रूप स्थिर किया गया है । साथ ही साथ (संपादकों के कथनानुसार) इस के रूप निर्माण में कतिपय कबीरपंथी स्थानों से प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों से भी सहायता ली गई है जो श्री उदयशङ्करजी शास्त्री के संग्रहालय में हैं । यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त प्रतियाँ कितनी पुरानी हैं । संख्या और कुछ शब्दों का मिलान कबीर चौरा, काशी की हस्तलिखित बीजक की प्रति से भी किया गया है ।

दूसरी बात यह है कि शब्दों का रूप ग्रहण और स्थिर करने में प्रमुख रीति से ध्यान बोधगम्यता का रखा गया है । इस दृष्टि से भाषा की प्रामाणिकता तो कम हो जाती है, किन्तु पाठकों अथवा पाठनकारों को अपनी अटकल से शब्दों के रूप गढ़कर अर्थ करने और समझने के कार्य में कुछ सुगमता हो जाती है । इस दृष्टि से यह विशेष उपादेय है । प्रस्तुत संग्रह में ऐसा जान पड़ता है कि भाषा के अवधी रूप को विशेषतः सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है । और इसका कारण संपादकों का इसके प्रति मोह किन्हीं अंशों में हो सकता है । इस का यह अर्थ नहीं है कि इसके अन्तर्गत मनगढ़े शब्दों की भरती है, वरन् विभिन्न बीजकों में प्राप्त शब्द के विविध रूपों में जो अधिक संभव जान पड़ा है उसी को इसमें अपनाने का प्रयत्न किया गया है ।

तीसरी बात, इस बीजक के साथ अंतमें संलग्न इस के अध्ययन को

सुगम बनाने वाली परिशिष्टें है । प्रथम परिशिष्ट, जो शब्दकोश है, मेरी दृष्टि में अधिक महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि, उसमें विशिष्ट निर्गुण शब्दावली की पूर्ण व्याख्या न होकर सामान्य शब्दों का अर्थमात्र दिया गया है। इसे यदि अलग निर्गुण शब्दकोश के रूप में विकसित किया गया होता तो संभवतः इसका अधिक महत्व होता। किसी भी ग्रंथ के साथ कोश की संलग्नता अधिक उपादेय नही होती, विशेष रूप से बड़े ग्रंथ के साथ। हाँ, अन्य परिशिष्टें महत्व की अवश्य हैं। परिशिष्ट (ख) के अन्तर्गत कथायें दी गई हैं जो अधिकांश पौराणिक हैं। इनमें कबीर की बानी में आये हुए कथात्मक संकेतों की आधार रूप कथायें दी गई हैं जिन्हें बिना जाने हम उनके भाव को पूर्णतया हृदयंगम नहीं कर सकते। परिशिष्ट (ग) में संख्यावाची शब्दों के अर्थ हैं, जिनके जानने की कबीर साहित्य के अध्ययन में बड़ी आवश्यकता रहती है। परिशिष्ट (घ) में योग-संबन्धी शास्त्रीय शब्दों की व्याख्या है। यही शब्द कबीर की भाषा को सार्वसधारण के लिए अधिक दुरूह बना देते हैं जो अन्यथा लोक प्रचलित भाषा ही है। इसमें कहा जा सकता है कि इनकी व्याख्या अधिक विस्तृत योगदर्शन आदि के आधार पर की जा सकती तो अच्छा होता। कोश के कारण इसके अधिक विस्तार का अवकाश सम्भवत: नहीं रहा। सभी शब्द भी नहीं आ पाये। अत: यह परिशिष्ट अधूरा ही रह गया। परिशिष्ट (ङ) में प्रतीकात्मक शब्दों के अर्थ दिये हुए हैं। कबीर ने अपने सूक्ष्म, गंभीर अनुभव (जिस अनुभव को प्राप्त करने पर वाणी गूंगी हो जाती है) को व्यक्त करने में अनेक अन्योक्तियों, रूपकों और प्रतीकों का सहारा लिया है। कहीं कहीं यह प्रतीकात्मक प्रकाशन बड़ा ही जटिल हो जाता है। अतः इस दिशा में उन प्रतीकों अथवा अप्रस्तुत उपमानों के प्रस्तुत भाव देना बड़ा ही महत्वपूर्ण है। हाँ इतना अवश्य है कि इन अप्रस्तुतों के प्रस्तुत अर्थों पर थोड़ा बहुत मतवैषम्य संभव है। यह इस प्रकार का प्रथम व्यवस्थित प्रयास है, अतः स्तुत्य है और सांप्रदायिक ज्ञान-संपन्न व्यक्तियों का है अतः और भी पठनीय है।

इस प्रकार यह बीजक कबीर-साहित्य के अन्तर्गत अपनी विशेषताएँ लेकर प्रकाशित हो रहा है। कबीर-संबंधी ग्रन्थों की यद्यपि एक लम्बी सूची है, फिर भी यही कहा जा सकता है कि उनके किसी भी पक्ष का सर्वांगीण अध्ययन नहीं हो पाया है। कबीर का अध्ययन, सामाजिक, दार्शनिक, सांप्रदायिक, साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक दृष्टियों से अलग अलग हो सकता है और इन सभी प्रकार के अध्ययनों को प्रारम्भ करने के पूर्व सुदृढ़ आधार के रूप

में आवश्यकता इस बात की है कि कबीर की प्रामाणिक वाणी और उसके एक एक शब्द का निश्चित, प्रामाणिक रूप और अर्थ स्थिर और सिद्ध के निमित्त बहुत से प्रयत्न हो चुके हैं और बहुत से अभी हो रहे हैं। यह भी इसी प्रकार का प्रयत्न है अतः हमारे लिये स्वागत की वस्तु है। विद्यार्थियों के लिए इसकी परिशिष्टों की विशेष उपयोगिता है। आशा है संपादक त्रयी इस प्रकार के और कार्यों द्वारा हमारा ज्ञान-वर्द्धन करते रहेंगे।

—भगीरथ मिश्र

डा० भगीरथ मिश्र,
एम० ए० पी० एच० डी०
लखनऊ विश्व विद्यालय

दो शब्द

कबीर साहेब पन्द्रहवीं शताब्दी के एक महान सुधारक, त्यागी महात्मा, संत तथा कवि हुए हैं। यों तो आप की वाणी के कई ग्रन्थ हैं, परन्तु बीजक आप का एक मुख्य ग्रन्थ है। सम्प्रदाय के सन्तो तथा अन्य विद्वानों ने इसकी प्रामाणिकता स्वीकार की है। इस ग्रन्थ का अनुवाद कई भाषाओं में हुआ है। अब तक कई विद्वानों और सन्तों ने इसकी टीका भी की है कुछ कबीर पंथी स्थानों पर अठारहवीं शताब्दी तक की इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी पाई जाती हैं। परन्तु नहीं मालूम उस समय की भाषा न समझने के कारण या लेखन प्रमाद वश अथवा अपने अपने मंतव्य के अनुसार खींचतान कर अर्थ तथा रूप निश्चित करने के कारण अधिकांश प्रतियों में अनेक शब्दों के रूप और के और पाए जाते हैं। जैसे—

"दियन खताना किया पयाना मंदिल भया उजार।
मरि गये ते मरि गये बांचे बाचनि हार। र० ६६ ॥"

में दियन खताना के स्थान पर कुछ प्रतियों में दिया न खत तन कर के दिया न खाया आदि खींचतान कर अर्थ कर दिया है। इसी प्रकार का हेर फेर और बहुत से पदों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द देखिए—मवासी[1] का भौ आसा, कलिहि[2] गहि का कलिगहि, कलालै[3] का कुलाल, कोन मुवा[4] का कौन मुवा, बेठ[5] का पेट, पानिप चाइहु[6] का पानि पचाहु, ओरै[7] का और आदि, परिवर्तित रूप पाए जाते हैं, जो प्रायः प्रसंगानुसार ठीक नहीं जंचते हैं।

अतः इस प्रकार के पाठ विपर्य्यय को सुधारने के आशय से यह संशोधित मूल प्रकाशित किया गया है। इसमें उपर्युक्त सभी प्रकार की त्रुटियों को यथाशक्ति दूर करने का प्रयास किया गया है। इस का संशोधन लगभग २८ बीजक[8] प्रतियों के आधार पर किया गया है। पाठ संशोधन में कोई शब्द अपनी ओर से गढ़ा नहीं गया हैं, किसी न किसी बीजक प्रति का सहारा अवश्य लिया गया है। पाठ वही रखा गया है जो भाव, प्रसंग तथा अर्थ के विचार से उपयुक्त समझा गया है।

१—र० ६६। २—स० ८। ३—स० २१। ४—स० ४५। ५—क० १। ६—सा० ११। ७—सा० १८४। नोट—इनके शुद्ध रूप का अर्थ कोश में देखिए। ८—देखो सहायक ग्रन्थों की सूची।

जिस प्रकार शब्दों के रूप में हेर फेर पाया जाता है उसी प्रकार विभिन्न शब्दों के अर्थ में भी मत भेद पाया जाता है। इस पद में देखिए—

"कब दत्ते मवासी तोरी, कब सुकदेव तोपची जोरी।
नारद कब बन्दूक चलाई, व्यासदेव कब बंब बजाई"।

मवासी शब्द हिन्दी मवास शब्द से बना है। जिसका अर्थ गढ़ होता है अतः मवासी का अर्थ गढ़ी होगा। गढ़ी तोड़ने का अर्थ प्रसंगानुसार ठीक भी लगता है। कुछ टीकाकारों ने इस शब्द को फारसी के मवेशी का बिगड़ा हुआ रूप बताया है और अर्थ शत्रु किया है, जो किसी भी दृष्टि से इस प्रसंग पर ठीक नहीं है। कुछ प्रतियों में मवासी शब्द को बदल कर भी आसा कर दिया है।

शब्दों के रूप और अर्थ विपर्य्यय को देख कर बीजक पढ़ते समय विचार उठा कि इस का एक कोश होता जिसमें भाषा और भाव के विचार से शब्दों के रूप और अर्थ पर निष्पक्ष भाव से विचार किया गया होता तो अच्छा होता। संयोग वश इसी बीच श्री विचारदासजी शास्त्री वर्तमान आचार्य कबीर धर्मस्थान खरसिया मध्यप्रदेश मेरे यहाँ हरक पधारे। मैंने उन से अपना विचार प्रकट किया। पूज्य श्री शास्त्री जी ने कहा कि मैंने काशी के श्री उदय शङ्करजी शास्त्री से इस कार्य को करने के लिये कहा है और उन की लिखी कुछ प्रारम्भिक चिटें भी दिखाया। उसी वर्ष खरसिया में होने वाले कबीर मेला से लौटते समय मैं श्री उदय शङ्करजी शास्त्री के साथ काशी आया। कोश के विषय में शास्त्री जी से बातचीत हुई उन्हों ने यह भार मुझपर छोड़ा। अतः मैंने हरक आकर कोश तैयार किया। पुनः श्री हंसदासजी शास्त्री के साथ काशी गया वहाँ कोश तथा मूल बीजक का संशोधन किया गया। संशोधित कोश काशी के प्रसिद्ध कोशकार श्री रामचन्द्र जी वर्मा को दिखाया गया, और उन से आवश्यक परामर्श लिया गया।

प्रथम परिशिष्ट अर्थात् कोश में शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

१—मूल रूप में शब्द।
२—प्रयोग के अनुसार व्याकरण।
३—कोष्ठक में वह शब्द है जिस से मूल शब्द उद्धृत किया गया है।
४—पद में आए हुए भाव के अनुसार अर्थ।
५—पुनः यदि व्याकरण और भाषा तथा अर्थ परिवर्तन हुआ है तो वह।
६—आवश्यक शब्दों का आध्यात्मिक अर्थ।
७—अप्रचलित तथा कठिन शब्दों के उदाहरण।

एक शब्द के कई अर्थ केवल इस विचार से दिये गये हैं, क्यों कि विभिन्न पदों में वह विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। अप्रचलित शब्दों का उदाहरण देने का यह आशय है कि विभिन्न कवियों ने कबीर साहेब द्वारा प्रयोग किये गए शब्द को किस रूप में प्रयुक्त किया है साथ ही उनके पूर्व, समकालीन तथा कुछ ही समय बाद होने वाले कवियों के उदाहरण से उस समय की भाषा का रूप भी स्पष्ट सा हो जाता है। सामान्य शब्दों के अर्थ अन्य प्रान्त वालों की सुविधा के विचार से दिये गए हैं।

कोश के बाद का परिशिष्ट अंतर्गत कथाओं तथा परिचयों का है। इसमें कथा और परिचय का केवल उतना ही अंश दिया गया है जो बीजक पदों से संबंध रखता है। यदि कोई कथा किसी व्यक्ति विशेष से संबंधित है जिसका नाम बीजक में आया है तो वह उस व्यक्ति के परिचय के साथ जोड़ दी गई है।

इसके बाद दो परिशिष्टें संख्यावाची और योग सम्बन्धी शब्दों की हैं। इन में संख्यावाची शब्दों के अर्थ अध्यात्मवाद तथा योग सम्बन्धी शब्दों की व्याख्या हठयोग तथा संत मत के अनुसार की गई है।

अंतिम परिशिष्ट रूपक, उल्टवांसी तथा प्रतीकात्मक शब्दों का है। कबीर साहेब ने अपने विचारों को अनेक पदों में रूपकों द्वारा प्रकट किया है। बीजक में खेती, शिकार, व्याह, राजा, चरखा, करिगह, बादल, वर्षा, नाव, कुम्हार, कलाल, भाठी, वृक्ष आदि के अनेक रूपक पाए जाते हैं। उल्टवांसियों के लिये तो आप प्रसिद्ध ही हैं। कहीं पर तो हाथी जैसे विशालकाय का चींटी के मुख में प्रवेश करना, कहीं समुद्र का गंगा में समा जाना, कहीं धरती के वर्षने से बादल का भीगना, और कहीं पर सूखे सरवर का हिलोरें लेना आदि कितनी ही उल्टवांसियों का प्रयोग आपने किया है। अतः ऐसे विपरीत भाव वाले शब्दों तथा रूपकों का अर्थ भी दिया गया है। कबीर साहेब ने कुछ वस्तुओं को प्रतीक के रूप में माना है, जैसे नारी को माया का, हंस को जीवात्मा का, कपास को सद्गुण का, सिंह को दुर्जन का इत्यादि, अतः ऐसे प्रतीकात्म शब्दों के अर्थ भी दिये गए हैं।

अगाध ज्ञान सम्पन्न कबीर साहेब के विचारों को समझने के लिये चतुर्दिक ज्ञान अपेक्षित है। अतः मुझ जैसे अल्पज्ञ द्वारा किये गए इस प्रथम प्रयास में रह गई त्रुटियों के लिये योग्य पाठक क्षमा करेंगे।

महावीर प्रसाद

धन्यवाद

सर्व प्रथम श्री डा० भगीरथ मिश्र एम० ए० पी० एच० डी० लखनऊ विश्वविद्यालय को हार्दिक धन्यवाद है जिन्होंने आलोचनात्मक प्राक्कथन लिख कर मुझको कृतज्ञ किया है। बाबू जगत नारायण जी और बच्चूलाल जी को जिनकी आर्थिक सहायता से यह ग्रन्थ प्रकाश में आसका है कोटिशः धन्यवाद है। बाबू जगत नारायण जी एक बड़े ही उत्साही और संत साहित्य के प्रेमी व्यक्ति हैं। पं० श्री दयाराम जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य जिन्होंने शरीर की बहत्तर ग्रंथियाँ और ब्राह्मणों के अठारह भेद आदि खोजने में बड़ी सहायता की है उन को तथा परमोत्साही नवयुवक पुत्तूलाल वर्मा विद्यार्थी लखनऊ विश्वविद्यालय को विशेष धन्यवाद है। पुत्तूलाल वर्मा ने विवाद ग्रस्त शब्दों के व्याकरण आदि के विषय में परामर्श देकर बड़ी सहायता की है। श्री पुरुषोत्तम जी भार्गव का नाम भी उल्लेखनीय है आप ने समय समय पर उचित परामर्श देकर पुस्तक को सुन्दर बनाने में सहायता की है। अतः आप को भी सादर धन्यवाद है। प्रिय प्रमोद नाथ तथा दीन दयाल सिंह आदि विद्यार्थियों को और बनवारी लाल को सस्नेह धन्यवाद है। इन लोगों ने पुस्तक निर्माण से प्रकाशन तक समय समय पर यथा-योग्य सहायता की।

अंत में उन सभी सज्जनों को धन्यवाद है जिन्होंने किसी भी प्रकार मेरे इस कार्य को सफल बनाने में सहायता की है।

महावीर प्रसाद

संकेताक्षरों की सूची

अ०—अरबी ।
अनु०—अनुकरण शब्द ।
अप०—अपभ्रंस ।
अव्य०—अव्यय ।
आ०—आध्यात्मिक अर्थ ।
उ०—उदाहरण ।
उप०—उपसर्ग ।
क—कहरा ।
क० ग्र०—कबीर ग्रन्थावली ।
के०—केशवदास ।
क्रि०—क्रिया ।
क्रि० अ०—क्रिया अकर्मक ।
क्रि० प्र०—क्रिया प्रयोग ।
क्रि० स०—क्रिया सकर्मक।
गि०—गिरधर दास ।
गो०—गोरख बानी ।
ग्रा०—ग्रामीण भाषा ।
चा—चाचर ।
ज़ा०—जायसी ।
तु०—तुलसीदास और तुर्की भाषा ।
दे०—देखो ।
देश०—देशज ।
प०—परिशिष्ट ।
पर्या०—पर्याय ।
पा०—पाठभेद ।
प्रा० दो०—प्राहुड़ दोहा ।
पु०—पुल्लिंग ।
प्रत्य०—प्रत्यय ।
प्रा०—प्राकृत भाषा ।
प्रे०—प्रेरणार्थक ।
फ़ा०—फ़ारसी ।
ब—बंसत ।
बहु०—बहु वचन ।
बि—बिरहुली ।
बि०—बिहारी कवि ।
बे—बेलि ।
भाव०—भाव वाचक ।
मि०—मिलाओ ।
मुहा०—मुहाविरा ।
यौ०—यौगिक ।
र—रमैनी ।
रघु०—रघुराज ।
रघु० दा०—रघुनाथ दास ।
वि०—विशेषण ।
वि० सा०—विश्राम सागर ।
व्या०—व्याकरण ।
सं०—संस्कृत ।
सं०—संज्ञा ।
संयो०—संयोजक अव्यय ।
स—सब्द ।
स०—सकर्मक ।
सर्व०—सर्वनाम ।
सा—साखी ।
सू०—सूरदास ।
स्त्री०—स्त्री लिंग ।
हिं०—हिंदी भाषा ।
हि—हिंडोला ।

विषय-सूची

१—बीजक

मूल—रमैनी, शब्द, ज्ञानचौतींसा, बिप्रमतीसी, कहरा, बसंत, चांचर, बेलि, बिरहुली, हिंडोला, साखी।

२—प० क

कोश—मूल शब्द, व्याकरण, शब्द का शुद्ध रूप, शब्द किस भाषा का है, बीजक पदों से सम्बन्ध रखने वाला अर्थ; कठिन तथा अप्रचलित शब्दों के उदाहरण, आवश्यक शब्दों के आध्यात्मिक अर्थ।

३—प० ख

अंतर्गत कथाएँ तथा परिचय—बीजक पदों से सम्बन्धित कथाओं की व्याख्या तथा नामों और स्थानों का परिचय।

४—प० ग

संख्यावाची शब्द—बीजक में आए हुए संख्यावाची शब्दों का अर्थ।

५—प० घ

योग सम्बन्धी शब्द—योग से सम्बन्ध रखनेवाले शब्दों की व्याख्या, योग शास्त्र तथा संत मत के अनुसार।

६—प० ङ

रूपक उल्टवांसी तथा प्रतीकात्मक शब्द—रूपकात्मक शब्दों का पदों के अनुसार अर्थ; उल्टवांसी और प्रतीक के रूप में आए हुए शब्दों का अर्थ।

७—शुद्धी-पत्र।

८—सहायक ग्रन्थों की सूची।

भूल सुधार

प० (क) के पेज १२५ और प० (ख) के पेज २१ में साम का अर्थ (सीरिया) हो गया है इस के स्थान पर स्याम जो भारतवर्ष के पूर्व का एक देश है, होना चाहिए।

बीजक

रमैनी

अंतर जोति सब्द यक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।
ते तिरिये भग लिंग अनंता, तेउ न जाने आदि औ अंता॥
बाखरि एक बिधातैं कीन्हा, चौदह ठहर पाट सो लीन्हा।
हरिहर ब्रह्मा महतो नाऊँ, तिन्ह पुनि तीनि बसावल गाऊँ॥
तिन्ह पुनि रचल खंड ब्रह्मंडा, छव दरसन छानबे पाखंडा।
पेटे न काहू बेद पढ़ाया, सुनति कराय तुरुक नहिं आया॥
नारी मोचित गर्भ प्रसूती, स्वाँग धरै बहुतै करतूती।
तहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्रान बियापै मोहू॥
एकहिं जनी जना संसारा, कौन ग्यान तें भयो निनारा।
भौ बालक भग द्वारे आया, भग भोगे ते पुरुष कहाया॥
अबिगति की गति काहु न जानी, एक जीभि कत कहौं बखानी।
जौ मुख होय जीभि दस लाखा, तौ कोइ आय महंतो भाखा॥

कहहिं कबीर पुकारि कै, ई ले[1] ऊ ब्यौहार।
एक राम नाम जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार॥१॥

जीव रूप एक अंतर बासा, अंतर जोति कीन्ह परगासा।
इच्छा रूप नारि अवतरी, तासु नाम गाइत्री धरी॥
तेहि नारी के पुत्र तीनि भैऊ, ब्रह्मा बिस्नु महेसुर नाँऊ।
फिरि ब्रह्मा पूछल महतारी, के तोर पुरुष केकरि तुम नारी॥
हम तुम तुम हम और न कोई, तुमहिं पुरुष हमहीं तोर जोई॥

पाठ भेद १—ई लयऊ, ई बैली।

बाप पूत की एकै नारी, एकै माय बिआय।
ऐसा पूत सपूत न देखा, जो बापहिं चीन्है धाय ॥२॥

प्रथम अरंभ कौन को भैऊ, दूसर प्रगट कीन्ह सो ठैऊ ॥
प्रगटे ब्रह्मा बिस्नु सिव सक्ती, प्रथमहिं भक्ति कीन्ह जिउ उक्ती।
प्रगटे पवन पानी औ छाया, बहु बिस्तार कै प्रगटी माया ॥
प्रगटे अंड पिंड ब्रह्मंडा, प्रिथिमी प्रगट कीन्ह नौ खंडा।
प्रगटे सिध साधक संन्यासी, ई सभ लागि रहे अविनासी ॥
प्रगटे सुर नर मुनि सभ झारी, ताही खोज परे सभ हारी ॥
जीव सीव सब प्रगटे, वै ठाकुर सब दास।
कबीर और जानै नहीं, एक राम नाम की आस ॥३॥

प्रथम चरन गुरु कीन्ह बिचारा, करता गावैं सिरजनिहारा।
करमै कै कै जग बौराया, सक्ति भक्ति कै बाँधिनि माया ॥
अद्‌बुद रूप जात कै बानी, उपजी प्रीति रमैनी ठानी।
गुनी अनगुनी अर्थ नहिं आया, बहुतक जने चीन्हि नहिं पाया ॥
जो चीन्है ताको निर्मल अंगा, अन चीन्हें नल भये पतंगा ॥
चीन्हि चीन्हि का गावहु बौरे, बानी परी न चीन्ह।
आदि अंत उतपति प्रलै, आपै ही कहि दीन्ह ॥४॥

कहाँ लै कहौं जुगन की बाता, भूला ब्रह्म न चीन्है बाटा।
हरिहर ब्रह्मा के मन भाई, बिबि अच्छर ले जुक्ति बनाई ॥
बिबि अच्छर का कीन्ह बंधाना, अनहद सब्द जोति परमाना।
अच्छर पढ़ि गुनि राह चलाई, सनक सनंदन के मन भाई ॥
बेद कितेब कीन्ह बिस्तारा, फैलि गैल मन अगम अपारा।
चहुँ जुग भक्तन बाँधल बाटी, समुझि न परी मोटरी फाटी ॥
भैं भैं प्रिथिमी दहुँ दिसि धावै, अस्थिर होय न औषध पावै।
होय भिस्त जौ चित न डोलावै, खसमहिं छोड़ि दोजख को धावै ॥

पूरब दिसा हंस गति होई, है समीप सँधि बूझै कोई।
भगता भगतनि कीन्ह सिंगारा, बूड़ि गैल सभ माँझहिं धारा ।।
बिनु गुरू ज्ञान दुंदि भई, खसम कही मिलि बात ।
जुग जुग सो कहवैया, काहु न मानी बात ।।५।।

बरनहुँ कौन रूप औ रेखा, दोसर कौन आहि जो देखा ।
ओंकार आदि नहिं बेदा, ताकर कहहु कौन कुल भेदा ।।
नहिं तारागन नहिं रबि चंदा, नहिं कछु होत पिता के बिंदा ।
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पौना, को धरे नाम हुकुम को बरना ।।
नहिं कछु होत दिवस निज राती, ताकर कहहु कौन कुल जाती ।।
सुन्न सहज मन सुमिरत, प्रगट भई एक जोति ।
ताहि पुरुष की मैं बलिहारी, निरालंब जो होति ।।६।।

तहिया होत पवन नहिं पानी, तहिया सिष्टि कौन उतपानी ।
तहिया होत कली नहिं फूला, तहिया होत गर्भ नहिं मूला ।।
तहिया होत विद्या नहिं बेदा, तहिया होत सब्द नहिं स्वादा ।
तहिया होत पिंड नहिं बासू, नहिं घर धरनी न गगन अकासू ।।
तहिया होत गुरू नहिं चेला, गम अगम न पंथ दुहेला ।
अबिगत की गति का कहौं, जाके गाँव न ठाँव ।
गुन बिहूना पेखना, का कहि लीजै नाँव ।।७।।

तत्तुमसी इन्ह के उपदेसा, ई उपनिषद कहैं संदेसा ।
ई निस्चै इन्हके बड़ भारी, वाही के बरन कहैं अधिकारी ।।
परम तत्तु का निज परमाना, सनकादिक नारद सुक जाना ।
जागबलिक औ जनक संबादा, दत्तात्रेय उहै रस स्वादा ।।
उहै राम बसिष्ठ मिलि गाई, उहै क्रिस्न ऊधौ समुझाई ।
उहै बात जो जनक दिढ़ाई, देह धरे बिदेह कहाई ।।

कुल अभिमाना खोइ कै, जियत मुवा नहिं होय।
देखत जो नहिं देखिए, अदिष्टि कहावै सोय ॥८॥

बाँधे अष्ट कष्ट नौ सूता, जम बाँधे अँजनी के पूता।
जम के बाहन बाँधे जनी, बाँधे स्रिष्टि कहाँ लौ गनी॥
बाँधे देव तैंतीसो कोरी, सँवरत लोह बंध गौ तोरी।
राजा सँवरै तुरिया चढ़ी, पंथी सँवरै नाम लै बढ़ी॥
अर्थ बिहूना सँवरै नारी, परजा सँवरै पुहुमी झारी।
बंदि मनावैं ते फल पावै, बंदि दिया सो देय।
कहैं कबीर ते ऊबरे, जो निस बासर नामहिं लेय ॥९॥

राही लै पिपराही बही, करगी आवत काहु न कही।
आई करगी भौ अजगूता, जन्म जन्म जम पहिरे बूता॥
बूता पहिरि जम करै समाना, तीनि लोक महँ करै पयाना।
बाँधै ब्रह्मा बिस्तु महेसू, सुर नर मुनि औ बाँधु गनेसू॥
बाँधे पौन पावक औ नीरू, चाँद सुरुज बाँधे दोउ बीरू।
साँच मंत्र बाँधिन्हि सम झारी, अमृत बस्तु न जानै नारी॥
अमृत बस्तु जानै नहीं, मगन भये सब लोय।
कहहिं कबीर कामो नहीं, जीवहिं मरन न होय ॥१०॥

आँधरि गुष्टि स्रिष्टि भौ बौरी, तीनि लोक महँ लागि ठगौरी।
ब्रह्मा ठगो नाग कहँ जारी, देवतन सहित ठगो त्रिपुरारी॥
राज ठगौरी बिस्तुहिं परी, चौदह भुवन केर चौधरी।
आदि अंत जाके जलकन जानी, ताकर डर तुम काहेक मानी॥
वै उतंग तुम जाति पतंगा, जम घर कियहु जीव को संगा।
नीम कीट जस नीम पियारा, विष को अमृत कहे गँवारा॥

पा० १—जनक न जानी। काहू न जानी। २—जाई, संहारी।

बिष के संग कौन गुन होई, किंचित लाभ मूल गो खोई ।
बिष अमृत गौ एकहिं सानी, जिन जाना तिनि बिष कै मानी ॥
कहा भये नर सूध बेसूधा, बिनु परचै जग बूड़ न बूझा ।
मति के हीन कौन गुन कहई, लालच लागे आसा रहई ॥

मुवा है मरि जाहुगे, मुये की बाजी ढोल ।
सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौ बोल ॥११॥

माटी कै कोट पषान कै ताला, सोई बन सोई रखवाला ।
सो बन देखत जीव डेराना, ब्राह्मन वैस्नव एकै जाना ॥
जौ रे किसान किसानी करई, उपजै खेत बीज नहिं परई ।
छाँड़ि देहु नर झेलिक झेला, बूड़े दोऊ गुरू औ चेला ॥
तीसर बूड़े पारथ भाई, जिन बन डाहो दवा लगाई ।
भूंकि भूंकि कूकुर मरि गयऊ, काज न एक सियार से भयऊ ॥

मूस बिलाई एक सँग, कहु कैसे रहि जाय ।
अचरज एक देखहु हो संतो, हस्ती सिंघहिं खाय ॥१२॥

नहिं परतीत जो यहि संसारा, दरब की चोट कठिन कै मारा ।
सो तौ सेषहु जाइ लुकाई, काहू के परतीत न आई ॥
चले लोग सब मूल गँवाई, जम की बाढ़ि काटि नहिं जाई ।
आजु काज है काल्हि अकाजा, चले लादि दिगंतर राजा ॥
सहज बिचारै मूल गँवाई, लाभ ते हानि होय रे भाई ।
वोछी मति चंदा[1] गौ अथई, त्रिकुटी संगम सामी बसई ॥
तबही बिस्नु कहा समुझाई, मिथुन आठ तुम जीतहु जाई ।
तब सनकादिक तत्तु बिचारा, जौं धन पावहिं रंक अपारा[2] ।
भौ मरजाद बहुत सुख लागा, यहि लेखे सब संसै भागा ॥

पा० १—चंद्रमा । २—जैसे रंक परा धन पाया ।

देखिंनि उतपति लागु न बारा, एक मरै एक करै विचारा ।
मुए गये की कोई न कहई, झूठी आस लागि जग रहई ॥
जरत जरत से बाँचिहो, काहे न करहु गोहारि ।
बिष बिषया कै खायहु, राति दिवस मिलि झारि ॥१३॥

बड़ सो पापी आहि गुमानी, पाखंड रूप छलो नर जानी ।
बाँवन रूप छलो बलिराजा, ब्राह्मन कीन कौन को काजा ॥
ब्राह्मन ही कीन्हा सब चोरी, ब्राह्मन ही को लागल खोरी ।
ब्राह्मन कीन्हो ग्रन्थ पुराना, कैसहु कै मोहिं मानुष जाना ॥
एक से ब्रह्मै पंथ चलाया, एक से हंस गोपालहिं गाया ।
एक से सिंभू पंथ चलाया, एक से भूत प्रेत मन लाया ॥
एक से पूजा जैनि विचारा, एक से निहुरि निमाज गुजारा ।
कोउ काहू को कहा[2] न माना, झूठा खसम कबीर न जाना ॥
तन मन भजि रहु मोरे भक्ता, सत्त कबीर सत्त है बक्ता ।
आपुहि देवा आपुहि पाती, आपुहि कुल आपुहि है जाती ॥
सर्वभूत संसार निवासी, आपहि खसम आपु सुख बासी ।
कहइत मोहिं भैल जुग चारी, काके आगे कहौं पुकारी ॥
साँचहिं कोइ न मानै, झूठा के संग जाय ।
झूठहिं झूठा मिलि रहा, अहमक खेहा खाय ॥१४॥

वोनई बदरिया परिगौ संझा, अगुआ भूले बन खंड मंझा ।
पिय अंते धनि अंते रहई, चौपरि कामरि माथे गहई ॥
फुलवा भार न लै सकै, कहै सखिन सौं रोय ।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥१५॥

चलत चलत अति चरन पिराना, हारि परे तहाँ अति रे सयाना ।
गन गंध्रप मुनि अंत न पाया, हरि अलोप जग धंधे लाया ॥

पा० १—देखत । २—हटा ।

गहनी बंधन बान न सूझा, थाकि परे तब कछुवो न बूझा।
भूलि परे जिउ अधिक डेराई, रजनी अंधकूप होय आई ॥
माया मोह उहाँ भर पूरी, दादुल दामिनि पौन अपूरी।
बरिसै तपै अखंडित धारा, रैनि भयावनि कछु न अधारा ॥

सबै लोग जहँड़ाइया, अंधा सबै भुलान।
कहा कोई नहिं मानै, सभ एकै माहिं समान ॥१६॥

जस जिउ आप मिलै अस कोई, बहुत धर्म सुख हिरदया होई।
जासों बात राम की कही, प्रीति न काहू से निर्बही ॥
एखै भाव सकल जग देखी, बाहर परे सो होय बिबेकी।
बिषै मोह कै फंद छोड़ाई, तहाँ जाय जहाँ काटै कसाई ॥
अहै कसाई छूरी हाथा, कैसहु आवै काटै माथा।
मानुप बड़े बड़ा होय आया, एकै पंडित सभै पढ़ाया ॥
पढ़ना पढ़हु घरहु जनि गोई, नहिं तौ निस्चै जाहु बिगोई।

सुमिरन करहु राम कै, छाँड़हु दुख की आस।
तर ऊपर धै चापिहैं, जस कोल्हू कोटि पचास ॥१७॥

अदबुद पंथ बरनि नहिं जाई, भूले राम भूली दुनियाई।
जौ चेतहु तौ चेतहु रे भाई, नहिं तौ जीव जमु लै जाई ॥
सब्द न मानै कथै ग्याना, ताते जमु दीयो है थाना।
संसै सावज बसै सरीरा, ते खायो अनबेधल हीरा ॥

संसै सावज सरीर महँ, संगहि खेलै जुआरि।
ऐसा घायल बापुरा, जीवहिं मारै झारि ॥१८॥

अनहद अनभव की करि आसा, देखहु यह बिपरीत तमासा।
इहै तमासा देखहु रे भाई, जहँवा सुन्न तहाँ चलि जाई ॥

पा० १—अहारा। २—काल।

सुन्नहिं बाँछे सुन्नहिं गयऊ, हाथा छोड़ि बेहाथा भयऊ।
संसै सावज सकल संसारा, काल अहेरी साँझ सकारा॥
सुमिरन करहु राम कै, काल गहे है केस।
ना जानहु कब मारिहै, का घर का परदेस॥१९॥

अब कहु राम नाम अबिनासी, हरि छोड़ि जियरा कतहुँ न जासी।
जहाँ जाहु तहाँ होहु पतंगा, अब जनि जरहु समुझि बिषसंगा॥
राम नाम लौ लाय सु लीन्हा, भ्रिंगी कीट समुझि मन दीन्हा।
भव अस गरुआ दुख कै भारी, करु जीव जतन जे देखु बिचारी॥
मन की बात है लहरि बिकारा, ते नहिं सूझै वार न पारा।
इच्छा के भवसागर, बोहित राम अधार।
कहँ कबीर हरि सरन गहु, गौ बछ खुर बिस्तार॥२०॥

बहुत दुख है दुख की खानी, तब बंचिहौ जब रामहिं जानी।
रामहिं जानि जुक्ति जो चलई, जुक्तिहिं ते फंदा नहिं परई॥
जुक्तिहिं जुक्ति चला संसारा, निंस्चै कहा न मानु हमारा।
कनक कामिनी घोर पटोरा, संपत्ति बहुत रहै दिन थोरा॥
थोरहिं संपति गौ बौराई, धरम राय की खबरि न पाई।
देखि त्रास मुख गौ कुँभिलाई, अमृत धोखे गौ बिष खाई॥
मैं सिरजौं मैं मारौं, मैं जारौं मैं खाऊँ।
जल थल मैंही रमि रह्यौं, मोर निरंजन नाउँ॥२१॥

अलख निरंजन लखै न कोई जेहि बंधे बंधा सब कोई।
जेहि झूठे सो बंधो अयाना, झूठा बचन साँच करि माना॥
धंधा बंधा कीन्ह बेवहारा, कर्म बिबर्जित बसे निनारा।
षट आस्रम षट दरसन कीन्हा, षटरस बस्तु खोट सब चीन्हा॥
चारि बृच्छ छौ साख बखानै, बिद्या अगनित गनै न जानै।

पा० १—बिरिछ।

औरो आगम करै बिचारा, ते नहिं सूझै वार न पारा ॥
जप तीरथ ब्रत कीजै पूजा, दान पुन्य कीजै बहु दूजा ।
मंदिल तो है नेह का, मति कोई पैठे धाय ।
जो कोई पैठे धाय कै, बिनु सर सेंती जाय ॥२२॥
अलप सुख दुख आदि औ अंता, मन भुलान मैगर मैमंता ।
सुख बिसराइ मुक्ति कहँ पावै, परिहरि साँच झूठ निज धावै ॥
अनल जोति डाहै एक संगा, नैन नेह जस जरै पतंगा ।
करहु बिचार जे सब दुख जाई, परि हरि झूठा केरि सगाई ॥
लालच लागे जन्म सिराई, जरा मरन नियरायल आई ।
भ्रम करि बाँधल ई जग, यहि विधि आवै जाय ।
मानुष जन्म पाइ नर, काहे को जहँड़ाय ॥२३॥
चंद चकोर असं बात जनाई, मानुष बुद्धि दीन्ह पलटाई ।
चारि अवस्था सपने कहई, झूठो फूरो जानत रहई ॥
मिथ्या बात न जानै कोई, एहि बिधि सगरे गैल बिगोई ।
आगे दै दै सभनि गँवाया, मानुष बुद्धि की सपने पाया ॥
चौंतिस अच्छर से निकलै जोई, पाप पुन्य जानैगा सोई ॥
सोई कहते सोई होउगे, निकरि न बाहर आव ।
हौं हजूर ठाढ़ो कहौं, धोखे न जन्म गमाव ॥२४॥
चौंतिस अच्छर का इहै विसेखा, सहसौ नाम याहि में देखा
भूलि भटकि नल फिर घर आया, होत अजान सो सभनि गमाया ॥
खोजहिं ब्रह्मा विस्नु सिव सक्ती, अनंत लोग खोजहि बहु भक्ती ।
खोजहिं गन गंध्रप मुनि देवा, अनंतलोग खोजहिं बहु सेवा ॥
जती सती सब खोजहीं, मनहिं न मानै हारि ।
बड़ बड़ जीव न बाँचहि, कहहिं कबीर बिचारि ॥२५॥

पा० १—की अैसी । २—भेव ।

आपुहिं करता भया कुलाल, बहु बिधि बासन गढ़ै कुंभारा।
बिधिना सभै कीन्ह यक ठाँऊँ, अनेक जतन के बने बनाऊँ॥
जठर अगिनि महँ दीन्ह प्रजारी, तामे आपु भया प्रतिपाली।
बहुत जतन से बाहर आया, तब सिव सक्की नाम धराया॥
घर का सुत जो होय अयाना, ताके संग न जाहिं सयाना।
साँची बात कही मैं अपनी, भया दिवाना और को सपनी[1]॥
गुप्त प्रगट है एकै दूधा, काको कहिए ब्राह्मन सूदा।
झूठ गर्भ भूले मति कोई, हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई॥

जिन यह चित्र बनाइया, साँचा सो सुत्रधार।
कहहि कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहि लेहिं बिचार॥२६॥

ब्रह्मा को दीन्हों ब्रह्मंडा, सात दीप पुहुमी नव खंडा।
सत्त सत्त कै बिस्नु दिढ़ाई, तीनि लोक महँ राखिनि जाई॥
लिंग रूप तब संकर कीन्हा, धरती खीलि रसातल दीन्हा।
तब अष्टंगी रची कुमारी, तीनि लोक मोहिनि सभ झारी॥
दुतिया नाम पारबती भैऊ, तप करते संकर कहँ दैऊ।
एकै पुरुष एक है नारी, ताते रचेउ खानि भौचारी॥
समन[2] बर्मन[2] देव औ दासा, रज सत तमगुन धरनि अकासा।

एक अंड ओंकार ते, सब जग भयो पसार।
कहहि कबीर सब नारि[3] राम की, अविचल पुरुष भतार॥२७॥

अस जोलहा केहु मरम न जाना, जिन जग आय पसारिन्हि ताना।
महि अकास दुइ गाड़ खँदाया, चाँद सुरुज दुइ नरी बनाया॥
सहस तार लै पूरिन पूरी, अजहुँ बिनै कठिन है दूरी।
कहहिं कबीर करम सौं जोरी, सूत कुसूत बिनै भल कोरी॥२८॥

पा० १—कापुनी। २—सरमन बरमन। ३—नारी।

बज्रहुँ ते त्रिन खिन में होई, त्रिन ते बज्र करै पुनि सोई।
निझरू नरू जानि परिहरै, करम के बाँधल लालच करै ॥
कर्म धर्म मति बुधि परिहरिया, झूठा नाम साँच लै धरिया।
रज गति त्रिबिधि कीन्ह प्रगासा, कर्म धर्म बुधि केर बिनासा ॥
रवि के उदै तारा भो छीना, चर बीहर दोनों महँ लीना।
बिष के खाये बिष नहिं जावै, गारुड़ि सो जो मरत जियावै ॥

अलक[1] जो लागी पलक में, पलकहिं महँ डसि जाय।
बिषहर मंत्र न मानै, तौ गारुड़ि काह कराय ॥२६॥

औ भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेष रहा लपटाई।
जीव सीव का आहि नसौना, चारिउ बद्ध चतुर गुन मौना ॥
जैनी धर्म क मर्म न जाना, पाती तोरि देव घर आना।
दौना मरुआ चंपा कै फूला, मानहु जीव कोटि सम तूला।
औ प्रिथिमी के रोम उचारै, देखत जन्म आपनो हारै ॥
मनमथ बिंद करै असरारा, कलपै बिंद खसै नहिं द्वारा ॥
ताकर हाल होय अधकूचा[2], छव दरसन मह जैनि बिगूचा।

ग्यान अमर पद बाहिरे, नियरे ते है दूरि।
जो जानै तिहि निकट है, रहा सकल घट पूरि ॥३०॥

सुम्रिति आहि गुननि को चीन्हा, पाप पुन्न को मारग कीन्हा।
सुम्रिति बेद पढ़ै असरारा, पाखंड रूप करै हंकारा ॥
पढ़ैं बेद औ करैं बड़ाई, संसै गाँठि अजहुँ नहिं जाई।
पढ़िके सास्त्र जीव बध करई, मूड़ी काटि अगुवन के धरई ॥

कहहिं कबीर ई पाखंड, बहुतक जीव सताव।
अनभौ भाव न दरसै, जियत न आप लखाव ॥३१॥

पा० १—अलख। २—अदबुदा।

अंध सो दरपन बेद पुराना, दरबी कहा महारस जाना।
जस खर चंदन लादे भारा, परिमल बास न जान गँवारा।
कहहिं कबीर खोजै असमाना, सो न मिला जो जाय अभिमाना॥३२॥

बेद की पुत्री सुम्रिति भाई, सो जेवरि कर लेतहि आई॥
आपुहिं बरी आपु गर बंधा, झूठा मोह काल को फंदा।
बंधवत[1] बंधा छोरि नहिं जाई, बिषै रूप भूली दुनियाई॥
हमरे देखत सकल जग लूटा, दास कबीर राम कहि छूटा।

रामहि राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रौंस।
सूधा जल पीवै नहीं, खोदि पियन की हौंस॥३३॥

पढ़ि पढ़ि पंडित करु चतुराई, निज मुक्ती मोहि कहु समुझाई।
कहाँ बसै पुरुष कहाँ सो गाऊँ, पंडित मोहिं सुनावहु नाऊँ॥
चारि बेद ब्रह्मै निज ठाना, मुक्तिक मर्म उनहूँ नहिं जाना।
दान पुन्य उन बहुत बखाना, अपने मरन की खबरि न जाना॥
एक नाम है अगम गँभीरा, तहवाँ अस्थिर[2] दास कबीरा।

चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, राई ना ठहराय।
आवागमन की गम नहीं, तहँ सकलो जग जाय॥३४॥

पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा, आपु अपनपौ ज्ञान न भेदा।
संझा तरपन[3] औ षट कर्मा, ई बहु रूप करहिं अस धर्मा॥
गाइत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछहु जाय मुक्ति किन पाई।
और के छुये लेत हौ सींचा, तुमते कहहु कौन है नीचा॥
ये गुन गर्ब करहु अधिकाई, अधिके गर्ब न होय भलाई।
जासु नाम है गर्ब प्रहारी, सो कस गर्बहिं सकै संहारी॥

पा० १—बाँधत। २—अस्थल। ३—तर्पन।

कुल मरजादा खोय कै, खोजिनि पद निर्वान।
अंकुल बीज नसाय कै, भए बिदेही थान ॥३५॥

ग्यानी चतुर बिचच्छन लोई, एक सयान सयान न होई।
दूसर सयान का मरम न जाना, उतपति परलै रैनि बिहाना ॥
बानिज एक सभन मिलि ठाना, नेम धरम संजम भगवाना।
हरि अस ठाकुर तेजि न जाई, बालन भिस्त गाव दुलहाई ॥

ते नर कहवाँ चलि गये, जिन दीन्हा गुर घोंटि।
राम नाम निजु जानि कै, छाँड़हु बस्तू खोंटि ॥३६॥

एक सयान सयान न होई, दोसर सयान न जानै कोई।
तीसर सयान सयानहिं खाई, चौथ सयान तहाँ लै जाई ॥
पँचये सयान न जानै कोई, छठयें मा सभ गैल बिगोई।
सतये सयान जो जानै भाई, लोक बेद में देहु देखाई ॥

बीजक बतावै बित्त को, जो बित गुप्ता होय।
[वैसे]सब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय ॥३७॥

यहि बिधि कहौं कहा नहिं माना, मारग माँहि पसारिनि तान।
राति दिवस मिलि जोरिनि तागा, ओटत कातत भरम न भागा ॥
भरमै सभ घट रहा समाई, भरम छोड़ि कतहूँ नहिं जाई।
परे न पूर दिनहु दिन छीना, जहाँ जाय तहाँ अंग बिहूना ॥
जो मत आदि अंत चलि आवा, सो मत सभ उन प्रगट सुनावा।

यह संदेस फुर मानिकै, लीन्हेउ सीस चढ़ाय।
संतो है संतोष सुख, रहहु तो हिरदय जुड़ाय ॥३८॥

जिन कलिमा कलि माह पढ़ाया, कुदरति खोजि तिनहु नहिं पाया।
कर्म[२] ते कर्म करै करतूता, बेद कितेब भया सब रीता ॥

पा० १—कुल अभिमान बिचार तजि, खोजौ पद निरबान। अंकुल बीज नसाइ गा, तब मिलै बिदेही थान। क० ग्रं० २—करिमत।

कर्म तो सो जो गर्भ औतरिया, कर्म तो सो जो नामहिं धरिया।
कर्म ते सुन्नति और जनेऊ, हिंदू तुरुक न जानैं भेऊ॥
पानी पौन संजोय के, रचिया यह उतपात।
सुन्नहि सुरत समाइया[1], कासों कहिए जात॥३९॥

आदम आदि सुधि ना पाई, मामा हौवा[2] कहाँ ते आई।
तब नहिं होत तुरुक औ हिंदू, माय के रुधिर पिता के बिंदू॥
तब नहिं होते गाय कसाई, तब कहु बिसमिल किन फुरमाई।
तब नहिं होते कुल औ जाती, दोजख भिस्त कवन उतपाती॥
मन मसले की सुधि नहिं जानै, मति भुलान दुइ दीन बखानै।
संयोगे का गुन रवै, बिजोगे[3] का गुन जाय।
जिभ्या स्वाद के कारने, कीन्हें बहुत उपाय॥४०॥

अंबु की रासि समुद्र कै खाई, रबि ससि कोटि तैतिसो भाई।
भौंर जाल महँ आसन माँड़ा, चाहत सुख दुख संग न छाँड़ा।
दुख कै मर्म न काहू पाया, बहुत भाँति के जग बौराया।
आपुहि बाउर आपु सयाना, हिरदया बसे सो राम न जाना॥
तेई हरि तेइ ठाकुर, तेई हरि के दास।
ना जम भया न जामिनि, भामिनि चली निरास॥४१॥

जब हम रहली रहल नहिं कोई, हमरे माँह रहल सभ कोई।
कहु हो राम कौन तोरी सेवा, सो समुझाय कहौ मोहिं देवा॥
फुर फुर कहत मार सभ कोई, झूठहिं झूठा संगति होई।
आँधर कहै सभै हम देखा, तहँ दिठियार बैठि मुख पेखा॥
यहि बिधि कहौं मानु जौ कोई, जस मुख तस जौ हिरदया होई।
कहहिं कबीर हंस मुसुकाई[4], हमरहि कहै छूटिहौ भाई॥४२॥

पा०१—समाइ के। २—हवा। ३—बिनजोगे। ४—मुकुताई।

जिन्ह जीव कीन्ह आपु बिसवासा, नर्क परे तेहि नरकहिं बासा।
आवत जात न लागै बारा, काल अहेरी साँझ सकारा॥
चौदह बिद्या पढ़ि समुझावै, अपने मरन की खबरि न पावैं।
जाने जीव कहँ परा अँदेसा, झूठहिं आनि के कहैं संदेसा॥
संगति छोड़ि करै असरारा, उबहै मोट नर्क कै भारा।
गुरु द्रोही औ मनमुखी, नारि पुरुष बेबिचार[1]।
ते नर चौरासी भरमि हैं, जौ लगि ससि दिनकार॥४३॥
कबहुँ न भयउ संग अरु साथा, ऐसो जनम गवाँयउ आछा[2]।
बहुरि न पइहउ ऐसो थाना, साधु संग तुम नहि पहिचाना॥
अब तोर होय नरक महँ बासा, निसु दिन बसेउ लबार के पासा।
जात सभँन्हि कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेतवा है तौ चेतहु, नहिं दिवस परतु है धार।४४॥
हिरनाकुस रावन गौ कंसा, कृस्न गये सुर नर मुनि बंसा।
ब्रह्मा गये मर्म नहिं जाना, बड़ सब गयल जे रहल सयाना॥
समुझि परी नहिं राम कहानी, निरवक दूध की सरबक पानी।
रहिगौ पंथ थकित भौ पौना, दसो दिसा उजारि भौ गौना॥
मीन जाल भौ ई संसारा, लोह कै नाव पषान कै भारा।
खेवे सभे मर्म नहिं[3] जानी, तहियो[4] कहै रहै उतरानी॥
मछरी मुख जस केंचुवा, मुसवन महँ गिरदान।
सर्पन माहिं गहेजुआ, जात सभन की जान॥४५॥
बिनसे नाग गरुड़ गलि जाई, बिनसे कपटी औ सत भाई।
बिनसे पाप पुन्य जिन कीन्हा, बिनसे गुन निरगुन जिन चीन्हा॥
बिनसे अगिनि पौन औ पानी, बिनसे सिष्टि कहाँ ले गनी।
बिस्नु लोक बिनसे छिन माँही, हौं देखा परलै की छाहीं॥

पाठ १—नारी पुरुष बिचार। २—हाथा। ३—हम। ४—तैयो।

मच्छ रूप माया भई, जौरा[1] खेले अहेर।
हरि हर ब्रह्म न उबरे, सुर नर मुनि केहि केर ॥४६॥

जरासिंध सिसुपाल संघारा, सहस अरजुन छल ते मारा।
बड़ छली रावन सो गौ बीती, लंका रहल कंचन की भीती॥
दुरजोधन अभिमानहि गैऊ, पंडव केर भेद नहिं पैऊ।
माया के डिंभ गैल सभ राजा, उत्तिम मद्धिम बाजन बाजा॥
छव चकवे बित धरनि समाना, एकहु जीव परतीत न माना।
कहँ लगि कहों अचेतहि गैऊ, चेत अचेत झगरा एक भैऊ॥
ई माया जग मोहनी, मोहिसि सब जग धाय।
हरीचंद सत कारने, घर घर सोग बिकाय ॥४७॥

मानिक पुरहि कबीर बसेरी, मद्दति[2] सुनी सेख तकी केरी।
ऊ जे सुनी जौनपुर थाना, झूँसी सुनि पीरन को नामा॥
इकइस पीर लिखे तेहि ठामा, खतमा पढ़ैं पैगंमर नामा।
सुनत बोल मोहिं रहा न जाई, देखि मुकरबा रहा भुलाई॥
हबी नबी नबी को कामा, जहँलै अमल सो सबै हरामा।
सेख अकरदी सेख सकरदी, मानहु वचन हमार।
आदि अंत औ जुग जुग, देखहु दिष्टि पसार ॥४८॥

दर की बात कहौ दरबेसा, पातसाह हैं कौने भेसा।
कहाँ कुच कहाँ करै मुकामा, मैं तोहिं पूछौ मुसलमाना॥
लाल जरद की नाना बाना, कवन सुरति के करहु सलामा।
काजी काज करहु तुम कैसा, घर घर जबह करावहु भैंसा॥
बकरी मुरगी किन फरमाया, किसके कहे तुम छुरी चलाया।
दरद न जानहु पीर कहावहु, बेता पढ़ि पढ़ि जग भरमावहु॥
कहहिं कबीर एक सैयद वोहाई[3], आपु सरीखे जग कबुलाई।

पाठ १—जमरा, जबरहिं। २—मदहति। ३—कहावै।

दिने धरतु हो रोजा, राति कुहतु हो गाय।
इह खून वह बंदगी, क्यों कर खुसी खोदाय ॥४६॥
कहइत मोहिं भयल जुग चारी, समुझत नाहिं मोह[1] सुत नारी।
बंसहिं आगि लागि बंसै जरिया, भर्म भूला नल धंधे परिया ॥
हस्ती[2] के फंदे हस्ती रहई, मृगी के फंदे मृगा रहई।
लोहहिं लोह काटि जु सयाना[3], त्रिया कै तत्तु त्रियै पै जाना ॥
नारि रचंते पुरुषा, पुरुष रचंते नार।
पुर्षहिं पुर्षा जो रचै, ते बिरले संसार ॥५०॥
जाकर नाम अकहुआ रे भाई, ताकर काह रमैनी गाई।
कहे के तातपर्ज है ऐसा, जस पंथी बोहित चढ़ि बैसा ॥
है कछु रहनि गहनि की बाता, बैठा रहे चला पुनि जाता।
रहै बदन नहि स्वाँग सुभाऊ, मन अस्थिर नहिं बोलै काऊ ॥
तन रहित मन जात है, मन रहित तन जाय।
तन मन एकै होय रहै, तब हंस कबीर कहाय ॥५१॥
जेहि कारन सिव अजहुँ बियोगी, अंग बिभूति लाय भौ जोगी।
सेस सहसमुख पार न पावा, सो अब खसम सही समुझावा ॥
ऐसी बिधि जो मोकहँ ध्यावै, छठये माँह[4] दरसन सो पावै।
कवनेहुँ भाव दिखाई देऊँ, गुप्तै रहौं सुभाउ सब लेऊँ ॥
कहहिं कबीर पुकारिके, सभ का इहै बिचार।
कहा हमार माने नहीं, कैसे छूटै भर्म जाल ॥५२॥
महादेव मुनि अंत न पाया, उमा सहित उन्ह जन्म गवाँया।
उनहूँ से सिध साधक होई, मन निस्चल कहु कैसे होई ॥
जौ लगि तन मैं आहै सोई, तब लगि चेति न देखै कोई।
तब चेतिहो जब तजिहहु प्राना, भया अंत तब मन पछिताना ॥

पा० १—मोर। २—हास्तनि फन्दे। ३—जस आना। ४—मास।

इतना सुनत निकट चलि आई, मन के बिकार न छूटे भाई।
तीनि लोक मों आयके, छूटि न काहु की आस।
इक अँधरे जग खाइया, सबका भया निपात ॥५३॥
मरि गये ब्रह्मा कासी के बासी, सीव सहित मुये अबिनासी।
मथुरा मरिगौ कृस्न गुवारा, मरि मरि गये दसो औतारा॥
मरि मरि गये भगति जिन ठानी, सरगुन महँ जिन निरगुन आनी।
नाथ मछंदर बाँचे नहीं, गोरख दत्त औ व्यास।
कहहिं कबीर पुकारि कै, सभ परे काल की फाँस ॥५४॥
गये राम औ गये लछमना, संग न गई सीता ऐसी धना।
जात कौरवहिं लागु न बारा, गये भोज जिन साजल धारा॥
गये पंडौ कुंता ऐसी रानी, गये सहदेव जिन बुधि मति ठानी।
सर्व सोन की लंक उठाई, चलत बार कछु संग न लाई॥
जाकी कुरियां अँतरिछ छाई, सो हरिचंद देखल नहिं जाई।
मुरुख मानुष बहुत सँजोवै, अपने मरे अवर लगि रोवै॥
ना जानै अपनौं मरि जैबे, टका दस बढ़े अवर ले खैबे।
अपनी अपनी करि गए, लागि न काहु के साथ।
अपनी करि गए रावन, अपनी दसरथनाथ ॥५५॥
दिन दिन जरै जरल के पाऊँ, गाड़े जाय न उमँगे काऊ।
कंध न देइ मसखरी कराई, कहुधौं कौनि भाँति निसतरई॥
अकरम करै करम को धावै, पढ़ि गुनि बेद जगत समुझावै।
छूछा परे अकारथ जाई, कहहिं कबीर चित चेतहु भाई ॥५६॥
क्रितिया सूत्र लोक एक अहई, लाख पचास कै आऊ कहई।
बिद्या बेद पढ़ै पुनि सोई, बचन कहत परतछै होई॥
पहुँची बात बिद्या के पेटा, वाहु के भर्म भया संकेता।

पा० १—पुरी।

खग के खोजन तुम परे, पीछे अगम अपार ।
बिनु परचै कस जानिहो, झूठा है संसार ॥५७॥

तैं सुत मानु हमारी सेवा, तो कहँ राज देवँ हो देवा ।
अगम दुर्गम गढ़ देउँ छुड़ाई, औरो बात सुनहु कछु आई ॥
उतपति परलै देउँ देखाई, करहु राज सुख बिलसहु जाई ।
एकौ बार न होइहै बाँको, बहुरि जन्म नहिं होइहै ताको ॥
जाय पाप सुख देहौं घना, निस्चै बचन कबीर के माना ।
साधु संत तेई जना, जो मानहिं बचन हमार ।
आदि अंत उतपति परलै, देखहु दिस्टि पसार ॥५८॥

चढ़त चढ़ावत भँड़हर फोरी, मन नहिं जानै केकर चोरी ।
चोर एक मूसै संसारा, बिरला जन कोइ बूझनिहारा ॥
सरग पताल भूमि लै बारी, एकै राम सकल रखवारी ।
पाहन होय होय सभ गए, बिनु भितियन को चित्र[1] ।
जासों कियहु मिताई, सो धन भया न हित्त[2] ॥५९॥

छाँड़हु पति छाँड़हु लबराई, मन अभिमान टूटि तब जाई ।
जन जो चोरी भिच्छा खाहीं, फेरि बिरवा पलुहावन जाहीं ॥
पुनि संपति औ पति कहँ धावै, सो बिरवा संसार लै आवै ।
झूठ झूठ के डारहु, मिथ्या यह संसार ।
तेहि कारन मैं कहत हौं, जाते होय उबार ॥६०॥

धर्म कथा जो कहते रहई, लबरी नित उठि प्रातै कहई ।
लाबरि बिहने लाबरि संझा, एक लाबरि बसै हिरदया मंझा ॥
रामहुँ केर मरम नहिं जाना, लै मति ठानिन्हि बेद पुराना ।
बेदहु केर कहल नहिं करई, जरतहिं रहै सुस्त नहिं परई ॥

पा० १–चित्त । २–भा अनहित ।

गुनातीत के गावते, आपुहिं गए गँवाय।
माटी केतन माटी मिलिगौ, पौनहिं पौन समाय ॥६१॥
जौ तोहिं करता बरन बिचारा, जन्मत तीनि दंड अनुसारा।
जन्मत सूद्र मुये पुनि सूद्रा, कृतम जनेउ घालि जग दुंद्रा[1] ॥
जौ तुह ब्राह्मन ब्रह्मनी के जाया, और राह ते काहे न आया।
जौ तुह तुरुक तुरुकिनी के जाया, पेटे काहे न सुनति कराया ॥
कारी पियरी दूहहु गाई, ताकर दूध देहु बिलगाई।
छाँडु कपट नल अधिक सयानी, कहहिं कबीर भजु सारँगपानी ॥६२॥
नाना रूप बरन यक कीन्हा, चारि बरन उन्ह काहु न चीन्हा।
नष्ट गए करता नहिं चीन्हाँ, नष्ट गए औरहिं मन दीन्हा ॥
नष्ट गए जिन्ह बेद बखाना, बेद पढ़े पै भेद न जाना।
बिमलख करै नैन नहिं सूझा, भया अयान तब कछुवौ न बूझा ॥
नाना नाच नचाय के, नाचै नट के भेख।
घट घट है अबिनासी, सुनहु तकी तुम सेख ॥६३॥
काया कंचन जतन कराया, बहुत भाँति कै मन पलटाया।
जौ सौ बार कहौं समुझाई, तैयो धरा छोरि न जाई ॥
जन के कहे जनै रहि जाई, नवौ निद्धि सिद्धि तिन पाई।
सदा धर्म जाके हियै[2] बसई, राम कसौटी कसतै रहई ॥
जौ रे कसावैं अनतै जाई, सो बाउर अपनै बौराई।
ताते परी काल की फाँसी, करहु आपनी सोच।
जहाँ संत तहाँ संत सिधाये, मिलि रहा पोचहिं पोचै[3] ॥६४॥
अपने गुन को औगुन कहहू, इहै अभाग जे तुम न बिचारहु।
तुम जियरा बहुतै दुख पाया, जल बिनु मीन कौन सचु पाया ॥
चात्रिक जलहल भरे जो पासा, स्वाँग धरे भौसागर आसा।

पा० १–धुँधा। २–हृदया। ३–धूतहिं धूत।

चात्रिक जलहल आसहि पासा, मेघ न बरसै चलै उदासा ॥
राम नाम इहै निज सारू, औ सभ झूठ सकल संसारू ।
हरि उतंग तुम जाति पतंगा, जमघर[1] कियहु जीव को संगा ॥
किंचित है सपने निधि पाई, हिय न समाय कहँ धरौं छुपाई ।
हिय न समाय छोड़ि नहिं पारा, झूठ लोभ जे कछु न बिचारा ॥
सुम्रिति कीन्ह आपु नहिं माना, तरु तर छल छागर होय जाना ।
जिव दुर्मति डोलै संसारा, ते नहिं सूझै वार न पारा ॥

अंध भया सभ डोलै, कोई न करै विचार ।
कहा हमार मानै नहीं, किमि छुटै भर्म जाल ॥६५॥

सोई हित बंधू मोहि भावै, जात कुमारग मारग लावै ।
सो सयान मारग रहि जाई, करै खोज कबहूँ न भुलाई ॥
सो झूठा जो सुत कहँ तजई, गुर की दया राम ते[2] भजई ।
किंचित है यह जगत भुलाना, धन सुत देखि भया अभिमाना ॥

दियन खताना किया पयाना, मंदिल भया उजार ।
मरि गये ते मरि गये, बाँचे बाचनि हार ॥६६॥

देह हलाये भगति न होई, स्वाँग धरे नल बहु बिधि जोई ।
धींगा धींगी भलो न माना, जो कोई मोहिं हिरदय न जाना ॥
मुख कछु और हृदै कछु आना, सपनेहुँ काहू मोहिं न जाना ।
ते दुख पैहैं इह संसारा, जौ चेतहु तौ होय उबारा ॥
जो जन गुरु की निंदा करई, सूकर स्वाँन जन्म सो धरई ॥

लख चौरासी जिया जंतु महँ, भटकि भटकि दुख पाव ।
कहहिं कबीर जो रामहिं जानै, सो मोहि नीके भाव ॥६७॥

तेहि बियोग ते भया अनाथा, परि निकुंज बन पाव न पाथा ।
बेदौ[3] नकल कहै जो जानै, जो समुझै सो भलो न मानै ॥

पा० १—जंबुक केहरि कै ज्यूं संगा । क. ग्रं. । २—को । ३—बेद ।

नट वट बंद खेलै जो जानै, तेहिका गुन सो ठाकुर मानै ।
उहै जो खेलै सभ घट माहीं, दूसर के लेखा कछु नाहीं ॥
भलो पोच जो औसर[1] आवै, कैसहु कै जन पूरा पावै ।
जेहिकर सर लागे हिये, सोई जानै पीर ।
लागै तो भागै नहीं, सुख सिंधु निहार कबीर ॥६८॥
ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिये गफिलाई ।
महादेव को पंथ चलावै, ऐसौ बड़ो महंत कहावै ॥
हाट बजारै लावैं तारी, काचे सिद्धहिं माया प्यारी ।
कब दत्तै मावासी[2] तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी ॥
नारद कब बंदूक चलाई, व्यास देव कब बंब बजाई ।
करहिं लराई मति के मंदा, ई अतीत की तरकस बंदा ॥
भये बिरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावैं बाना ।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा, गावँ पाय जस चले करोरा ॥
सुंदरी न सोभै, सनकादिक के साथ ।
कबहुँक दाग लगावै, कारी हाँड़ी हाथ ॥६९॥
बोलना कासों बोलिये रे भाई, बोलत ही सब तत्त नसाई ।
बोलत बोलत बाढ़ बिकारा, सो बोलिये जो परै बिचारा ॥
मिलहिं संत बचन दुइ कहियै, मिले असंत मौन होय रहियै ।
पंडित से बोलिये[3] हितकारी, मूरुख ते रहिये झख मारी ॥
कहहिं कबीर अर्ध घट डोलै, पूरा होय विचार लै बोलै ॥७०॥
सोग बधावा सम कै माना, ताकी बात इंद्रौ नहिं जाना ।
जटा तोरि पहिरावैं सेल्ही, जोग जुक्ति कै गर्व दुहेली ॥
आसन उड़ये कौन बड़ाई, जैसे कौआ चील्ह मड़राई ।
जैसी भीति तैसी है नारी, राजपाट सभ गनै उजारी ।

पा० १. अवसर । २. भो आसा । ३ .कहिये ।

जस नरक तस चंदन जाना, जस बाउर तस रहै सयाना।
लपसी लौंग गनै एक सारा, परिहरि खाँड़ मुख फाँकै छारा॥
इहै विचार विचारते, गये बुद्धि बल चेत।
दुइ मिलि एकै होय रहा, मैं काहि लगावौं हेत॥७१॥
नारी एक संसारहिं आई, माय न वाके बापहिं जाई।
गोड़ न मूड़ न प्रान अधारा, तामहँ भमरि[1] रहा संसारा॥
दिना सात लौं वाकी सही, बुध अदबुध अचरज का कही।
वाकी बंदन करैं सभ कोई, बुध अदबुध अचरज बड़ होई॥
मूस बिलाई एक सँग, कहु कैसे रहि जाय।
अचरज एक देखहु हो संतो, हस्ती सिंघहिं खाय॥७२॥
चली जात देखी एक नारी, तर गागरि ऊपर पनिहारी।
चली जात वह बाटहिं बाटा, सोवनहार के ऊपर खाटा॥
जाड़न मरै सपेदी सौरी, खसम न चीन्हैं घरनि भौ बौरी।
साँझ सकार दिया लै बारैं, खसम छोड़ि सँवरैं लगवारैं॥
वाही के रस निसु दिन राची, पिय से बात कहै नहिं साँची।
सोवत छाँड़ि चली पिय अपना, ई दुख अब दहुँ कहब कैसना॥
अपनी जाँघ उघारिकै, अपनी कही न जाय।
की चित जानै आपना, की मेरो जन गाय॥७३॥
तहिया गुप्त थूल नहिं काया, ताके सोग न ताके माया[2]।
कँवलपत्र तरंग एक माहीं, संगै रहै लिप्त पै नाहीं॥
आस ओस अंड महँ रहई, अगनित[3] अंड न कोई कहई।
निराधार अधार लै जानी, राम नाम लै उचरी बानी॥
धरम कहै सभ पानी अहई, जातके मन पानी अहई।
ढोर पतंग सरै घरिआरा, तेहि पानी सभ करैं अचारा॥

पा० १—भभरि। २—ताके न सोग ताकि पै माया। ३—अग्नीत।

फंद छोड़ि जे बाहर होई, बहुरि पंथ नहिं जोहै सोई।
भ्रम कै बाँधल ई जग, कोई न करै बिचार।
हरि की भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार ॥७४॥

तेहि साहब के लागहु साथा, दुइ दुख मेटि के रहहु सनाथा।
दसरथ कुल अवतरि नहिं आया, नहिं लंका के राव सताया।
नहीं देवकी के गर्भहिं आया, नहीं जसोदै गोद खेलाया॥
प्रिथिमी रवन दवन नहिं करिया, पैठी पताल नहीं बलि छलिया।
नहीं बलि राज से माँड़ी रारी, नहिं हरिनाकुस वधल पछारी॥
ब्राहरूप धरनी नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्र न करिया।
नहीं गोबरधन कर गहि धरिया, नहिं ग्वालन सँग बनबन फिरिया॥
गंडक सालिगराम न कूला, मछ कछ[1] होय जल नहिं डोला।
द्वारावती सरीर न छाँड़ा, लैं जगनाथ[2] पिंड़ नहिं गाड़ा॥
कहैं कबीर पुकारि के, वोहि पंथै मति भूल।
जेहि राखेहु अनुमान कै, सो थूल नहीं अस्थूल ॥७५॥

माया मोह कठिन संसारा, इहै बिचार न काहु बिचारा।
माया मोह कठिन है फंदा, होय बिबेकी सो जन बंदा॥
राम नाम लै बेरा धारा, सो तौ लै संसारहिं पारा।
राम नाम अति दुर्लभ, औरहु ते नहिं काम॥
आदि अंत औ जुग जुग, रामहिं ते संग्राम ॥७६॥

एकै काल सकल संसारा, एक नाम है जगत पियारा।
त्रिया पुरुष कछु कथो न जाई, सर्ब रूप जग रहा समाई॥
रूप अरूप जाय नहिं बोली, हलुका गरुआ जाय न तोली।
भूख न तृषा धूप नहिं छाहीं, सुख दुख रहित रहै तेहि माहीं॥

पा० १—मच्छ कच्छ। २—जगन्नाथ।

अपरमपार रूप मगु, ग्यान रूप बहु आहि[1]।
कहैं कबीर पुकारि कै, अदबुद कहिए ताहि ॥७७॥

मानुष जन्म चूके जग माँझी[2], ऐहि तन केर बहुत हैं साझी।
तात जननी कहै पुत्र हमारा, स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला॥
कामिनि कहै मोर पिय आही, बाघिनि रूप गरासन चाही।
पुत्र कलत्र रहैं लौ लाए, जमु[3] की नाईं रहैं मुँह बाए॥
काग गीध दोउ मरन बिचारैं, सूकर स्वान दोउ पंथ निहारैं।
अगिनि कहै मैं ई तन जारौं, पानि[4] कहै मैं जरत उबारौं॥
धरती कहै मोहिं मिलि जाई, पौन कहै संग लेहुँ उड़ाई।
जेहि घर को घर कहै गँवारा, सो बेरी[5] है गले तुम्हारा।
सो तन तुम आपन करि जानी, बिषय रूप भूले अग्यानी॥

एतने तन के साझिया, जन्मौ भरि दुख पाव।
चेतत नाहीं बावरा, मोर मोर गोहराव ॥७८॥

बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी, परखत खर परखावत खोटी।
केतिक कहौं कहाँ लगि कही, औरौ कहौं परे जो सही॥
कहले बिना मोहि रहल न जाई, बेरही[6] लै लै कूकुर खाई।

खाते खाते जुग गया, बहुरि न चेतै आय।
कहहिं कबीर पुकारि कै, जीव अचेतै जाय ॥७९॥

बहुतक साहस करु जिय अपना, तेहि साहब सों भेंट न सपना।
खरा खोट जिन नहिं परखाया, चहत लाभ तिन्ह मूल गमाया॥

पा० १—बहुत ध्यान कर जोहिन नहीं तेहि संख्या आहि। २—अपराधी।
३—जम्बुक नित्य रहै मुँह बाए। ४—सोन। ५—बैरी, बेड़ी। ६—बेहई।

समुझि न परै पातरी मोटी, ओछी गाँठि सभै भौ खोटी।
कहै कबीर केहि देहौ खोरी, जब चलिहौ झिझिं आसा तोरी॥८०॥
देव चरित्र सुनहु रे भाई, सो तो ब्रह्मा धिया नसाई।
ऊ जे सुनी मंदोदरि तारा, तिन घर जेठ सदा लगवारा॥
सुरपति जाय अहीलहिं छरी, सुरगुर घरनि चंद्रमै हरी।
कहैं कबीर हरि के गुन गाया, कुंती करन कुँवारहिं जाया॥८१॥
सुख के बिर्छ एक जगत उपाया, समुझि न परै बिषै कछु माया।
छव छत्री पात जुग चारी, फल दुइ पाप पुन्य अधिकारी॥
स्वाद अनत कछु बरनि न जाई, कै चरित्र सो ताही माहीं।
नट वट साज साजिया साजी, जो खेलै सो देखै बाजी॥
मोहा बपुरा जुक्ति न देखा, सिव शक्ति बिरंचि नहीं पेखा।

परदे परदे चलि गये, समुझि परी नहिं बानि।
जो जानहि सो बाचिहै, होत सकल की हानि॥८२॥

छत्री करै छत्रिया धर्मा, वाके बढ़ै सवाई कर्मा।
जिन अवधू गुरु ग्यान लखाया, ताकर मन तहँई पलटाया॥
छत्री सोई कुटुम से जूझै, पाँचो मेटि एक कै बूझै।
जीव मारि जीवहिं प्रतिपालै, देखत जन्म आपनो घालै॥
हालै करै निसाने घाऊ, जूझि परे तहँ मनमथ राऊ।

मनमथ मरै न जीवै, जीवहिं मरन न होय।
सुन्न सनेही राम बिनु, चले अपनपौ खोय॥८३॥

जियरा आपन दुखहिं संभारू, जो दुख व्यापि रहा संसारू।
माया मोह बँधे सभ लोई, अल्पै लाभ मूल गौ खोई॥

पा० १—झीं झीं आसा महँ लागे, ज्ञानी पंडित दास। पार न पावहिं बापुरे, भरमत फिरहिं उदास। २—निपात, पत्री।

उपजै खपै जोनि फिरि आवै, सुख का लेस सपने नहिं पावै ।
दुख संताप कष्ट बहु पावै, सो न मिला जो जरत बुझावै ॥
मोर तोर मैं सभै बिगूता[1], जननी वोद्र गर्भ महँ सूता ।
बहुत खेल खेलै बहु बूता, जन भौंरा अस भए बहूता ॥
मोर तोर महँ जर जग सारा, धृग स्वारथ झूठा संसारा ।
झूठे मोह रहा जग लागी, इन्हतें भागि बहुरि पुनि आगी ॥
जो हित कै राखै सभ लोई, सो सयान बाँचा नहिं कोई ।

आपु आपु चेतै नहीं, कहौं तौ रुसवा होय ।
कहैं कबीर जो सपने जागै, निर अस्ति अस्ति[2] न होय ॥८४॥

पा० १–बिगूर्चा । २–अस्ति निरस्ति ।

सब्द

संतो भग्ती सतगुर आनी ।
नारी एक पुरुष दुइ जाया बूझहु पंडित ग्यानी ।
पाहन फोरि गंग एक निकसी, चहुँ दिस पानी पानी ॥
तेहि पानी दुइ परबत बूड़े दरिया लहरि समानी ।
उड़ि माँखी तरिवर के लागी, बोलै एकै बानी ॥
वहिं[1] माँखी के माखा नहीं, गरभ रहा बिन पानी ।
नारी सकल पुरुष वहि खायो, ताते रहेउ अकेला ॥
कहहिं कबीर जो अबकी समुझै, सोई गुरू हम चेला ।

संतो जागत नींद न कीजै ।
काल न खाय कल्प नहिं ब्यापे, देह जरा नहिं छीजै ॥
उलटी गंग समुद्रहिं सोखे, ससि औ सूर गरासे ।
नौग्रह मारि रोगिया बैठे, जल महँ बिंब प्रगासे ॥
बिनु चरनन को दहुँ दिस धावै, बिनु लोचन जग सूझै ।
ससै उलटि सिंघ को ग्रासै, ई अचरज को बूझै ॥
औंधे घड़ा नहीं जल बूड़े, सूधे सों घट भरिया ।
जेहि कारन नल भिन्न भिन्न करु, गुरु परसादे तरिया ॥
पैठि गुफा महँ सभ जग देखै, बाहर कछुवो न सूझै ।
उलटा बान पारथिहिं लागे, सूरा होय सो बूझै ॥
गायन कहै कबहुँ नहिं गावै, अनबोला नित गावै ।
नट वट बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेतु बढ़ावै ॥

पा० १—ओहि ।

कथनी बदनी निजुकै जोहै, ई सभ अकथ कहानी ।
धरती उलटि अकासै बेधै, ई पुरुषौं की बानी ॥
बिना पियाला अमृत अँचवै, नदी नीर भरि राखै ।
कहै कबीर सो जुग जुग जीवै, राम सुधा रस चाखै ॥ २ ॥

संतो घर में झगरा भारी ।
राति दिवस मिलि उठि उठि लागै, पाँच ढोटा एक नारी ॥
न्यारो न्यारो भोजन चाहैं, पाँचो अधिक सवादी ।
कोउ काहू को हटा न मानै, आपुहिं आपु मुरादी ॥
दुरमति केर दोहागिन मेटै, ढोटहिं चाँप चपेरै ।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निवेरै ॥ ३ ॥

संतो देखत जग बौराना ।
साँच कहौं तौ मारन धावैं, झूठे जग पतियाना ॥
नेमी देखा धरमी देखा, प्रात करहिं असनाना ॥
आतम मारि पषानहि पूजैं, उनमहँ कछू न ग्याना ॥
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ैं कितेब कुराना ।
कै मुरीद ततबीर बतावैं, उनमहँ उहै जो ग्याना ॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन महँ बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्ब भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सब्दहिं गावत भूले, आतम खबरि न जाना ॥
हिंदू कहै मोहिं राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना ।
आपुस में दोउ लरि लरि मूए, मर्म न काहू जाना ॥
घर घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना ।

पा० १—कछुवो ।

गुरू सहित सीष सभ बूड़े, अंत काल पछिताना ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, ई सभ भर्म भुलाना ।
केतिक कहौं कहा नहिं मानैं, सहजै सहज समाना ॥ ४ ॥

संतो अचरज एक भौ भारी, कहौं तौ को पतियाई ।
एकै पुरुष एक है नारी, ताकर करहु बिचारा ॥
एकै अंड सकल चौरासी, भर्म भूला संसारा ॥
एकहि नारी जाल पसारा, जगमहँ भया अँदेसा ।
खोजत खोजत अंत न पाया, ब्रह्मा बिस्नु महेसा ॥
नाग फाँस लीये घट भीतर, मूसिन्ह सभ जग झारी ।
ग्यान खरग बिनु सभ जग जूझैं, पकरि काहु नहिं पाई ॥
आपुहि मूल फूल फुलवारी, आपुहि चुनि चुनि खाई ।
कहहिं कबीर तेई जन उबरे, जेहि गुरू लिया जगाई ॥ ५ ॥

संतो अचरज एक भौ भारी, पुत्र धइल महतारी ।
पिता के संगे भई बावरी, कन्या रहल कुमारी ॥
खसमहिं छोंड़ि ससुर सँग गौनी, सो किन लेहु बिचारी ।
भाई के सँग ससुरे गौनी, सासु सौतिया दीन्हा ॥
ननद भउज परपंच रच्यो है, मोर नाम कहि लीन्हा ॥
समधी के सँग नाहीं आई, सहज भई घर बारी ।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, पुरुष जन्म भौ नारी ॥ ६ ॥

संतो कहौं तो को पतियाई, झूठ कहत साँच बनि आई ।
लौके रतन अबेध अमोलिक नहिं गाहक नहिं साईं ॥
चिमिकि चिमिकि चिमिकै द्रिग दहुँदिस, अरब रहा छिरियाई ।
आपुहिं गुरू कृपा कछु कीन्हा, निरगुन अलख लखाई ॥
सहज समाधि उनमुनी जागै, सहज मिलैं रघुराई ।

जहँ जहँ देखौ तहँ तहँ सोई, मन मानिक बेधो हीरा।
परम तत्त गुरहिं से पावो, कहै उपदेस कबीरा ॥ ७ ॥
संतो आवै जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहूँ गया न आया ॥
क्या मकसूद मछ कछ होना, संखासुर न सँघारा।
है दयाल द्रोह नहि वाके, कहहु कौन को मारा ॥
वै करता नहिं बाह कहाये, धरनि धरो न भारा।
ई सभ काम साहेब के नाहीं, झूठ कहै संसारा ॥
खंभ फोरि जो बाहर होई, ताहि पतिजे सभ कोई।
हरिनाकुस नखवोद्र बिदारो, सो नहिं करता होई ॥
बावन रूप न बलि को जाँचो, जो जाँचै सो माया।
बिना विवेक सकल जग भरमैं, मायै जग भर्माया ॥
परसराम छत्री नहिं मारा, ई छल मायै कीन्हा।
सतगुरु भग्ति भेद नहि पावो, जीवन मिथ्यां कीन्हा ॥
सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पषान नहिं बाँधा।
वै रघुनाथ एक कै सुमिरै, जो सुमिरैं सो अंधा ॥
गोपी ग्वाल न गोकुल आया, करते कंस न मारा।
मेहरबान सभहिन को साहेब, नहिं जीता नहिं हारा ॥
वै करता नहिं बौध कहायो, नहीं असुर संहारा।
ग्यान हीन करता सभ भर्मैं, मायै जग भर्माया ॥
वै करता नहि भए कलंकी, नहीं कलिहिं गहि मारा।
ई छल बल सब मायै कीन्हा, जती सँती सभ टारा ॥
दस औतार ईसरी माया, करता कै जिन पूजा।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, उपजै खपै सो दूजा ॥ ८ ॥

पा० १–अमीथ्या। २–के मारा। ३–जत्त सत्त।

संतो बोले ते जग मारै ।
अनबोले ते कैसेक बनिहै, सब्दहिं कोइ न विचारै ॥
पहिले जनम पूत को भयऊ, बाप जनमिया पाछे ।
बाप पूत की एकै माया[1], ई अचरज को काछै ॥
दुंदुर राजा टीका बैठे, बिषहर करै खवासी ।
स्वान बापुरो धरनि ढाँकनो, बिल्ली घर की दासी ॥
कागदकार कारकुन[2] आगे, बैल करै पटवारी ।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, भैंसे न्याव निवारी ॥ ९ ॥

संतो राह दुनो हम दीठा ।
हिंदू तुरुक हटा नहिं मानैं, स्वाद सभन्हि को मीठा ॥
हिंदू बरत एकादसी साधैं, दूध सिंघारा सेती ।
अन्न को त्यागैं मन न हटकैं, पारन करैं सगोती ॥
तुरुक रोजा निमाज गुजारैं, बिसमिल बाँग पुकारैं ।
इनकी भिस्ति कहाँ ते होई, साँझैं मुरगी मारैं ॥
हिंदू की दया, मेहर तुरकौं की, दूनो घट सों त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारैं, आगि दूनौ घर लागी ॥
हिंदू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई ।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो, राम न कहूँ खोदाई ॥ १० ॥

संतो पाँड़े निपुन कसाई ।
बकरा मारि भैंसा पर धावैं, दिल में दरद न आई ॥
करि असनान तिलक दै बैठे, बिधि से देवी पुजाई ।
आतमराम पलक महँ बिनसै, रुधिर की नदी बहाई ॥
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिए, सभा माहिं अधिकाई ।

पा० १—नारी । २—कारकुड । ३—कहेउ ।

इन्हते दिच्छा सभ कोई माँगै, हँसी आवै मोहिं भाई ॥
पाप कटन को कथा सुनावैं[1], कर्म करावहिं नीचा ।
बूड़त दोऊ परस्पर देखा, जम लाये हैं घींचा ॥
गाय बधे ते तुरुक कहिये, इनते वै का छोटे ।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, कलि महँ ब्राह्मन खोटे ॥११॥

संतो मते मातु जनु रंगी ।
पियत पियला प्रेम सुधारस, मतवाले सत संगी ॥
अरधे उरधे भाठी रोपिन्हि, ब्रह्म अगिनि उदगारी[2] ।
मूंदे मदन काटि कर्म कसमल, संतत चुवत अगारी ॥
गोरख दत्त बसिष्ट ब्यास कपि, नारद सुक मुनि जोरी ।
सभा बैठि संभु सनकादिक, तहाँ फिरे अधर कटोरी ॥
अंबरीष औ जाग जनक जड़, सेस सहस मुख पाना ।
कहँ लौं गनौं अनंत कोटिलौं[3], अमहल महल दिवाना ॥
ध्रू प्रहलाद भभीषन माते, माती सेवरी[4] नारी ।
निर्गुन[5] ब्रह्म माते बींद्राबन, अजहु लागु खुमारी ॥
सुरनर मुनिजती पीर औलिया, जिन्हरे पिया तिन्ह जाना ।
कहँहिं कबीर गूँगे की सक्कर, क्यों करि करै बखाना ॥१२॥

राम तेरी माया दुंद बजावै[6] ।
गति मति वाकी समुझि परै नहिं, सुर नर मुनिहिं नचावै ॥
का सेमर के साखा बढ़ये, फूल अनूपम मानी[7] ।
केतिक चात्रिक लागि रहे हैं, देखत रुआ उड़ानी ॥

पा० १—सुनावहिं । २—ले कासव रस गारी । कसा रस । ३—आदि अंतलौं
४—सिवकी । ५—सगुन । ६—मचावै । ७—वानी ।

काह खजूर बड़ाई तेरी, फल[1] कोई नहिं पावै ।
ग्रीषम रितु जब आय तुलानी, छाया काम न आवै ॥
अपने चतुर और को सिखवैं, कनक कामिनी सयानी ।
कहँहिं कबीर सुनो हो संतो, राम चरन रतिमानी ॥१३॥
रामुरा ससे गांठि न छूटै, ताते पकरि पकरि जम लूटै ॥
है मसकीन कुलीन कहावै, तुम योगी संन्यासी ।
ग्यानी गुनी सूर कवि दाता, या मति किनहु न नासी ॥
सुम्रिति बेद पुरान पढ़ै सभ, अनभौ भाव न दरसै ।
लोह हिरन्य होय दहुँ कैसे, जो नहिं पारस परसै ॥
जियत न तरेहु मुये का तरिहहु, जियतहिं जो न तरे ।
गहि परतीत कियो जिन्ह जासों, सोई तहाँ अमरे ॥
जो कछु कियेहु ग्यान अग्याना, सोई समुझ सयाना ।
कहँहिं कबीर तासों का कहिये, देखत दृष्टि भुलाना॥१४॥
रामुरा चली बिनावन माहो, घर छाँड़े जात जोलाहो ।
गज नव गज दस गज उनइस की, पुरिया एक तनाई ॥
सात सूत नौ गंड बहत्तर, पाट लागु अधिकाई ।
तापट तुलना तुलै कौन बिधि, ब्योंतत गज न अमाई[2] ॥
तामें घटे बढ़ै रतियो नहिं, करकच कर घरहाई ।
नित उठि बेठ खसम सों बरबस, तापर लागु तिहाई ॥
भीगी पुरिया काम न आवै, जोलहा चला रिसाई ।
कहँहिं कबीर सुनो हो संतो, जिन यह सृष्टि उपाई ॥
छाँड़ि पसारु राम भजु बौरे, भौसागर कठिनाई ॥१५॥

पा० १—कल । २—तापट तूला तूलैनहि गज न अमाई पैसे सेर अढ़ाई ।

रामुरा झी झी जंतर बाजै, कर चरन बिहूना नाचै ।
कर बिनु बाजै सुनै स्रवन बिनु, स्रवन सरोता सोई ॥
पाटन सुबस सभा बिनु औसर, बूझहु मुनि जन लोई ।
इंद्री बिनु भोग स्वाद जिभ्या बिनु, अच्छय पिंड बिहूना ॥
जागत चोर मँदिल तहँ मूसै, खसम अछत घर सूना ।
बीज बिन अंकुल पेड़ बिनु तरिवर, बिनु फूले फल फरिया ।
बाँझ के कोख पुत्र औतरिया, बिनु पगु तरिवर चढ़िया ।
मसि बिनु द्वात कलम बिनु कागज, बिनु अच्छर सुधि होई ॥
सुधि बिनु सहज ग्यान बिनु ग्याता, कहँहिं कबीर जन सोई ॥ १६ ॥

रामहिं गावै औरहि समुझावै, हरि जाने बिनु सकल फिरै ।
जा मुख बेद गाइत्री उचरै, तासु बचन संसार तरै ॥
जाके पाँव जगत उठि लागै, सो ब्राह्मन जिव बध करै ।
अपने ऊँच नीच घर भोजन, घीन कर्मकरि उदर भरै ॥
ग्रहन अमावस ढुकिढुकि माँगै, कर दीपक लिये कूप परै ।
एकादसी बरत नहिं जानै, भूत प्रेत हठि हिरदय धरै ॥
तजि कपूर गांठी बिष बाँधे, ग्यान गँवाये मुगुध फिरै ।
छीजै साहु चोर प्रतिपालै, संत जना की कूट करै ॥
कहँहिं कबीर जिभ्या के लंपट, यहि बिधि प्रानी नर्क परै ॥ १७ ॥

राम गुन न्यारो न्यारो न्यारो ।
अबुझा लोग कहाँ लौ बूझैं, बुझनि हार बिचारो ॥
केतिक रामचंद्र तपसी से, जिन यह जग बिटमाया ।
केतिक कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अंत न पाया ॥

१—हठि—ख— ।

मछ कछ औ ब्राह सरूपी, बामन नाम धराया ।
केतिक बौध भये निहलंकी, तिन भी अन्त न पाया ॥
केतिक सिध साधक संन्यासी, जिन बनबास बसाया ।
केतिक मुनिजन गोरख कहिये, तिन भी अंत न पाया ॥
जाकी गति ब्रह्मौ नहिं जाना, सिव सनकादिक हारे ।
ताके गुन नल कैसे पैहो, कहँहिं कबीर पुकारे ॥ १८॥

ये ततु राम जपहु रे प्रानी, तुम बूझहु अकथ कहानी ।
जाको भाव होत हरि ऊपर, जागत रैनि बिहानी ॥
डाइनि डारे सुनहा डोरे, सिंघ रहै बन घेरे ।
पाँच कुटुम मिलि जूझन लागे, बजन बाजु घनेरे ॥
रोहु[1] मृगा संसे बन हाँकै, पारथ बाना मेलै ।
सायर जरै सकल बन डाहै, मछ अहेरा खेलै ॥
कहँहिं कबीर सुनो हो संतो, जो यह पद अरथावै ।
जो यहि पद को गाय बिचारै, आप तरै मोहिं[2] तारै ॥१९॥

कोई राम रसिक रस पीयहुगे, पीयहु गे सुख[3] जीयहुगे ।
फल अलंकित बीज नहिं बकला सुक पंछी तहाँ रस खाई ॥
चुवै न बुँद अंग नहिं भीजै, दास भँवर सभ संग लाई ।
निगम रिसाल चारि फल लागे, तिन मँह तीन समाई ॥
एक दूरि चाहैं सभ कोई, जतन जतन काहू बिरले पाई ।
गये बसंत ग्रीषम रितु आई, बहुरि न तरिवर आवै ॥
कहँहिं कबीर सामी सुखसागर, राम मगन सो[4] पावै ॥२०॥

पा०१—रोवै मृगा ससै बन हाँकै । २—औ । ३—जुग । ४—होय ।

राम न रमसि कवन डँड लागा, मरि जैबे का करबे अभागा।
कोई तीरथ कोई मुंडित केसा, पाखँड मंत्र भरम उपदेसा॥
विद्या बेद पढ़ि करै हँकारा, अंत काल मुख फांकै छारा।
दुखित सुखित होय कुटुम जेंवावै, मरन दाँव[1] अकसर दुख पावै।
कहँहिं कबीर ई कलि है खोटी, जो रहै करवा सो निकरै टोंटी॥२१॥

अवधू छाँड़हु मन विस्तारा।
सो पद गहहु जाहि ते सदगति, पारब्रह्म ते न्यारा।
नहीं महादेव नहीं महंमद, हरि हजरत तब नाही॥
आदम ब्रह्मा नहिं तब होते, नहीं धूप औ छांही।
असी सहस[2] पैगंबर नाहीं, सहस अठासी मूनी।
चाँद सुर्ज तारागन नाहीं, मछ कछ नहि दूनी॥
बेद कितेब सुम्रिति नहिं संजम, नही जवन परसाही।
बंग निमाज न कलमा होते, रामौ नाहिं खोदाई॥
आदि अंत मन मध न होते, आतस पौन न पानी।
लख चौरासी जीव न होते, साखी सब्द न बानी॥
कहँहि कबीर सुनहु हो अवधू, आगे करहु बिचारा।
पुरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, किरतम किन उपराजा॥२२॥

अवधू कुदरति की गति न्यारी।
रंक नेवाज करै वह राजा, भूपति करै भिखारी॥
याते लँवगहि फल[3] नहिं लागे, चंदन फूल न फूला।
मछ सिकारी रमै जंगल में, सिंघ समुद्रहिं भूला॥
रेंड रूख भये मलयागिर, चहुँदिसि फूटी बासा।
तीनि लोक ब्रह्मण्ड खंड मँह, देखै अंध तमासा॥

पा० १—बेर। २—असियासैं। ३—याते लोग हरफना लागे।

पंगा मेर सुमेर उलंघै, त्रिभुवन मुकुता डोलै।
गूंगा ग्यान विग्यान प्रगसै, अनहद बानी बोलै ॥
बांधि अकास पताल पठावै, सेस सरग पर राजै।
कहँहिं कबीर राम हैं राजा, जो कछु करै सो छाजै ॥२३॥

अवधू सो जोगी गुर मेरा, जो यहि पदका करै निबेरा ॥
तरिवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूले फल लागा।
साखा पत्र कछू नहिं वाके, अष्ट गगन मुख गाजा ॥
पौ बिन पत्र करह बिनु तूँबा, बिनु जिभ्या गुन गावै।
गावनिहार के रेख रूप नहिं, सतगुर होय लखावै ॥
पंछी के खोज मीन को मारग, कहहिं कबीर दोउ भारी।
अपरम पार पार परसोतिम, मूरति की बलिहारी ॥२४॥

अवधू वै ततु रावल राता, नाचै बाजन बाजु बराता ॥
मौर के माथे दूलह दीन्हों, अकथ जोर कहाता।
मड़वा के चारन समधी दीन्हो, पुत्र बियाहल माता ॥
दुलहिनि लीपि चौक बैठायो, निरभय पद परगासा।
भातहिं उलटि बरातहिं खायो, भली बनी कुसलाता ॥
पानीग्रहन भयो भौ मंडन, सुषमनि सुरति समानी।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, बूझहू पंडित ग्यानी ॥२५॥

भाई रे बहुत बहुत का कहिये, कोई बिरले दोस्त हमारे।
भंजै गढ़ै संवारै आपै[1], राम रखे त्यों रहिये ॥
आसन पौन जोग स्रुति सुम्रिति, जोतिष पढ़ि बैलाना।
छौ दरसन पाखंड छानबे, ये कल काहु न जाना ॥

१—गढ़न भंजन सँवारन आपे।

आलम दुनी सकल फिरि आयो, ये कल उहै न आना ।
तजि करिगह सब जगत उचायो, मन मँह मन न समाना ॥
कहँहिं कबीर जोगी औ जंगम, फीकी उनकी आसा ।
राम नाम रटै जौं चात्रिक, निस्चै भगति निवासा ॥२६॥

भाई रे अदबुद रूप अनूप कथा है, कहौं तौ को पतियाई ।
जहँ जहँ देखों तहँ तहँ सोई, सब घट रहा समाई ॥
लछ बिनु सुख दलिद्र बिनु दुख है नींद बिना सुख सोवै ।
जस बिनु जोति रूप बिनु आसिकै, रतन बिहूना रोवै ॥
भर्म बिनु गंजन मनि बिनु निरखै, रूप बिना बहुरूपा ।
थिति बिनु सुरति रहस बिनु आनंद, ऐसो चरित अनूपा ॥
कहँहिं कबीर जगत हरि मानिक, देखहु चित अनुमानी ।
परिहरि लाखौं लोग कुटुम सभै, भजहु न सारंग पानी ॥२७॥

भाई रे गैया एक बिरंचि दियो है, भार अभार भो भारी ।
नौ नारी को पानी पियतु है, त्रिषा न तैयो बुझाई ॥
कोठा बहत्तरि औ लौ लाए, बजर केंवार लगाई ।
खूंटा गाढ़ि दौरि द्रिढ़ बांधो, तैयो तोरि पराई ॥
चारि वृच्छ छौ साखा वाके, पत्र अठारह भाई ।
एतिक लै गम कीन्हेंसि गैया, गैया अति हरहाई ॥
ई सात औरो हैं सातो, नौ औ चौदह भाई ।
एतिक गैया खाय बढ़ायौ, गैया तैयो न अघाई ॥
पुरता में राती है गैया, सेत सींग है भाई ।
अबरन बरन किछुवौ नहिं वाके, खध अखधै खाई ॥

पा० १–ताही करि कै जगत उठावै । २–ऐसो ३–तजि । ४–खुरता मँह, खूँटा में ।

ब्रह्मा विस्नु खोजि कै आये, सिव सनकादिक भाई ।
सिध अनंत वाके खोज परे हैं, गैया किनहु न पाई ।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, जो यह पद अरथावै ।
जो यह पद को गाय बिचारै, आगे ह्वै निरबाहै ॥२८॥

भाई रे नैन रसिक जो जागै ।
पारब्रह्म अविगति अविनासी, कैसहु कै मन लागै ॥
अमली लोग खुमारी त्रिसना, कतहुँ संतोष न पावै ।
काम क्रोध दोऊ मतवाले, माया भरि भरि प्यावै ॥
ब्रह्म कलाल चढ़ाइनि भाठी, लै इन्द्री रस चाखैं ।
संगहिं पोच है ग्यान पुकारै, चतुरा होय सो नाखैं ॥
संकट सोच पोच यह कलि महँ, बहुतक ब्याधि सरीरा ।
जहाँ धीर गंभीर अति निहचलै, तहँ उठि मिलौ कबीरा ॥२९॥

भाई रे दुइ जगदीस कहाँ ते आया, कहु कवने भरमाया ।
अल्लह राम करीमा केसौ, हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक कनक ते गहना, इन महँ भाव न दूजा ।
कहन सुनन को दुइ करि थापे, एक निमाज एक पूजा ॥
वही महादेव वही महंमद, ब्रह्मा आदम कहिये ।
को हिंदू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये ॥
बेद कितेब पढ़ैं वै कुतुबा, वै मोलना वै पांड़े ।
बेगर बेगर नाम धराये, एक मटिया के भाँड़े ॥
कहँहिं कबीर वै दूनौ भूले, रामहिं किनहु न पाया ।
वै खसी वै गाय कटावैं, बादहिं जन्म गँवाया ॥३०

पा० १—पावै । २—निरमल ।

हंसा संसै छूरी कुहिया, गैया पियै बछरुअहिं दुहिया ॥
घर घर सावज खेलै अहेरा, पारथ ओटा लेई ।
पानी माह तलफि गौ भूँभुरि भूरि हिलोरा देई ॥
धरती बरसै बादर भीजै, भीट भया पैराऊ ।
हंस उड़ाने ताल सुखाने, चहले बिंधा पाऊँ ॥
जौ लगि कर डोलै पगु चालै, तौ लगि आस न कीजै ।
कहँहिं कबीर जेहि चलत न दीसै, तासु बचन का लीजै॥३१॥

हंसा हो चित चेतु सवेरा, इन्ह परपंच कैल बहुतेरा ।
पाखंडरूप रच्यो इन त्रिगुन, तेहि पाखंड भूला संसारा ॥
घर के खसम बधिक वै राजा, परजा का दहुँ करै बिचारा ।
भगित न जानै भग्त कहावै, तजि अमृत बिष कैलन्हि सारा ॥
आगे बड़े असहीं भूले, तिनहु न मानल कहल हमारा ।
कहल हमार गांठी बांधहु, निसु बासर रहि हो हुसियारा ॥
यहि कलि गुरू बड़े परपंची, डारि ठगौरी सभ जग मारा ।
बेद कितेब दुइ फंद पसारा, तेहि फंदे परु आपु बिचारा ॥
कहँहि कबीर ते हंस न बिछुरे, जेहि म मिलै[1] छोड़ावनि हारा॥३२॥

सुनु हंसा प्यारे, सरवर तजि कहाँ जाय ।
जेहि सरवर बिच मोतिया चुनते[2], बहु बिधि कैलि कराय ॥
सूखे ताल पुरइन जल छांड़े, कमल गैल कुंभिलाय ।
कहँहि कबीर नर अब के बिछुरे, बहुरि मिलहु कब आय॥३३॥

हरिजन हंस दसा लिए डोलै, निरमल नाम चुनि चुनि बोलैं ।
मुकताहल लिए चोंच लभावै, मौन रहैं की हरि जस गावैं ॥
मान सरोवर तटके बासी, राम चरन चित अंत उदासी ।

पा० १--जेहि मैं । मिलौं २--होते ।

काग कुबुधि निकट नहिं आवैं, प्रतिदिन हंसा दरसन पावैं ॥
नीर छीर का करै निबेरा, कहँहिं कबीर सोइ जन मेरा ॥ ३४ ॥

हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया, राम बड़े मैं तनकी लहुरिया।
हरि मोर रहँटा मैं रतन पिउरिया, हरि के नाम लै कातल बहुरिया ॥
छौ मास तागा बरस दिन कुकुरी, लोग बोलैं भल कातल बपुरी।
कहहिं कबीर सूत भल काता, रहँटा नहीं मुक्ति को दाता ॥ ३५॥

हरि ठग जगत ठगौरी लाई, हरि बियोग कस जियहु रे भाई।
को काको पुरुष कवन काकी नारी, अकथ कथा जम द्रिष्टि पसारी ॥
को काको पुत्र कवन काको बापा, को रे मरै को सहै संतापा।
ठगि ठगि मूल सभन्ह को लीन्हा, राम ठगौरी काहु न चीन्हा ॥
कहँहि कबीर ठग सों मनमाना, गई ठगौरी जब ठग पहिचाना ॥३६॥

हरि ठग ठगत सकल जग डोलै, गौन करत मोसे मुखहू न बोलै।
बालापन के मीत हमारे, हमहिं तजि कहँ चलेउ सकारे ॥
तुमहिं पुरुष मैं नारि तुम्हारी, तोहरि चाल पाहनहूँ ते भारी।
माटी कै देह पवन को सरीरा, हरि ठग ठग से डरै कबीरा ॥ ३७ ॥

हरि बिनु भर्म बिगुरचे गंदा।
जहां जहां गएउ अपनपौ खोयउ, तेहि फंदे बहु फंदा ॥
जोगी कहै जोग है नीको, दुतिया और न भाई।
नुंचित मुंडित मौन जटाधर, तिनहुँ कहाँ सिधि पाई॥
ग्यानी गुनी सूर कवि दाता, ई जो कहैं बड़े हमहीं।
जहाँ से उपजे तहँइ समाने, छूटि गैल सभ तबहीं ॥
बांए दहिने तजे बिकारा, निजुकै हरि पद गहिया।
कहँहिं कबीर गूंगे गुर खाया, पूछे सौं का कहिया ॥३८॥

पा० १– तुह अस।

ऐसें हरि सों जगत लरतु है, पांडुर कतहूँ गरुड़ धरतु है।
मूस बिलाई कैसन हेतू जंबुक करै केहरि सों खेतू॥
अचरज एक देखल संसारा, सोनहा खेदै कुंजल असवारा।
कहँहिं कबीर सुनहु संतो भाई, इहै संधि केहु बिरले पाई॥३९॥

पंडित बाद बदै सो झूंठा।
राम कहे जो जगत गति पावै, खाँड़ कहे मुख मीठा॥
पावक कहे पाव[1] जो डाहै, जल कहे त्रिषा बुझाई।
भोजन कहे भूख जो भाजै तौ दुनियाँ तरि जाई॥
नर के साथ सुवा हरि बोलै, हरि प्रताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ि जाय जंगल में, तौ हरि सुरति न आनै॥
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु, नाम लिए का होई।
धन के कहे धनिक जो होवै, निरधन रहै न कोई॥
साँची प्रीति बिषै माया से, हरि भगतन्हि की हाँसी[2]।
कहँहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बांधे जम पुर जासी॥४०॥

पंडित देखहु मन में जानी।
कहुधौं छूति कहाँ ते उपजी, तबहीं छूति तुम मानी॥
नादे बिंदे रुधिर के संगे, घटही में घट सपचै।
अष्ट कमल ह्वै पुहमी आए, छूति कहां ते उपजै॥
लख चौरासी नाना बासन, सो सब सरि भौ माटी।
एकहि पाट सकल बैठाये, छूति लेत धौं काकी[3]॥
छूतिहिं जेंवन छूतिहिं अँचवन, छूतिहि जगत उपाया।
कहँहिं कबीर ते छूति बिवरजित, जाके संग न माया॥४१॥

पंडित सोधि कहौ समुझाई, जाते आवागवन नसाई।

पा १. । पांव २. फांसी । ३. सीचि लेत धौं काटी ।

अर्थ धर्म अरु काम मोछ कहु, कवन दिसा बसे भाई ॥
उत्तर की दखिन पुरब कि पछिम, स्वर्ग पताल के मांहीं ।
बिना गोपाल ठवर नहिं कतहूँ, नरक जात धौं काहे ॥
अनजाने को सरग नरक है, हरि जाने को नाहीं ।
जेहि डर को सब लोग डरतु हैं, सो डर हमरे नाही ॥
पाप पुन्न की संका नाहीं, सरग नरक नहिं जाहीं ।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, जहां पद तहां समाहीं ॥४२॥

पंडित मिथ्या करहु बिचारा, ना उहां सिष्टि न सिरजन हारा ।
थूल अस्थूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा ॥
जोति सरुप काल नहिं उहवाँ, बचन न आहि सरीरा ।
कर्म धर्म कछुवो नहिं उहवां, ना उहां मंत्र न पूजा ॥
संजम सहित भाव नहिं उहवां, सो दहुँ एक की दूजा ।
गोरख राम एकौ नहिं उहवां, ना उहां बेद बिचारा ॥
हरि हर ब्रह्मा नहिं सिव सक्ती, तिर्थौ नाहिं अचारा ॥
माय बाप गुरु जाके नाहीं, सो दूजा की अकेला ।
कहँहिं कबीर जो अबकी समुझै, सोई गुरू हम चेला ॥४३॥

बूझहु पंडित करहु बिचारा, पुरूषा है की नारी ।
ब्राह्मन के घर ब्राह्मनि होती, जोगी के घर चेली ॥
कलिमा पढ़ि पढ़ि भई तुरूकनी, कलि में रहत अकेली ।
बर नहिं बरै ब्याह ना करई, पुत्र जन्म होनिहारी[1] ।
कारे मूँड़ एक नहिं छाड़ै, अजहूँ आदि कुमारी ।
मैके[2] रहै जाय नहिं ससुरे, सांई संग न सोवै ॥
कहँहिं कबीर वै जुग जुग जीवै, जाति पांति कुल खोवै ॥४४॥

पा० १. जन्मावनिहारी । २–मैके न जाय रहै न ससुरे ।

को न मुवा कहौ पंडित जना, सो समुझाय कहौं मोहि सना।
मूये ब्रह्मा बिस्नु महेसा, पारबती सुत मुये गनेसा॥
मुये चंद मुये रबि सेसा, मुये हनुमत जिन बाँधल सेता।
मुये कृस्न मुये करतारा, एक न मुवा जो सिरजन हारा॥
कहँहिं कबीर मुवा नहि सोई, जाके आवागवन न होई॥४५॥
पंडित अचरज एक बड़ होई।
एक मरे मुये अन्न नहि खाई, एक मरै सीझै रसोई॥
करि असनान देवन की पूजा, नौ गुन काँध जनेऊ।
हाँड़ी हाड़ हाड़ थारी मुख, अब षट करम बनेऊ॥
धरम कथै जहँ जीव बधै तहँ, अकरम करै मोरे भाई।
जो तोहरा को ब्राह्मन कहिए, काको कहिए कसाई॥
कहँहि कबीर सुनहु हो संतो, भर्म भूली दुनियाई।
अपरमपार पार परसोतिम, या गति बिरलै पाई॥४६॥
पंडित बूझि पियहु तुम पानी।
जेहि मटिया के घर मँह बैठे, तामँह सिष्टि समानी।
छपन कोटि जादो जँह भीजे, मुनि जन सहस अठासी॥
पर्ग[1] पर्ग पैगम्बर गाड़े, सो सब सरि भौ माटी।
तेहि मटिया के भांड़े पाँड़े, बूझि पियहु तुम पानी॥
मछ कछ घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवै, पसु मानुस सभ सरिया॥
हाड़ झरी झरि गूद गरी गरि, दूध कहाँ ते आया।
सो लै पांड़े जेवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया॥
बेद कितेब छांड़ि देहु पांड़े, ई सभ मनके भरमा।
कहँहिं कबीर सुनहु हो पांड़े, ई सभ तोहरे करमा॥४७॥

पा० १—पैग पैग।

पंडित देखहु हिरदय बिचारी, को पुरषा को नारी।
सहज समाना घट घट बोलै, वाको चरित अनूपा ॥
वाको नाम काह कहि लीजै, वांके बरन न रूपा।
तैं मैं काह करसि नल बौरे, का तेरा का मेरा ॥
राम खोदाय सक्ति सिव एकै, कहुँ धौं काहु निहोरा।
बेद पुरान कुरान कितेबा, नान भांति बखाना ॥
हिंदू तुरुक जैनि औ जोगी, ये कल काहु न जाना।
छव दरसन महँ जो परमाना, तासु नाम मन माना ॥
कहँहिं कबीर हमहीं पै बौरे, ई सभ खलक सयाना ॥४८॥

बुझ बुझ पंडित पद निरबान, साँझ परे कहँवा बस भान।
ऊँच नीच परबत ढेला न ईंट, बिनु गायन तहँवा उठै गीत ॥
ओस न प्यास मंदिल नहि जहँवा, सहसौं धेनु दुहावहिं तहवाँ।
नितै अमावस नित संक्राती, नित नित नौग्रह बैठे पाँती ॥
मैं तोंहि पूंछौं पंडित जना, हिरदया ग्रहन लागु केहि खना।
कहँहिं कबीर यतनौ नहि जान, कवन सबद गुर लागल कान ॥४८॥

बुझ बुझ पंडित बिरवा न होय, आधे पुरुष आधे बसे जोय।
बिरवा एक सकल संसारा, सरग सीस जरि गयल पतारा ॥
बारह पँखुरी चौबिस पात, घन बरोह लागे चहुँ पास।
फूलै न फरैं वाकी है बानि, रैनि दिवस बिकार चुवै पानि ॥
कहँहि कबीर कछू अछलो न तहिया, हरि बिरवा प्रतिपालहिं जहिया॥५०

बुझ बुझ पंडित मन चितलाय, कबहुँ भरलि बहै कबहुँ सुखाय।
खन ऊबै खन डूबै खन औगाह, रतन न मिलै पावै न थाह।
नदिया नहीं ससरि बहै नीर, मछ न मरै केवट रहै तीर ॥

पा०१—न वाके, न वह। २—कहुधौं काहि निवेरा।

पोखरि नहिं तहँ बाँधल घाट, पुरइनि नाहिं कँवल महँ बाट ।
कहँहिं कबीर ई मन का धोख, बैठा रहै चलन चाहै चोख ॥५१॥

बूझि लीजै ब्रह्म ग्यानी ।
घूरि घूरि बरषा बरषायो, परिया बुंद न पानी ।
चिउँटी के पग हस्ती बाँधो, छेरी बीगर खाया ।
उदधि माँह ते निकरि छाँछरी, चौरे ग्रीह कराया ॥
मेढुक सरप रहै एक संगै, बिल्ली स्वान बियाही ।
नित उठि सिंघ सियार सों डरपै, अदबुद कथो न जाई ॥
संसय मिरगा तन बन घेरै, पारथ बाना मेलै ।
उदधि भूपते तरिवर डाहै, मछ अहेरा खेलै ॥
कहँहिं कबीर ई अदबुद ग्याना, को यहि ग्यानहिं बूझै ।
बिनु पंखै उड़ि जाय अकासै, जीवहिं मरन न सूझै ॥५२॥

वहि बिरवा चीन्है जो कोय, जरा मरन रहित तन होय ॥
बिरवा एक सकल संसारा, पेड़ एक फूटल तीनि डारा ।
मध्य की डार चारि फल लागा, साखा पत्र गनै को वाका ॥
बेलि एक त्रिभुवन लपटानी, बाँधे ते छूटै नहिं ग्यानी ।
कहँहिं कबीर हम जात पुकारा, पंडित होय सो लेहु बिचारा ॥५३॥

साँई के संग सासुर आई
जना चारि मिलि लगन सोधायो, जना पाँच मिलि माड़ौ छायो ॥
संग न सूती स्वाद न मानी, गौ जौवन सपने की नाई ।
सखी सहेलरी मंगल गायो, दुख सुख माथे हरदि चढ़ायो ॥
नाना रूप परी मन भाँवरि, गाँठि जोरि भाई पतियाई ।
अर्घ दै लै चली सुवासिनि, चौके रांड़ भई सँग साँई ॥

पा० १. चौड़े गेह ।

भयो बियाह चली बिनु दूलह, बाट जात समधी समुझाई।
कहँहिं कबीर हम गौने जैबे, तरब कंत ले तूर बजाई ॥५४॥

नल को ढाढ़स देखहु आई, कछु अकथ कथा है भाई।
सिंघ सहदूल एक हर जोतिन्हि, सीकस बोइन्हि धाने।
बन की भलुइया चाखुर फेरै, छागर भये किसाने ॥
कागा कापर धोवन लागे, बकुला खिरपै दाँते।
माखी मूंड़ मुड़ावन लागी, हमहूँ जाइब बराते ॥
छेरी बाघहिं ब्याह होत है, मंगल गावहिं गाई।
बन के रोझ धै दाइज दीन्हों, गोह लोकंदे जाई ॥
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, जो यह पद अरथावै।
सोई पंडित सोई ग्याता, सोई भगत कहावै ॥५५॥

नल को नहिं परतीति हमारी।
झूठे बनिज कियो झूठा सो, पूंजी सभन मिलि हारी।
षट दरसन मिलि पंथ चलायो, तिरदेवा अधिकारी ॥
राजा देस बड़ो परपंची, रैयति रहत उजारी।
इत ते ऊत ऊत ते इतरहु, जम की साँट[1] सँवारी ॥
ज्यों कपि डोरि बाँधु बाजीगर, अपनी खुसी परारी।
इहै पेड़ उतपति परलै को, बिषया सभै बेकारी ॥
जैसे स्वाँन अपावन राजी, त्यों लागी संसारी।
कहँहिं कबीर ई अदबुद ग्याना[2], को मानै बात हमारी।
अजहूँ लेउँ छुड़ाय काल सों, जो करै सुरति संभारी ॥५६॥

ना हरि भजैं न आदति छूटी।
सब्दहिं समुझि सुधारत नाहीं, आँधरे भयहु हियहु की फूटी ॥

पा० १--साँटि। २--सुनहु हो संतो,

पानी माँहिं पषान कै रेखा, ठोंकत उठै भभूका।
सहस घड़ा नित उठि जल ढारैं, फिर सूखे का सूखा॥
सीतै सीत सीत अंग भौ, सन्नि बाढ़ि अधिकाई।
जो सनिपात रोगियहिं मारै, सो साधुन सिधि पाई॥
अनहद कहत कहत जग बिनसै, अनहद स्रिस्टि समानी।
निकट पयाना जमपुर धावै, बोलै एकै बानी॥
सतगुर मिलै बहुत सुख लहिये, सतगुर सब्द सुधारै।
कहहिं कबीर सो सदा सुखी है, जो यह पदहिं बिचारै॥५७॥

नर हरि लागी दव[1] बिकार, बिन ईंधन मिलै न बुझावनहार।
मैं जानौ तोहीं सो ब्यापै, जरै सकल संसार॥
पानी माँह अगिनि को अँकुल, जरत बुझावै पानी[2]।
एक न जरै जरै नौ नारी, जुगुति काहु नहिं जानी॥
सहर जरै पहरू सुख सोवै, कहै कुसल घर मेरा।
पुरिया जरै बस्तु निज उबरै, बिकल राम रंग तेरा॥
कुबुजा पुरुष गले एक लागा, पूजि न मनकी सरधा।
करत बिचार जन्म गौ खीसै, यह तन रहल असाधा॥
जान बूझि जो कपट करतु हैं, तेहि अस मंद न कोई।
कहहिं कबीर सभ नारि राम की, मोते अवर न होई[3]॥५८॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी॥
केसो के कमला होय बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति होय बैठी, तीरथ हूँ में पानी॥

पा० १– धौ। २–मिलै न बुझावन पानी। ३–कहहिं कबीर तेही मूढ़ को, भला कौन विधि होई।

जोगी के जोगिन होय बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होय बैठी, काहू के कौड़ी कानी ॥
भगता के भगतिनि होय बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहैं कबीर सुनो हो संतो, ई सभ अकथ कहानी ॥५६॥

माया मोहै मोहित कीन्हाँ, ताते ग्यान रतन हरि लीन्हा।
जीवन ऐसो सपना जैसो, जीवन सपन समाना ॥
सब्द गुरू उपदेस दियो तैं, छाड़यो परम निधाना।
जोति देखि पतंग हुलसै, पसु ना पेखै आगी ॥
काल फाँस नल मुगुध न चेतै, कनक कामिनी लागी।
सेख सैयद किताब निरखै, सुम्रिति सास्त्र बिचारैं ॥
सतगुर के उपदेस बिना, तैं जानिकै जीवहिं मारै।
करु बिचार बिकार परिहरु, तरन तारन सोय ॥
कहँहिं कबीर भगवंत भजु नल, दुतिय और न कोय ॥६०॥

मरि हौ रे तन का लै करिहौ, प्रान छुटे बाहर लै डरिहौ[1]।
काया बिगुरचनि अनबनि भांती, कोई जारै कोई गाड़ै माटी ॥
हिंदू लै जारैं तुरुक लै गाड़ैं, यहि बिधि अंत दुवौ घर छांड़ैं[2]।
करम फांस जम जाल पसारा, जस धीमर मछरी गहि मारा ॥
राम बिना नल होइहो कैसा, बाट मांझ गोबरौरा जैसा।
कहँहिं कबीर पाछे पछितैहो, या घर से जब वा घर जैहो ॥६१॥

माई मैं दूनौ कुल उजियारी।
सासु ननद पटिया मिलि बँधलो, भसुरहिं परलो गारी।
जारौं मांग मैं तासु नारि की, जिन्ह सरवर रचल धमारी ॥
जना पाँच मिलि कोखिया रखलों, और दुई औ चारी।

पा० १--धरिहौ २--एहि परपंच दुनो घर घालै।

पार परोसिन करौं कलेवा, संगहिं बुधि महतारी ॥
सहजै बपुरे सेज बिछौलन, सुतलिउं पाँव पसारी ।
आवौं न जाँव मरौं नहिं जीवौं, साहेब मेटल गारी ॥
एक नाम मैं निजकै गहलौं, ते छूटल संसारी ।
एक नाम मैं बदिकै लेखौं, कहँहिं कबीर पुकारी ॥६२॥

कासों कहौं को सुनै को पतियाय, फुलवा के छुवत भँवर मरि जाय ।
गगन मँडल महँ फूल एक फूला, तर भौ डार ऊपर भौ मूला ॥
जोतिये न बोइये सींचिये न सोय, बिनु डार बिनु पात फूल एक होय।
फूल भल फूलल मालिनि भल गाँथल, फुलवा बिनसिगैल भौंरा निरासल
कहँहिं कबीर सुनो संतो भाई, पंडित जन फूल रहल लुभाई ॥६३॥

जोलहा बीनहु हो हरिनामा, जाको सुर नर मुनि धरैं ध्याना ।
ताना तनै को अहुँठा[1] लीन्हौं, चरखी चारिहुँ वेदा ॥
सर खूटी एक राम नरायन, पूरन प्रगटे कामा ।
भौ सागर एक कठवत कीन्हौं, ता मैं माड़ी साना ॥
माड़ी को तन माड़ि रहा है, माड़ी बिरले जाना ।
चांद सुरज दुइ गोड़ा कीन्हौं, मांझ दीप कियौ मांझा ॥
त्रिभुवननाथ जो मांजन लागे, स्याम मुररिया दीन्हाँ ।
पाई करि जब भरना लीन्हौं, बै बाँधे को रामा ॥
बै भरा तिहुँ लोकहिं बांधै, कोई न रहत उबाना ।
तीनि लोक एक करिगह कीन्हौ, दिगमग कीन्हौ ताना ।
आदि पुरुष बैठावन बैठे, कबिरा जोति समाना ॥६४॥

जोगिया फिरि गयो नगर मंझारी, जाय समान पाँच जहँनारी ।
गयउ देसंतर कोइ न बतावै, जोगिया बहुरि गुफा नहिं आवै ॥

---

[1] पा० १, अउठा ।

जरिगौ कंथा धजा गौ टूटी, भजिगौ डंड खप्पर गौ फूटी ।
कहँहिं कबीर यह कलि है खोटी, जो रहै करवा सो निकरै टोंटी ॥६५॥

जोगिया के नगर[1] बसो मति कोय, जो रे बसै सो जोगिया होय ।
वहि जोगिया के उलटा ग्यान, काला चोलना[2] नाहीं म्यान ॥
प्रगट सो कंथा गुप्ता धारी, तामँह मूल सजीवनि भारी ।
वहि जोगिया की जुगुति जो बूझै, राम रमै तेहि त्रिभुवन सूझै ॥
अमृत बेली छिन छिन पीवै, कहँहिं कबीर सो जुग जुग जीवै ॥६६॥

जो पै बीज रूप भगवान, तो पंडित का पूछहु आन ।
कहँ मन कहँ बुद्धि कहँ हँकार, सत रज तम गुन तीनि प्रकार ॥
बिष अमृत फल फलैं अनेका, बौधा बेद कहैं तरबे का ।
कहँहिं कबीर तैं मैं का जान, को दहुँ छूटल को अरुझान ॥६७॥

जो चरखा जरिजाय बढ़ैया न मरै ।
कातौं सूत हजार चरखुला जनि जरै ॥
बाबा मोर ब्याह कराव अच्छा बरहि तकाय ।
जौ लौं अच्छा बर ना मिलै तौलौं तुमहिं बियाहु ॥
प्रथमहिं नगर पहुँचते परिगो सोक संताप ।
एक अचंभौ देखिया बिटिया ब्याहल बाप ॥
समधी के घर लमधी आए आए बहू के भाय ।
गोड़े चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय ॥
देव लोक मरि जाहिं गे एक न मरै बढ़ाय ।
यह मन रंजन कारने चरखा दियो दिढ़ाय ॥
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतों चरखा लखै जो कोय ।
जो यह चरखा लखि परै आवागमन न होय ॥६८॥

पा० १--नग्र । २--चोला ।

जंत्री जंत्र अनूपम बाजै, वाके अष्ट गगन मुख गाजै ।
तूही बाजै तूहीं गाजै, तूहीं लिए कर डोलै ॥
एक सब्द महँ राग छतीसौ, अनहद बानी बोलै ।
मुख को नाल स्रवन को तुंबा, सतगुर साज बनाया ॥
जीभि[1] के तार नासिका चरई, माया का मोम लगाया ।
गगन मँडल महँ भौ उजियारा, उलटा फेर लगाया ।
कहँहिं कबीर जन भए बिवेकी, जंत्री सो मन लाया ॥६९॥
जस मांस पसु को तस मासु नर को, रुधिर रुधिर एकसारा जी ।
पसु को मासु भखै सब कोई, नरहिं न भखैं सियारा जी ॥
ब्रह्म कुलाल मेदिनी भईया, उपजि बिनसि कित गइया जी ।
मांस मछरिया तव तुम खइयो, जो खेतन में बोइया जी ॥
माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जिव देइया जी ।
जो तुहरा[2] है सांचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया ।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, राम नाम निज लेइया जी ॥
जो कछु कियहु जीभ के स्वारथ, बदला पराया देइया जी ॥७०॥
चात्रिक कहाँ पुकारौ दूरी, सो जल जगत रहा भरि पूरी ।
जेहि जल नाद बिंदु का भेदा, षट कर्म सहित उपाने बेदा ॥
जेहि जल जीव सीव का बासा, सो जल धरती अमंर प्रकासा ।
जेहि जल उपजल सकल सरीरा, सो जल भेद न जाने कबीरा ॥७१॥

चलहु का टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो ।
दसहूँ द्वार नरक भरि बूड़े, तू गंधी को बेढ़ो ॥
फूटे नयन हिरदय नहिं सूझै, मति एकौ नहिं जानी ।
काम क्रोध त्रिस्ना के माते, बूड़ि मुयहु बिनु पानी ॥

पा० १–जिभ्या । २ तेरा ।

जो जारे तन भसम होय धुरि, गाड़े कृमि कीट खाई ।
सूकर[१] स्वान काग का भोजन, तनकी इहै बड़ाई ॥
चेति न देखु मुगुध नल बौरे, तोंहि ते काल न दूरी ।
कोटिक जतन करहु बहुतेरो, तनकी अवस्था धूरी ॥
बालू के घरवा मँह बैठे, चेतत नाहिं अयाना ।
कहँहि कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़े बहुत सयाना ॥७२॥

फिरहु का फूले फूले फूले ।
जब दस मास अऊँध मुख होते, सो दिन काहे भूले ॥
ज्यौं माखी सहतै नहिं बिहुरै, सोंचि सोंचि धन कीन्हा ।
मूये पीछे लेहु लेहु करैं सभ, भूत रहन कस दीन्हा ॥
जारे देह भसम होई जाई, गाड़े माटी खाई ।
काचे कुंभ उदक ज्यौं भरिया, तनकी इहै बड़ाई ॥
देहरि लै बर नारि संग है, आगे संग सुहेला ।
म्रितकथान लौं संग खटोला, फिरि पुनि हंस अकेला ॥
राम न रमसि मोह के माते, परेहु काल बसि कूवा ।
कहँहिं कबीर नल आपु बंधायो, ज्यौं ललनी भर्म[२] सूवा ॥७३॥

ऐसो जोगिया है बद करमी, जाके गगन अकास न धरनी ।
हाथ न वाके पाँव न वाके, रूप न वाके रेखा ॥
बिना हाट हटवाई लावै, करै बयाई लेखा ।
करम न वाके धरम न वाके, जोग न वाके जुगुती ॥
सिंगी पत्र कछू नहि वाके, काहे को माँगै भुगुती ।
तै मोहिं जाना मैं तोहि जाना, मैं तोहिं माहि समाना ॥

पा० १--सिकर । २--सारो ।

उतपति परलै एकौ नहिं होते, तब कहु कौन ब्रह्म को ध्याना ।
जोगिया ने एक ठाठ कियो है,[1] राम रहा भरि पूरी ॥
औषध मूल किछुवो नहि वाके, राम सजीवनि मूरी ।
नट वट बाजा पेखनि पेखै, वाजी गर की बाजी ॥
कहँहि कबीर सुनहु हो संतो, भया सो राज बिराजी ॥७४॥

ऐसो भरम बिगुरचन भारी ।
वेद किंतेब दीन औ दोजख, को पुरुषा को नारी ॥
माटी के घट साज बनाया, नादे बिंदु समाना ॥
घट बिनसे का नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना ।
एकै तुचा हाड़ मलमूत्रा, एक रुधिर एक गूदा ॥
एक बूँद सों सृस्टि रचो है, को ब्राह्मन को सूदा ।
रजगुन ब्रह्मा तमगुन संकर, सत्तगुना हरि सोई ।
कहँहिं कबीर राम रमि रहिए, हिंदू तुरुक न कोई ॥७५॥

अपन पौ आपु ही बिसरयौ ।
जैसे सुनहा काँच मंदिर में, भरमत भूंकि मरयौ ॥
ज्यौं केहरि बपु निरखि कूप जल, प्रतिमा देखि परयौ ।
वैसहि गज फटिक सिला पर दसनन्हिँ आनि अरयौ ॥
मरकट मूठी स्वाद न बिहुरै, घर घर नटतं फिरयौ ।
कहहिं कबीर ललनी के सुगना, तोहिं कौने पकरयौ ॥७६॥

आपन आस कीजै बहुतेरा, काहु न मरम पाव हरि केरा ।
इंद्री कहाँ करै बिसरामा, सो कहाँ गए जो कहते रामा ॥
सो कहाँ गए जो होत सयाना, होय म्रितक वोहि पदहिं समाना ।
रामानन्द रामरस माते, कहँहिं कबीर हम कहि कहि थाके ॥७७॥

पा० १--जोगी एक आनि ठाठ कियो है । २--रटत ।

अब हम जानिया हो, हरि बाजी का खेल ।
डंक बजाय देखाय तमासा, बहुरि सो लेत सकेलि ॥
हरि बाजी सुरनर मुनि जहँड़े, माये चाटक लाया ।
घर महँ डारि सभै भरमाया, हिरदय ग्यान न आया ॥
बाजी झूठ बाजीगर साँचा, साधुन की मति अैसी ।
कहँहिं कबीर जिन्ह जैसी समुझी, ताकी गति भै[1] तैसी ॥७८॥

कहहु हो अंमर कासों लागा, चेतनि हारे चेत सुभागा ।
अंमर मद्धे दीसै तारा, एक चेतै दूजे चेतवनि हारा ॥
जो खोजहु सो उहँवा नाहीं, सोतो आहि अमर पद माही ।
कहँहि कबीर पद बूझै सोई, मुख हिरदय जाके एकै होई ॥७९॥

बंदे करिले आपु निबेरा ।
आपु जियत लखु आपु ठौर करु, मुये कहाँ घर तेरा ॥
यहि औसर नहिं चेतहु प्रानी, अंत कोई नहिं तेरा ।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, कठिन काल का घेरा ॥८०॥

ऊ तो रहु ररा ममा की भाँति हो, सभ संत उधारन चूनरी ।
बालमीक बन बोइया, चूनि लिया सुकदेव ।
करम बिनौरा होय रहा, सूत कातैं जैदेव ॥
तीन लोक ताना तनो, ब्रह्मा बिसुन महेस ।
नाम लेत मुनि हारिया, सुरपति सकल नरेस ॥
बिनु जिभ्या गुन गाइया, बिन बस्ती का गेह[2] ।
सूने घर का पाहुँना, कासों लावै नेह ॥
चारि बेद कैंड़ा कियो, निरंकार कियो राछ ।
बिनै कबीरा चूनरी, मैं नहि बाँधल बारि[3] ॥८१॥

पा० १– भौ । २–देस । ३–बाछ ।

तुम यहि बिधि समुझहु लोई, गोरी मुख मंदर[1] बाजै।
एक सगुन षट चक्रहिं बेधै, बिना त्रिषभ कोल्हू मांचा।
ब्रह्मै पकरि अगिन महँ होमै, मच्छ गगन चढ़ि गाजा॥
नितै अमावस नितै ग्रहन होइ, राहु ग्रास नित दीजै।
सुरभी[2] भच्छन करत बेदमुख, घन बरसै तन छीजैं॥
त्रिकुटी कुंडल मद्धे मंदर बाजै, औघट अंमर भीजै।
पुहुमी के पनिया अंमर भरिया, ई अचरज को बूझै॥
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, जोगिन सिद्धि पियारी।
सदा रहै सुख संजम अपने, बसुधा आदि कुमारी॥८२॥

भूला बे अहमक नादाना, तुम हरदम रामहिं न जाना।
बरबस आनि के गाय पछारिन्हि, गला काटि जिव आपु लिया॥
जीवत जीव मुरदा करि डारिन्हि, तिस को कहत हलाल हुआ।
जाहि मांसु को पाक कहत हो, ताकी उतपति सुनु भाई॥
रज बीरज सों मांसु उपानी, मांसु नपाकै तुम खाई।
अपनी देखि करत नहिं अहमक, कहत हमारे बड़ेन किया॥
उसकी खून तुम्हारी गरदन, जिन्ह तुमको उपदेस दिया।
स्याही गई सफेदी आई, दिल सफेद अजहूँ न हुआ॥
रोजा बंग निमाज का कीजै, हुजरे भीतर पैठि मुवा।
पंडित बेद पुरान पढ़तु हैं, मोलाना पढ़ैं कुराना।
कहँहिं कबीर दोउ गए नरक महँ, जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना॥८३॥

काजी तुम कौन कितेब बखानी।
झंखत बकत रहहु निसु बासर, मति एकौ नहिं जानी॥
सक्ति अनुमाने सुनति करतु हो, मैं न बदौंगा भाई।
जो खोदाय तेरी सुनति करतु तौ, आपुहि काटि न आई॥

पा० १—मंदिर, मांदर। २—सुरही।

सुनति कराय तुरुक जो होना, औरत को क्या कहिये।
अरध सरीरी नारि बखानो, ताते हिंदू रहिये॥
घालि जनेऊ ब्राह्मन होना, मेहरिहिं का पहिराया।
वै जनम की सुदरी परसै, तुम पांड़े क्यों खाया॥
हिंदू तुरुक कहाँ ते आया, किन यह राह चलाया।
दिल में खोजि दिलही[१] में देखो, भिस्ति कहाँ किन पाया॥
छाड़ पसार राम भजु बौरे[२], जोर करतु है भारी।
कबीर न ओट राम की पकरी, अंत चले पछ हारी[३] ॥८४॥

भूला लोग कहैं घर मेरा।
जा घरवा में भूला डोले, सो घर नाहीं तेरा।
हाथी घोड़ा बैल बाहनो, संग्रह कियो घनेरा॥
बस्ती में से दियो खदेरा, जंगल कियो बसेरा।
गाँठी बाँधि खरच नहिं पठयो, बहुरि कियो नहि फेरा।
बीबी बाहर हरम महल में, बीच मियाँ का डेरा॥
नौमन सूत अरुझि नहिं सुरझै, जनम जनम अरुझेरा।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, पदका करहु निबेरा ॥८५॥

कबिरा तेरो घर कँदला में, या जग रहत भुलाना।
गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल महल दिवाना॥
सकल ब्रह्म मैं हंस कबीरा, कागन चोंच पसारा।
मनमथ करम धरैं सभ देही, नाद बिंद बिसतारा॥
सकल कबीरा बोलै बानी, पानी में घर छाया।
होत अनंत लूटि घट भीतर, घट का मरम न पाया॥

पा०१–दिल में खोजि दिल हीं में खोजा। २–कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो.। ३–पछिताई।

कामिनि रूपी सकल कबीरा, मृगा चरिंदा होई ।
बड़ बड़ ग्यानी मुनिवर थाके, पकरि सकै नहिं कोई ॥
ब्रह्मा बरुण कुबेर पुरंदर पीपा औ प्रहलादा ।
हिरनाकुस नख पेट्र बिदारे, तिनहुँ को काल न राखा ॥
गोरख ऐसो दत्त दिगंबर, नामदेव जैदेव दासा ।
इन्हकी खबरि कहत नहिं कोई, कहाँ कियो है बासा ॥
चौपरि खेल होत घट भीतर, जन्म के पासा डारा ।
दम दम की कोई खबरि न जानैं, करि न सकै निरुवारा ॥
चारि दिग महि मंड रचो है, रूम साम बिच डीली ।
ता ऊपर कछु अगम तमासा, मारो है जम कीली ॥
सकल औतार जाके महिमंडल, अनँत खड़ा कर जोरे ।
अद्‌बुद अगम औगाह रचो है, ई सभ सोभा तोरे ॥
सकल कबीरा बोलै बीरा, अजहूँ हो हुसियारा ।
कहँहिं कबीर गुरु सिकली दरपन हरदम करौं[1] पुकारा ॥८६॥

कबीरा तेरो बन कँदला में, मानु अहेरा खेलै ।
बपु बारी आनंद मृगा, रूचि रूचि सर मेलै ॥
चेतत रावल पावनं[2] खेड़ा, सहजै मूलहिं बाँधै ।
ध्यान धनुष धरि ग्यान बान बन, जोग सार सर साधै ॥
षट चक्र बेधि कमल बेधि, जाय उजियारा कीन्हा ।
काम क्रोध लोभ मोह, हाँकि सावज दीन्हा ॥
गगन मद्धे रोंकिन्हि द्वारा, जहां दिवस नहिं राती ।
दास कबीर जाय पहूँचै, बिछुरे संग संघाती[3] ॥८७॥

सावज न होय भाई सावज न होय, वाकी माँसु भखै सभ कोय ।
सावज एक सकल संसारा, अविगति वाकी बाता ॥

पा० १--करहिं । २--पौन । ३--रु साथी ।

पेट फारि जो देखिय रे भाई, आहि कलेज न आँता ।
ऐसो[1] वाके मांसु रे भाई, पल पल मासु बिकाई ॥
हाड़ गोड़ लै घूर पँवारै, आगि धुँवा नहिं खाई ॥
सीर सींग किछुवो नहिं वाके, पूँछ कहाँ वह पावै ।
सभ पंडित मिलि धंधे परिया, कबीर बनौरी गावै ॥८८॥

सुभागे केहि कारन लोभ लागे, रतन जन्म खोये ।
पूरुब जन्म भूमि के कारन, बीज काहे के बोये ॥
बुंद से जिन्ह पिंड सँजोयो[2], अगिनी कुंड रहाया ।
दस मास माता के गरभै, बहुरि लागलि माया ॥
बालकहूँ ते वृद्ध हुआ है, होन हार सो हूवा ।
जब जमु अइहैं बांधिलै चलिहैं, नैन भरि भरि रोया ॥
जीवन की जनि राखहु आसा, काल धरे है स्वांसा ।
बाजी है संसारा कबीरा, चित चेति ढारो पांसा ॥८९॥

संत महंतो सुमिरहु सोई, काल फाँस सों बाँचा होई ।
दत्तात्रेय मरम नहिं जाना, मिथ्या स्वाद भुलाना ॥
सलिला मथिकै घृत को काढ़िनि, ताहि समाधि समाना ।
गोरख पौन राखि नहिं जाना, जोग जुगुति अनुमाना ॥
रिधि सिधि संजम बहुतेरे, पारब्रह्म नहिं जाना ।
बसिष्ट सिस्टि विद्या संपूरन, राम ऐसो सिष साखा ॥
जाहि राम को करता कहिये, तिनहुँ को काल न राखा ।
हिंदू कहैं हमहिंलै जारौं, तुरुक कहैं हमारे पीर ॥
दोनों आय दीन महँ झगरैं, ठाढ़े देखै हंस कबीर ॥९०॥

पा० १--ऐसी । २--पानी से जिन पिंडै साजे ।

तन धरि सुखिया काहु न देखा, जो देखा सो दुखिया।
उदै अस्त की बात कहतु हौं, ताकर करहु बिबेका ॥
बाटे बाटे सभ कोई दुखिया, का गिरही बैरागी।
सुकाचार्ज दुख के कारन, गरभहिं माया त्यागी ॥
जोगी जंगम ते अति दुखिया, तपसी को दुख दूना।
आसा त्रिसना सभ घट ब्यापै, कोई महल नहिं सूना ॥
साँच कहौं तो सभ जग खीझै, झूठ कहा नहिं जाई।
कहँहिं कबीर तेई भौ दुखिया जिन यह राह चलाई ॥६१॥

ता मन को चीन्हु[1] मोरे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई।
सनक सनंदन जैदेव नामा, भक्ति हेतु मन उनहुँ न जाना ॥
अंबुरीषि प्रहलाद सुदामा, भक्ति सही मन उनहुँ न जाना।
भरथरि गोरख गोपीचंदा, ता मन मिलि मिलि कियो अनंदा ॥
जा मन को कोई जाने न भेवा, ता मन मगन भए सुकदेवा।
सिव सनकादिक नारद सेसा, तन के भीतर मन उनहुँ न पेख।
एकल निरंजन सकल सरीरा, तामहँ भ्रमि भ्रमि रहल कबीरा ॥६२॥

बाबू अैसो है संसार तिहारो, ई है कलि बेवहारो।
को अब अनुख सहै प्रति दिनको, नाही रहनि हमारो ॥
सुम्रिति सोहाय सभै कोई जानै, हिरदया तत्तु न बूझै।
निरजिव आगे सरजिव थापै, लोचन किछुवो न सूझै ॥
तजि अमृत विष काहे को अँचवै, गाँठी बाँधै खोटा।
चोरन दीन्हों पाट सिंघासन, साहुन से भौ ओटा ॥
कहँहिं कबीर झूठो मिलि झूठा, ठगहीं ठग बेवहारा।
तीनि लोक भरि पूरि रह्य है, नाहीं है पतियारा ॥६३॥

पा० १–ढूँढ़हु।

कहहु निरंजन कौने बानी ।
हाथ पाँव मुख स्रवन जीभि नहिं, का कहि जपहु हो प्रानी ।
जोतिहिं जोति जोति जो कहिये, जोति कवन सहिदानी ॥
जोतिहिं जोति जोति दै मारै, तब कहाँ जोति समानी ।
चारि बेद ब्रह्मा जो कहिया, तिनहुँ न या गति जानी ॥
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, बुझहु पंडित ग्यानी ॥६४॥

को अस करै नगर कोतवलिया, मासु फैलाय गीध रखवरिया ।
मूस भौ नाँव मँजार कडहँरिया, सौवै दादुल सरप पहरिया ॥
बैल बियाय गाय भै बंझा, बछवहि दूहहिं तीनि तीनि संझा ।
नित उठि सिंघ सियार सों जूझै, कबीर के पद जन बिरला बूझै ॥६५॥

काको रोवौं गल बहुतेरा, बहुतक मुवल फिरल नहीं फेरा[1] ॥
जब हम रोया तैं न सम्हारा, गरभ बास की बात बिचारा ॥
अब तैं रोया क्या तैं पाया, केहि कारन तैं मोहिं रोवाया ।
कहँहिं कबीर सुनहु नर लोई, काल के बसि परै मत कोई ॥६६॥

अल्लह राम जीवँ[2] तेरी नांई, जन पर मेहर होहु तुम सांई ।
का मूड़ी भूमी सिर नाए, का जल देह नहाए ॥
खून करैं मिसकीन कहावैं, औगुन रहैं छिपाए ।
का उजू जप मंजन कीन्हें, का महजिद सिर नाए ।
हिरदया कपट निमाज गुजारैं, का हज मक्का जाए ॥
हिंदू एकादसी चौबीसो, रोजा मुसलिम तीस बनाये ।
ग्यारह मास कहो किन्ह टारा, ये केहि मांहि समाये ॥
जो खोदाय महजीद बसतु है, और मुलुक केहि केरा ।
तीरथ मूरति राम नेवासी, दुइ महँ काहु न हेरा ॥

पा० १--बहुतक गये फिरे नहिं फेरा । २--जीवों ।

पूरब दिसा हरी को बासा, पच्छिम अल्लह मुकामा ।
दिल में खोज दिलही में खोजौ, इहै करीमा रामा ॥
बेद कितेब कहो किन झूठा, झूठा जो न बिचारै ।
सभ घट एक एक कै लेखा, भै दूजा कै[1] मारै ॥
जेते औरत मरद उपाने, सो सभ रूप तुम्हारा ।
कबीर पोंगरा अलह राम का, सो गुरु पीर हमारा ॥६७॥

आवं[2] बे आव मुझे हरि को नाम, और सकल तजु कौने काम ।
कहाँ तक आदम कहाँ तक हव्वा, कहाँ तब पीर पैगंबर हुआ ॥
कहाँ तब जिमी कहाँ असमान, कहाँ तब बेद कितेब कुरान ।
जिन्ह दुनियाँ महँ रची मसीद, झूठा रोजा झूठी ईद ॥
साँचा एक अल्लह को नाम, जाको नै नै करहु सलाम ।
कहु धौं[3] भिस्ति कहाँ ते आई, किसके कहे तुम छुरी चलाई ॥
करता किरतम बाजी लाई, हिंदू तुरुक की राह चलाई ।
कहाँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहाँ तब किरतम किन उतपाती ॥
नहिं वाके जाति नही वाके पाँती, कहँहिं कबीर वाके दिवस न राती॥६८

अब कह चलेहु अकेले मीता, उठहु न करहु घरहु की चिंता ।
खीर खांड़ घृत पिंड सँवारा, सो तन लै बाहर करि डारा ॥
जिहि सिर रचि रचि बांधेउ पागा, सो सिर रतन बिगारैं कागा
हांड़ जरैं जैसे लकड़ी झूरी, केस जरैं जैसे त्रिन की कूरी ॥
आवत संग न जात संघाती, काह भये दल बांधल हाथी ।
माया के रस लेन पाया, अंतर जम्रु बिलार होय धाया ॥
कहहिं कबीर नल अजहूँ न जागा, जम का मुगदर मँझ सिर लागा॥६९

पा० १–केहि, के । २–आवो वे, आब विआब । ३–दहुँ ।

देखहु लोगा हरि कै सगाई, माय धरै पुत्र धिया संग जाई।
सासु ननँद मिलि अदल[1] चलाई, मादरिया ग्रिह बेटी जाई ॥
हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।
कहँहिं कबीर ई हरि के बूता, राम रमे तैं[2] कुकरि के पूता॥१००॥

देखि देखि जिय अचरज होय, यह पद बूझै बिरला कोय।
धरती उलटि अकासहिं जाय, चिउँटी के मुख हस्ति समाय ॥
बिनु पवनै जो परवत उड़ै, जिया जंतु सभ बिरछा बूड़े[3]।
सूखे सरवर उठै हिलोर, बिनु जल चकवा करै किलोल ॥
बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिनु देखे का करै बखान।
कहँहिं कबीर जो पद को जान, सोई संत सदा परमान ॥१०१॥

हो दारी के[4] ले देऊँ तोहि गारी, तैं समुझि सुपंथ बिचारी।
घरहू के नाह जे अपना, तिन्हहुँ से भेंट न सपना ॥
ब्राह्मन छत्री बानी, तिन्हहुँ कहल नहिं मानी।
जोगी जंगम जेते, आप गहे[5] हैं तेते ॥
कहँहिं कबीर एक जोगी, भरमि भरमि भौ भोगी ॥१०२॥

लोगा तुमहीं मति के भोरा[6]।
जौं पानी पानीं मँह मिलिगौ, त्यौं धुरि मिलै[7] कबीरा।
जौ मैथिलकौ साँचा ब्यास, तोर मरन होय मगहर पास ॥
मगहर मरै सो गदहा होय, भल परतीति राम सों खोय।
मगहर मरै मरन नहिं पावै, अन्ते मरै तौ राम लजावै ॥
का कासी का मगहर ऊसर, हृदय राम बस मोरा।
जो कासी तन तजै कबीरा, रामहिं कौन निहोरा ॥१०३॥

पा० १—अचल। २—सो। ३—चढ़े। ४—किलै। ५—गये। ६—भीरा।
७—मिले, मिला। ८—मैं थी को।

कैसे तरो नाथ कैसे तरो अब बहु कुटिल भरो।
कैसी तेरी सेवा पूजा कैसो तेरो ध्यान, ऊपर ऊपर[1] देखो बग अनुमान॥
भावतो भुजंग देखो अति बिभिचारी, सुरति सयाने[2] तेरी मति तो मँजारी
अति रे बिरोध देखो अति रे देवाना, छौ दरसन देखो भेष लपटाना॥
कहहिं कबीर सुनहु नलबंदा, डाइनि डिंभ[3] सकल जग खंदा॥१०४॥

यह भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन्ह जिन्ह पूजा तिन जहँड़ाया।
अंड न पिंड न प्रान न देही, काटि काटि जीव कौतुक देही[4]॥
बकरी मुरगी कीन्हेउ छेवा, आगिले जनम उन्हँ औसर लेवा।
कहँहिं कबीर सुनहु नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवै होई॥१०५॥
भँवर उड़े बग बैठे आय, रैनि गई दिवसौ चलि जाय।
हल हल कांपे बाला जीव, ना जानौं का करिहैं पीव॥
काचे बासन टिकै न पानी, उड़िगौ हंस काया कुम्हिलानी॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी, कहँहिं कबीर यह कथा सिरानी॥१०६

खसम बिनु तेली के बैल भयो।
बैठत नाहिं साधुकी संगति, नाधे, जनम गयो।
बहि-बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, जम को डंड सह्यो॥
धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो।
खसमहिं छाँड़ि बिषै रंग राते,[5] पाप के बीज बयो॥
झूठि मुक्ति नल आस जिवन की, प्रेत को जूठ खयो॥
लख चौरासी जीव जंतु में, सयार जात बह्यो॥
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, स्वान की पूँछ गह्यो॥१०७॥
अब हम भइलि बाहर[6] जलमीना, पुरब जनम तप का मद कीन्हा।
तहिया मै अछलौं मन बैरागी, तजलौं मैं लोग कुटुम राम लागी॥

पा० १—उजर। २—सचान। ३—एक। ४—केही। ५—राचेहु। ६—बहुरि।

तजलौं कासी मति भै भोरी, प्राननाथ कहु का गति मोरी।
हमहीं कुसेवक तुमहिं अयाना, दुह महँ दोस काहि भगवाना ॥
हम चलि अइलीं तोहरे सरना, कतहुँ न देखहुँ हरि जी के चरना।
हम चलि अइलीं तोहरे पासा, दास कबीर भल कैल निरासा ॥१०८॥

लोग बोलैं दूरि गए कबीर, या मति कोई कोई जाने धीर।
दसरथ सुत तिहुँलोकहिं जाना, राम नाम का मरम है आना[1]।
जेहि जीव जानि परा जल लेखा, रजु को कहै उरग सम पेखा ॥
जदपि फल उत्तिम गुन जाना, हरि छोड़ि मन मुकुती उनमाना[2]।
हरि अधार जस मीनहिं नीरा, और जतन कछु कहहिं कबीरा ॥१०९

अपनो करम न मेटो जाई।
करम क लिखल मिटहिं धौं कैसे, जो जुग कोटि सिराई ॥
गुरु बसिष्ट मिलि लगन सोधायो, सुर्ज मंत्र एक दीन्हा।
जो सीता रघुनाथ बियाही, पल एक संचु न कीन्हा ॥
तीनि लोक के करता कहिये, बालि बधो बरियाईं।
एक समै ऐसी बनियाई, उनहूँ औसर पाई ॥
नारदमुनि को बदन छिपायो, कीन्हों कपि को रूपा।
सिसुपाल के भुजा उपारेहु, आपु भये हरि ठूँठा ॥
पारबती को बांझ न कहिए, ईस न कहिए भिखारी।
कहँहिं कबीर करता की बातैं, करम की बात निनारी[3] ॥११०॥

है कोई गुर ग्यानी जगत महँ, उलटि बेद बूझै।
पानी में पावक जरै, अँधे आँखिन सूझै ॥
गाय तो नाहर खायो, हरिनै खायो चीता।
काग लंगर फांदिकै, बटेर बाज जीता ॥

पा० १—तुहइं की आना। २—नहि माना। ३—नियारी।

मूसे तौ मंजारै खायौ, स्यारै खायो स्वाना ।
आदि को उपदेस जानै, तासु बेस बाना ॥
एकहिं दादुल खायो, पाँचहू भुवंगा ।
कहँहिं कबीर पुकारिके, हैं दोऊ एक संगा ॥ १११ ॥

झगरा एक बड़ो राजा राम, जो निरुवारै सो निरवान ।
ब्रह्म बड़ा की जहाँ ते आया, बेद बड़ा की जिन्ह उपजाया ॥
ई मन बड़ा की जेहि मनमाना, राम बड़ा की रामहिं जाना ।
भ्रमि-भ्रमि कबीरा फिरै उदास, तीरथ बड़ा की तीरथ दास॥११२

झूठे जनि पतियाहु हो, सुनु संत सुजाना ।
तेरे घटही में ठग पूर है, मति खोवहु अपाना ॥
झूठे का मंडान है, धरती असमाना ।
दसौं दिसा वाके फंद है, जीव घेरै आना ॥
जोग जाप तप संजम, तीरथ ब्रत दाना ।
नौधा बेद कितेब है, झूठे का बाना ॥
काहु के सब्दै फुरै, काहू करामाती ।
मान बड़ाई लै रहै, हिन्दू तुरुक दोउ जाती ॥
बात ब्यौंतै असमान की मुद्दति नियरानी ।
बहुत खुदी[2] दिल राखते, बूड़े बिनु पानी ॥
कहँहिं कबीर कासों कहौं, सकलो जग अंधा ।
साँचा सो भागा फिरै, झूठे का बंदा ॥११३॥

सार सब्द से बाँचि हो, मानहु एतबारा ।
आदि पुरुष एक वृक्ष है, निरंजन डारा ॥

पा० १—ऊदेस । २—खुसी ।

तिरदेवा साखा भए, पत्ता संसारा ।
ब्रह्मा बेद सही कियो, सिव जोग पसारा ॥
बिस्नु माया उतपनि किया, उरले व्यवहारा ।
तीन लोक दसहूँ दिसा, जम रोंकिनि द्वारा ॥
कीर भए सब जीयरा, लिए बिष के चारा ।
जोति सरूपी हाकिमा, जिन अमल पसारा ॥
करम की बंसी लायकै, पकर्‌यौ जग सारा ।
अमल मिटावौं तासु का, पठवौं भवपारा ॥
कहँहिं कबीर निरभै करौं, परखो टकसारा ॥११४॥

संतो ऐसी भूल जग मांही, जाते जीव मिथ्या में जाहीं ।
पहिले भूले ब्रह्म अखंडित, झाँई आपुहिं मानी ।
झाँई मानत इच्छा कीन्हीं, इच्छा ते अभिमानी ॥
अभिमानी करता ह्वै बैठे, नाना पंथ चलाया ।
वही भरम में सब जगभूला, भूल का मरम न पाया ॥
लख चौरासी भूलते कहिये, भूलते जग बिटमाया ।
जो है सनातन सोई भूला, अब सो भूलहिं खाया ॥
भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहिं लखाई ।
कहँहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई ॥११५॥

पा०१–भूलत ।

ग्यान चौंतीसा

ओ ऊँकार आदि जो जानै, लिखि कै मेटै ताहि सो मानै ।
ओ ऊँकार कहै सभ कोई, जिन्ह यह लखा सो बिरला होई ॥
क का कमल किरन महँ पावै, ससि बिगसित संपुट नहिं आवै ।
तहाँ कुसुंभ रंग जो पावै, औगह गहि कै गँगन रहावै ॥
ख खा चाहै खोरि मनावै, खसमहिं छाँड़ि दहूँ दिसि धावै ।
खसमहिं छोड़ि छिमा होय रहई, होय न खीन अखै पद लहई ॥
ग गा गुरु के बचनहिं मान, दूसर सब्द करै नहिं कान ।
तहाँ बिहँगम कतहुँ न जाई, औगह गहिके गँगन रहाई ॥
घ घा घट बिनसे घट होई, घट ही में घट राखु समोई ।
जौ घट घटै घटहि फिरि आवै, घट ही मँह फिरि घटहि समावै ॥
न ना निरखत निसु दिन जाई, निरखत रहा नैन रतनाई ।
निमिषै एक जो निरखै पावै, ताहि निमिख मँह नैन छिपावै ॥
च चा चित्र रचो बहु भारी, चित्र छोड़ि तैं चेतु चित्रकारी ।
जिन्ह यह चित्र विचित्र उखेला, चित्र छोड़ि तैं चेतु चितेला ॥
छ छा आहिं छत्रपति पासा, छकि किन रहै मेटि सब आसा ।
मैं तोहीं छिन छिन समुझाया, खसम छोड़ि कस आपु बँधाया ।
ज जा ई तन जियतहिं जारो, जोबन जारि जुक्ति जो पारो ।
जौं कछु जानि जानि परिजरै, घटहीं जोति उजियारी करै ॥
झ झा अरुझि सरुझि कत जान, हींडत ढूढ़त जाहिं परान ।
कोटि सुमेर ढूँढ़ि फिरि आवै, जो गढ़ गढ़ै गढ़हिं सो पावै ॥

न ना निग्रह से करु नेहू, करु निरुवार छाँडु संदेहू ।
नहीं देखै नहिं भाजै केहू, जानहु परम सयानप येहू ॥

पा० १--जुक्ति ।

नहीं देखि नहिं आपु भजाऊ, जहाँ नहीं तहाँ तन मन लाऊ ।
जहाँ नहीं तहाँ सभ कछु जानी, जहाँ नहीं तहाँ ले पहचानी ॥
ट टा बिकट बाट मनमाँही, खोलि कपाट महल मो जाही ।
रही लटापटि[1] जुटि जेहि[2] माहीं, होहिं अटल ते कतहूँ न जाहीं ॥
ठ ठा ठौर दूरि ठग नियरे, नितिकै निठुर कीन्ह मन धीरे[3] ।
जे ठग ठगे सभ लोग सयाना, सो ठग चीन्हि ठौर पहिचाना ॥
ड डा डर उपजे डर होई, डरहि महँ डर राखु समोई ।
जौ डर डरै डरहिं फिरि आवै, डरही महँ फिरि डरहिं समावै ।
ढ ढा ढूढ़त ही कत जान, हींडत ढूढ़त जाहि परान ।
कोटि सुमेर ढूढ़ि फिर आवै, जिहि ढूँढ़ा सो कतहूँ न पावै ॥
नाना दुई[4] बसाये गाऊँ, रे ना ढूढ़े तेरे नाऊँ ।
मुये एक जाँय तजि घना, मरहिं इत्यादिक ते के गना ॥
त ता अति त्रियौ नहिं जाई, तन त्रिभुवन महँ राखु छुपाई ।
जौ तन त्रिभुवन माहि छिपावै, तत्तुहिं मिलै तत्तु सो पावै ॥
थ था अति अथाह थाहो नहिं जाई, ई थिरि ऊ थिरि नाहिं रहाई ।
थोर थोर थिर होहुँ रे भाई, बिन खंभै[5] जैस मंदिल थँभाई ॥
द दा देखहु बिन सनि हारा, जस देखहु तस करहु विचारा ।
दसहुँ दुवारे तारी लावै, तब दयाल के दरसन पावै ।
ध धा अर्ध माहिं अँधियारी, अरध छाँड़ि ऊरध मन तारी ।
अर्ध छोड़ि उर्ध मन लावै, आपा मेटि कै प्रेम बढ़ावे ॥
चौथे वो नाना महँ जाई, राम कै गदहा होय खर खाई ।
प पा पाप करै सभ कोई, पाप के करे धर्म नहिं होई ॥
प पा कहै सुनहु रे भाई, हमरे सेवे[6] कछुवो न पाई ।
फ फा फल लागे बड़ दूरी, चाखै सतगुरु देइ न तूरी ॥

पा०—१—लटपटी । २—तेहि । ३—घेरे । ४—दूरि । ५—थंभे । ६—सेइन ।

फ फा कहै सुनहु रे भाई, सरग पताल की खबरि जनाई।
ब बा बर बर कर सभ कोई, बर बर करै काज नहिं होई॥
ब बा कहै बात अरथाई, फल का मरम न जानहु भाई।
भ भा भभंरि रहा भर पूरी, भभरे ते है नियरे दूरी॥
भ भा कहै सुनहु रे भाई, भभरे आवै भभरे जाई।
म मा सेवै मरम न पाई, हमरे से[2] इन मूल गँवाई॥
माया मोह रहा जग पूरी, माया मोहहिं लखहु बिसूरी[3]।
ज जा जगत रहा भर पूरी जगतहुँ ते है जाना दूरी॥
ज जा कहै सुनहुँ रे भाई, हमरे सेवे जै जै पाई।
र रा रारि रहा अरुझाई, राम कहे दुख दालिद जाई॥
र रा कहे सुनहु रे भाई, सतगुरु पूछि के सेवहु आई।
ल ला तुतरे बात जनाई, तुतरे पाय तुतरे परचाई[4]॥
अपने तुतुर और को कहई, एकै खेत दुनौ निरबहई।
व वा वह वह कह सभ कोई, वह वह किए काज ना होई॥
वह तो कहै सुनै जो कोई, सर्ग पताल न देखै जोई।
ससा सर नहिं देखै कोई, सर सीतलता एकै होई॥
स सा कहै सुनहु रे भाई, सुन्न समान चला जग जाई।
ष षा कहै सुनहु रे भाई, राम नाम लै जाहु पराई॥
ष षा खर खर करै सभ कोई, खर खर किए काज नहिं होई।
स सा सरा रचो बरिआई, सर बेधे सभ लोग तवाई॥
स सा के घर सुनगुन होई, यतनी बात न जानै कोई।
ह हा करत जीव सभ जाई, छेव परै तब को समुझाई॥
छेव परे केहु अंत न पावा, कहँहिं कबीर अगमन गोहरावा।

पा० १—भर्म। २—सेवे। ३—विचारी, ममा कहै सुनहु रे भाई, मूल छोड़ि कस डारहि जाई। ४—परिचय पाई।

विप्रमतीसी

सुनहु सभन्हि मिलि विप्रमतीसी, हरि बिनु बूड़ी नाव भरी सी।
ब्राह्मन होय कै ब्रह्म न जानै, घर महँ जग्य प्रतिग्रह आनै॥
जे सिरजा तेहिं नहिं पहिचानै, करम धरम लै बैठि बखानै।
ग्रहन अमावस सायर दूजा, सांती पाठ[1] परोजन पूजा॥
प्रेत कनक मुख अंतर वासा, आहुति सहित होम कै आसा।
कुल उत्तिम जगमांहि कहावैं, फिरि फिरि मधिम करम करावैं॥
सुत दारा मिलि जूठो खाई, हरि भक्ता के छूति लगाई।
करम असौच उचिष्टा खाहीं, मति भरिष्ट जम लोकहिं जाहीं॥
नहाय खोरि उत्तिम होय आवैं, विस्नु भगत देखे दुख पावैं।
स्वारथ लागि रहै बेकाजा[2], नाम लेत पावक जौं डाजा[3]॥
राम कृस्न की छोड़िन्हि आसा, पढ़ि गुनि भये क्रितिम के दासा।
करम पढ़ैं[4] करमहिं को धावैं, जे पूछे तेहि करम दिढ़ावैं॥
निह करमी कै निंदा कीजै, करम करै ताही चित दीजै।
ऐसी भक्ति भगवंत की लावैं, हिरनाकुस को पंथ चलावैं॥
देखहु कुमति[5] केर परगासा, भये अभि अंतर किरतिम दासा।
जाके पूजे पाप न ऊड़ै, नाम सुमिरिनी भव महँ बूड़ै॥
पाप पुन्नि के हाथहि पासा, मारि जगत का कीन्ह बिनासा।
ई बहनी कुल बहनि कहावैं, ई गृह जारैं वा गृह मारैं॥
बैठा ते घर साहु कहावैं, भीतर भेद मूसि मनहिं लखावैं।
ऐसी बिधि सुर बिप्र भनीजै, नाम लेत पंचासन[6] दीजै॥

पा०—१–स्वास्तिक पाठ। २-'वे आढा। ३–डाढा। ३–करहिं।
५–सुमति। ६–पीठासन।

बूड़ि गए नहिं आपु संभारा, ऊंच नीच कहु काहि जोहारा।
ऊंच नीच है मघिम बानी, एकै पवन एक है पानी॥
एकै मटिया एक कुंभारा, एक सभन्हि का सिरजन हारा।
एक चाक सभ चित्र बनाया, नाद बिंद के मध्य समाया॥
व्यापी एक सकल में जोती, नाम धरे का कहिए भोती।
राछस करनी देव कहावैं, बाद करैं गोपाल न मावैं।
हंस देह तजि न्यारा होई, ताकर जाति कहै धौं कोई।
सेत स्याह की राता पियरा, अबरन बरन की ताता सियरा॥
हिंदू तुरुक की बूढ़ो बारा, नारि पुरुष का करहु बिचारा।
कहिए काह कहा नहीं माना, दास कबीर सोई पै जाना॥

बहा है बहि जात है, कर गहि ऐंचहु और।
समुझाये समुझै नहीं, देहु धका दुइ और॥

पा० १–जो कहा नहि मानै।

कहरा

सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के वचन समाई हो।
मेली सिस्टि[1] चराचित[2] राखहु, रहहु दिस्टि लौ लाई हो॥
जस दुख देखि रहहु यहि औसर, अस सुख होई है पाये हो।
जो खुट्कार वेगि नहि लागे, हिरदय निवारहु कोहू हो॥
मुकुति की डोरि गाढ़ि जनि खैंचहु, तब बाझी बड़ रोहू हो।
मनुवहिं कहहु रहहु मन मारे, खिझुवा खीझि न बोलै हो॥
मानू मीत मीतैयौ न छोड़ै, कबहुँ[3] गाँठि न खोलै हो।
भोगौ भोग भुगुति जनि भूलहु, जोग जुगुति तन साधहु हो॥
जो यहि भाँति करहु मतवाली, ता मत के चित बाँधहु हो।
नाहि तौ ठाकुर है अति दारुन, करिहै चाल कुचाली हो॥
बाँधि मारि डाँड़ि सभ लैहैं, छुटिहै सभ मतवाली हो।
जबही साँवत आनि पहूँचै, पीठि सांटि भल टूटिहै हो॥
ठाढ़े लोग कुटुम सभ देखैं, कहे काहु के न छूटिहै हो।
एक तो निठुरि[4] पाँव परि बिनवैं, विनति किये नहिं मानै हो॥
अनचिन्ह रहेउ न कियेहु चिन्हारी, सो कैसे पहिचानै हो।
लीन्ह बोलाय बात नहिं पूछै, केवट गरम ते न[5] बोलै हो॥
जेकरे गाँठि समर कछु नाहीं, सो निरधन होय डोलै हो।
जिन्ह सभ[6] जुक्ति अगमन कै राखिनि, धरनि माछ भरि डेहरि हो॥
जेकरे हाथ पाँव कछु नाहीं, धरै लागु तेहि सोहरि हो।
पेलना अछत पेलि चलु बौरे, तीर तीर का टोवहु हो॥
उथले रहहु परहु जनि गहिरे, मति हाथहु की खोवहु हो।
ऊपर के घाम तरे कै भूंभुरि, छाँह कतहु नहिं पायहु हो॥

पा० १—सिस्त। २—चरा चित। ३—कमऊ। ४—नीठि, अनिष्ट। ५—तन।
६—सम।

ऐसनि जानि पसीजहु सीझहु, कस न छतरिया छायहु हो।
जो कछु खेल किये सो कीयेहु, बहुरि खेल कस होई हो॥
सासु ननद दोउ देत उलाहन, रहहु लाज मुख गोई हो।
गुर भौ ढील गोनि भै लचपचि, कहा न मानेहु मोरा हो॥
ताजी तुरुकी कबहुँ न साजेहु[1] चढ़ेहु काठ के घोरा हो।
ताल झाँझ भल बाजत आवै, कहरा सभ कोई नाचै हो॥
जेहि रंग दुलह बियाहन आये, तेहि रंग दुलहिनि राँचै हो।
नौका अछत खेवै नहिं जानहु, कैसे लगवहु तीरा हो॥
कहहिं कबीर राम रस माते, जोलहा दास कबीरा हो॥ १॥
मत सुनु मानिक मत सुनु मानिक, हिरदया बंद निवारहु हो।
अटपट कुंभरा करै कुँभरैया, चमरा गाँव न बाँचै हो॥
नित उठि कोरिया बेठ भरतु है, छिपिया आँगन नाचै हो।
नित उठि नौवा नाव चढ़तु है, वेरहि बेरा बोरै हो[2]॥
राउर की कछु खबरि न जानहु, कैसे क झगरा निवेरहु हो।
एक गाँव में पाँच तरुनि बसैं, तामह जेठ जेठानी हो॥
आपन आपन झगरा पसारिनि, पिया सो प्रीति नसानी हो।
भैंसिन्ह माँह रहत नित बकुला, तकुला ताकि न लीन्हा हो॥
गाइन्हँ माँह बसेउ नहिं कबहूँ, कैसे कै पद पहिचनवहु हो।
पंथी पंथ पूँछि नहिं लीन्हो, मूढ़हि मूढ़ गँवारा हो॥
घाट छाँड़ि कस औघट रेंगहु, कैसे कै लगवहु तीरा हो।
जतइत के धन हेरिन्हि ललचिन, कोदइत के मन दौरा हो॥
दुइ चकरी जनि दरन[3] पसारहु, तब पैहौ ठिक ठौरा हो।
प्रेम बान एक सतगुरु दीन्हा, गाढ़ो तीर कमाना हो॥
दास कबीर कीन्ह यह कहरा, महरा माहिं समाना हो॥ २॥

पा० १—साधेहु। २—बरही बेरा बारेब हो। ३—दरर।

राम नाम को सेवहु बीरा, दूरि नाहि दुरि आसा हो।
और देव का पूजहु बौरे, ई सभ झूठी आसा हो॥
ऊपर उजर कहा भौ बौरे, भीतर अजहूँ कारो हो।
तन के बिरध कहा भौ बौरे, मनुआ अजहूँ बारो हो॥
मुख के दाँत गए कहा बौरे, भीतर दाँत लोहे के हो।
फिरि फिरि चना चबाउ विषै के, काम क्रोध मद लोभ के हो॥
तन की सकल संग्या घटि गयऊ, मनहि दिलासा दूनी[1] हो।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, सकल सयानप ऊनी[2] हो॥ ३॥

ओढ़न मोरा रामनाम, मैं रामहिं का बनिजारा हो।
राम नाम की करहुँ बनिजिया, हरि मोरा हटवाई हो॥
सहसनाम का करौं पसारा, दिन दिन होत सवाई हो।
जाके देव वेद पछ राखा[3] ताके होत अढ़ाई हो॥
कानि तराजू सेर तिन पौवा, डंहकैं[4] ढोल बजाई हो।
सेर पसेरी पूरा कैले, पासंग कतहु न जाई हो॥
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, जोर चला जहँड़ाई हो॥ ४॥

राम नाम भजु राम नाम भजु, चेति देखु मन माहीं हो।
लच्छ करोरि जोरि धन गाड़िनि, चलत डोलावत बांही हो॥
दादा बाबा औ परपाजा, जिन्ह के ई भुइ भाँड़े हो।
आँधर भए हियहु की फूटी, तिन्ह काहे सभ छांड़े हो॥
ई संसार असार को धंधा, अंतकाल कोई नाहीं हो।
उपजत बिनसत बार न लागै, जौं बादर की छाँहीं हो॥
नाता गोता कुल कुटुम सभ, इन्ह की कौन बड़ाई हो।
कहँहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़ी सभ चतुराई हो॥ ५॥

पा० १–दूना। २–सयाना पहूँना। ३–जाके देव मैं नौ पंच सेखा। ४–तुलकिन।

राम नाम बिनु राम नाम बिनु, मिथ्या जनम गवाँई हो।
सेमर सेइ सुवा ज्यौं जँहड़े, ऊन परे पछिताई हो॥
जैसे मदपी गांठि अरथ दै, घरहु कै अकिल गवाँई हो।
स्वादे वोद्र भरै दहुँ कैसे, ओसैं प्यास न जाई हो॥
दर्ब हीन कैसन पुरुषारथ, मनहीं मांह तवाँई हो।
गांठी रतन मरम नहिं जानै, पारख दीन्हा छोरी हो॥
कहँहिं कबीर यहि औसर बीते, रतन न मिलै बहोरी हो॥ ६॥

रहहु सँभारे राम-बिचारे, कहता हौं जो पुकारे हो।
मूड़ मुड़ाय फूलि कै बैठे, मुद्रा पहिरि मंजूसा हो॥
तेहि ऊपर कछु छार लपेटे, भीतर भीतर घर मूसा हो।
गाँव बसतु है गरब भारती, बाम काम हंकारा हो॥
मोहन जहाँ तहाँ लै जइहैं, नहि पति रहै तोहरा हो।
मांझ मंझरिया बसै जो जानै, जन होइ हैं सो थीरा हो॥
निरभै ह्वै रहु गुरु की नगरिया, सुख सोवै दास कबीरा हो॥ ७॥

छेम कुसल औ सही सलामत, कहहु कवन को दीन्हा हो।
आवत जात दोऊ विधि लूटैं, सर्व तंग हरि लीन्हा हो॥
सुर नर मुनि जति पीर औलिया, मीरा पैदा कीन्हा हो।
कहँ लौं गनौ अनंत कोटि लौं, सकल पयाना कीन्हा हो॥
पानी पौन अकास जाहिंगे, चंद जाहिंगे सूरा हो।
ए भी जाहिंगे वो भी जाहिंगे, परत न काहु के पूरा हो॥
कुसलै कहत कहत जग बिनसै, कुसल काल की फांसी हो।
कहँहिं कबीर सारी दुनिया बिनसै, रहैं राम अबिनासी हो॥ ८॥

पा० १—माम।

अैसनि देह निरालपं[1] बौरे, मुये[2] छुवै नहि कोई हो।
डांड़ कै डोरिया तोरि लराइन, जो कोटिन धन होई हो॥
उर्ध निसासा उपजि तरासा, हकरान्हि परिवारा हो।
जो कोई आवै बेगि चलावै, पल एक रहन न पाई[3] हो॥
चंदन चूर[4] चतुर सभ लेपहिं, गरे गजमुकुता हारा हो।
चहुँदिसि[5] गीध मुये तनलूटे, जंबुक वोद्र बिदारा हो॥
कहँहि कबीर सुनहु हो संतो, ग्यान हीन मतिहीना हो।
एक एक दिन यह गति सभकी, काह राव का दीना हो॥ ९॥

हौं सभहिन में हौं ना हौ मोंहि, बिलग बिलग बिलगाई हो।
ओढ़न मेरा एक पिछौरा, लोग बोलैं एकताई हो॥
एक निरन्तर अन्तर नाहीं, जौं ससि घट-जल झांई हो।
एक समान कोई समुझत नाहीं, जरा मरन भर्म जाई हो॥
रैनि दिवस मैं तहवां नाहीं, नारि पुरुष समताई हो।
ना मैं बालक बूढ़ो नाहीं, ना मोरे चिलकाई हो॥
तिरबिधि रहौं सभनि मां बरतौं, नाम मोर रमुराई हो।
पठये न जाउं आने नहि आवौं, सहज रहौं दुनियाई हो॥
जोलहा तान बान नहिं जानै, फाँटि बिनै दस ठांई हो।
गुरु-परताप जिन्हैं जस भाषो, जन बिरले सुधि पाई हो॥
अनंत कोटि मन हीरा बेधौ, फिटकी मोल न पाई हो।
सुर नर मुनि जाके खोजपरे हैं, कछु कछु कबीरन्हि पाई हो॥ १०॥

ननदी गे तै बिषम सोहागिनि, तैं निंदले संसारा गे।
आवत देखि एक संग सूती, तैं औ खसम हमारा गे॥

पा० १—निरापन। २—मुवल। ३—पारा, हारा। ४—चीर, चरचि। ५—चौसठि।

मोरे बाप के दुइ मेहररुआ, मैं औ मोर जेठानी गे।
जब हम अइलीं[1] रसिकके जगमें, तवहिं बात जग जानी गे॥
माई मोर मुअल पिताके संगे, सरा रचि मुअल संघाती गे।
अपने मुवलि और लै मुवली, लोग कुटुम संग साथी गे॥
जौंलौं साँस रहै घट भीतर, तौलों कुसल परी है गे।
कहँहिं कबीर जब सांस निसरि गौ, मंदिल अनल जरी है गे॥११॥

या माया रघुनाथ की बौरी, खेलन चली अहेरा हो।
चतुर चिकनियाँ चुनि चुनि मारे, काहु न राखै नेरा हो॥
मौनी बीर दिगंबर मारे, ध्यान धरंते जोगी हो।
जंगल मे के जंगम मारे, माया किन्हहुँ न भोगी हो॥
बेद पढंते पांड़े[2] मारे, पूजा करंते सामी हो।
अरथ बिचारत पंडित मारे, बांधे सकल लगामी हो॥
सिंगी रिषि बन भीतर मारे, सिर ब्रह्मा का फोरी हो।
नाथ मछंदर चले पीठिदै, सिंघल हूँ में बोरी हो॥
साकट के घर करता धरता, हरि भगतन की चेरी हो।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, ज्यौं आवै त्यौं फेरी हो॥ १२॥

पा० १—रहिल। २—विदुआ।

बसंत

जहाँ[1] बारह मास बसंत होय, परमारथ बूझै बिरला कोय।
बरसै अगिन अखंडधार, बन हरियर भौ अठारह भार॥
पनियाँ अन्दर[2] घरे न कोय, पौन गहै कस मलिन धोय।
बिनु तरवर फूले अकास, सिव बिरंचि तहँ लेहिं बास॥
सनकादिक भूले भवँर बोय, लखु चौरासी जोइनि जोय।
जो तोहिं संतगुरू सत्त लखाव, ताते न छूटै चरन भाव॥
अमर लोक फल लावै चाव, कहँहिं कबीर बूझै सो पावै[3]॥१॥

रसना पढ़ि लेहु श्री बसंत, पुनि जाय परिहो जम के फंद।
मेरु दंड पर डंक दीन्ह, अष्ट कवल परजारि दीन्ह॥
ब्रह्म अगिनि कियो प्रगास, अर्ध उर्ध तहँ बहै बतास।
नौ नारी परिमल सो गाँव, सखी पाँच तहँ देखन धाव॥
अनहद बाजा रहल पूरि, पुरुष बहत्तरि खेलै धूरि।
माया देखि कस रहहु भूलि, जस बनसपती रहलि फूलि॥
कहँहिं कबीर ई हरि के दास, फगुआ माँगै बैकुंठ बास॥२॥

मैं आयों मेहतर मिलन तोहिं, रितु बसंत पहिरावहु मोहिं।
लम्बी पुरिया पाई छीन, सूत पुराना खूँटा तीन॥
सर लागे तेहि तीन सै साठि, कसनि बहत्तरि लागु गाँठि।
खुर खुर खुर खुर चलै नारि, बैठि जोलाहिन पलथि मारि॥
ऊपर नचनियाँ करै कोड़, करिगह में दुइ चलै गोड़।
पाँच पचीसो दसहूँ द्वार, सखी पाँच तहँ रची धमार॥
रंग बिरंगी पहिरे चीर, हरि के चरन धरि गावैं कबीर॥३॥

पा० १—जाके। २—आदर धरिनि धोय। ३—खाव।

बुढ़िया हँसि बोलै मैं नितहिं बारि, मोहिं अस तरुनि कहौ कौन नारि।
दाँत गैल मोर पान खात, केस गैल मोर गंग नहात॥
नैन गैल मोर कजरा देत, बैस गैल पर पुरुष लेत।
जान पुरुषवा मोर अहार, अनजाने पर करौं सिंगार॥
कहँहिं कबीर बुढ़िया आनंद गाय, पूत भतारहिं बैठी खाय॥४॥

तुम बूझहु पंडित कवनि नारि, काहु न बियाहल है कुवाँरि।
सभ देवन्ह मिलि हरिहिं दीन्ह, चारिउ जुग हरि संग लीन्ह॥
प्रथमै पदुमिनि रूप आहि, है सांपिनि जग खेदि खाय।
ई भर[1] जुवती वै बार नाह, अति रे तेज त्रिय रैनि ताहि॥
कहँहिं कबीर यह जगत पियारि, अपन बलकवै रहलि मारि॥५॥

माई मोर मनुसा अती सुजान, धंधा कुटि कुटि करै बिहान।
बड़े भोर उठि आँगन बाढ़ु, बड़े खाँच लै गोबर काढ़ु॥
बासी भात मनुसें लीहल खाय, बड़ा घैल लै पानी के जाय।
अपने सैयाँ के बांधौं पाट, लै बेचौंगी हाटै हाट॥
कहँहिं कबीर ये हरि के काज, जोइया के ढिंगरहिं[2] कवनि लाज॥६॥

घरहि म बाबू बढ़लि रारि, उठि उठि लागै चपल नारि।
एक बड़ी जाके पाँच हाथ, पाँचहु के पचीस साथ॥
पचीस बतावैं और और, और बतावैं कैक ठौर।
अंतर मधे अंत लेइ, झकझोरी झोला जीवहिं देइ॥
आपन आपन चाहैं भोग, कहु कैसे कुसल परी है जोग।
बिवेक बिचार न करै कोय, सब खलक तमासा देखै लोय॥
मुख फारि हँसै सभ राव रंक, ताते धरै न पावै एकौ अंग।
नियरे न खोजै बतावै दूरि, चहुँ दिसि बागुलि रहलि पूरि॥

पा० १– बर। २–डिंगर।

लच्छ अहेरी एक जीव, ताते पुकारै पीव पीव ।
अबकी बार जो होय चुकाव, कहँहिं कबीर ताको पूर दाँव ।।७।।

कर पल्लौ के बल खेलै नारि, पंडित होय सो लेय बिचारि ।
कपड़ा न पहिरै रहै उघारि, निरजिव सो धनि अति पियारि ।
उलटी पलटी बाजै[1] तार, काहू मारै काहू उबार ।
कहँहिं कबीर दासन के दास, काहू सुख दे काहू निरास[2] ।।८।।

ऐसो दुर्लभ जात सरीर, राम नाम भजु लागु तीर ।
गये बेनु बलि गए कंस, दुरजोधन गए बूड़ो बंस ।।
पृथु गये पृथिमी के राव, तिर बिक्रम गये रहे न काव ।
छव चकवै मंडलिक झारि, अजहूँ हो नल देख बिचारि ।
हनुमत कस्यप जनक बालि, ई सभ छेकल जम के द्वार ।
गोपीचंद भल कीन्ह जोग, रावन मरिगौ करतै भोग ।।
ऐसे जात देखि सभन्हि को जान, कहँहिं कबीर भजु राम नाम ।।९।।

सभै मदमाते कोइ न जाग, संगहि चोर घर मूसन लाग ।
जोगी माते धरि योग ध्यान, पंडित माते पढ़ि पुरान ।।
तपसी माते तप के भेव, संन्यासी माते करि हमेव ।
मोलना माते पढ़ि मुसाफ, काजी माते दै निसाफ ।।
संसारी माते माया के धार, राजा माते करि हंकार ।
माते सुकदेव ऊधो अंक्रूर, हनुमत माते लै लंगूर ।।
सिव माते हरि चरन सेव, कलि माते नामा जयदेव ।
सत्त सत्त कहै सुम्रिति बेद, जस रावन मारो घर के भेद ।।
चंचल मन के अधम काम, कहँहिं कबीर भजु राम नाम ।।१०।।

पा० १—बाजु । २—उदास ।

सिव कासी कैसे भइ तोहारि, अजहूँ हो सिव देखु विचारि ।
चोवा चंदन अगर पान, घर घर सुम्रिति होय पुरान ॥
बहु बिधि भवनन्हि लागु भोग, नगर कोलाहल करत लोग ।
बहु बिधि परजा लोग तोर, तेहि कारन चित ढीठ मोर ॥
हमरे बलकवा के इहै ग्यान, तोहरा को समुझावै आन ।
जे जाहि मनसे रहल आय, जीव को मरन कहु कहाँ समाय ॥
ताकर जो कछु होय अकाज, ताहि दोस नहिं साहेब लाज ।
हर हरषित सों कहल भेव, जहाँ हम तहाँ दुसर न केव ॥
दिना चारि मन धरहु धीर, जस देखैं तस कहहिं कबीर ॥११॥

हमरा कहल के नहिं पतियार, आपु बूड़े नल सलिल धार ।
अंध कहै अंधा पतियाय, जस बिसुवा के लगन धराय ॥
सोतो कहिए ऐसो अबूझ, खसम ठाढ़ ढिग नाहीं सूझ ।
आपन आपन चाहैं मान, झूठ प्रपंच साँच करि जान ॥
झूठा कबहुँ न करिहै काज, हौं बरजौं तोहि सुनु नीलाज ।
छाँड़हु पाखंड मानहु बात, नाहिं तौ परिहौ जम के हाथ ॥
कहहिं कबीर नल कियहु न खोज, भटकि मुवल जस बन के रोझ ॥१२॥

चाँचर

खेलति माया मोहनी, जिन्ह जेर कियो संसार।
रच्यो रंग ते चूनरी कोइ, सुन्दरि पहिरे आय ॥
सोभा अदवुद रूप की, महिमा बरनि न जाय।
चंद्रबदनि मृग लोचनि माया, बुंदका दियो उघार ॥
जती सती सभ मोहिया, गज गति वाकी चाल ॥
नारद को मुख मांड़ि के, लीन्हों बसन[1] छिनाय।
गरब गहेली गरब से, उलटि चली मुसुकाय ॥
सिव सन ब्रह्मा दौरि कै, दोउ पकरै जाय।
फगुआ लियो छिनाय कै, बहुरि दियौ छिटकाय ॥
अनहद धुनि बाजा बजै, स्रवन सुनत भौ चाव।
खेलनिहारा खेलि है, जैसी वाकी दांव ॥
अग्यान[2] ढाल आगे दियो, टारे टरै न पांव।
खेलनि हारा खेलि है, बहुरि न ऐसो दांव ॥
सुर नर मुनि औ देवता, गोरख दत्ता व्यास।
सनक सनंदन हारिया, और की केतिक बात ॥
छिलकत थोथे प्रेम सों, धरि पिचकारी गात।
करि लीन्हों बसि आपने, फिर-फिर चितवत जात ॥
ग्यान गाड़ लै रोंपिया, त्रिगुन दियो है साथ।
सिव सन ब्रह्मा लेन कह्यो है, और की केतिक बात ॥
एक ओर सुर नर मुनि ठाढ़े, एक अकेली आप।
द्रिष्टि परे उन काहु न छाँड़े, कै लीन्हों एक धाप ॥

पा० १—बदन। २—ग्यान।

जेते थे तेते लिये, घूंघट माँहि समोय।
काजर वाकी रेख हैं, अदग गया नहिं कोय॥
इन्द्र कृस्न द्वारे खड़े, लोचन ललचि लचाय।
कहँहिं कबीर ते ऊबरे, जाहि न मोह समाय॥१॥

जारो जग का नेहरा मन बौरा हो।
जामे सोग संताप समुझ मन बौरा हो॥
तन धन सों का गर्बसी मन बौरा हो।
भसम किरिमि[1] जाके साज समुझ मन बौरा हो॥
बिना नेव का देव घरा मन बौरा हो।
बिनु कहगिल की ईंट समुझ मन बौरा हो॥
कालबूत की हस्तिनी मन बौरा हो।
चित्र रचो जगदीस समुझ मन बौरा हो॥
काम अन्ध गज बसि परे मन बौरा।
अंकुस सहिया सीस समुझ मन बौरा हो॥
मरकट मूठी स्वाद की मन बौरा हो।
लीन्हौ भुजा पसारि समुझ मन बौरा हो॥
छूटन की संसय परी मन बौरा हो।
घर घर नाचेउ द्वार समुझ मन बौरा हो॥
ऊँच नीच जानेउ नहीं मन बौरा हो।
घर घर खायउ डांग समुझ मन बौरा॥
जौं सुवना ललनी गह्यौ मन बौरा हो।
ऐसो भरम बिचार समुझ मन बौरा हो॥
पढ़े गुने का कीजिये मन बौरा हो।
अंत बिलैया खाय समुझ मन बौरा हो॥

पा० १—भस्म कृमि, कीन्ह।

सूने घर का पाहुना मन बौरा हो।
ज्यौं आवै त्यौं जाय समुझ मन बौरा हो॥
नहाने को तीरथ घना मन बौरा हो।
पूजन को बहु देव समुझ मन बौरा हो॥
विनु पानी नल बूड़ि हो मन बौरा हो।
टेकहु[1] नाम[2] जहाज समुझ मन बौरा हो॥
कहँहिं कबीर जग भरमिया मन बौरा हो।
छांड़ेहु[3] हरि की सेव समुझ मन बौरा हो॥२॥

पाठ १—टेकेहु। २—राम। ३—छाड़हु।

बेलि
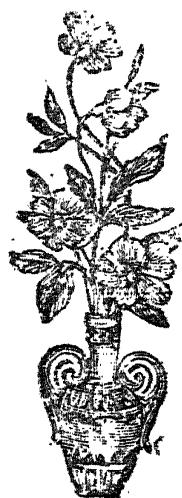
हंसा सरवर सरीर में हो रमैया राम,
जागत चोर घर मूसल हो रमैया राम।
जो जागल सो भागल हो रमैया राम,
सोवत गैल बिगोय हो रमैया राम॥
आजु बसेरा नियरे हो रमैया राम,
काल्हि बसेरा दूरि हो रमैया राम।
जैहो[1] बिराने देस हो रमैया राम,
नैन भरहुगे धूरि हो रमैमा राम॥
त्रास मथन दधि मथन कियो हो रमैया राम,
भवन मथेउ भरि पूरि हो रमैया राम।
फिर हंसा पाहुन भयो हो रमैया राम,
बेधिनि पद निरबान हो रमैया राम॥
तुम हंसा मन मानिक हो रमैया राम,
हटलो न मानेहु मोर हो रमैया राम।
जसरे कियहु तस पायहु हो रमैया राम,
हमरे दोष जनि देहु हो रमैया राम॥
अगम काटि गम कीयहु हो रमैया राम,
सहज कियहु बैपार हो रमैया राम।
राम नाम धन बनिज कियहु हो रमैया राम,
लादेहु बस्तु अमोल हो रमैया राम॥
पाँच लदनुवां लादि चले हो रमैया राम,
नौ बहिया दस गोनि हो रमैया राम।
पाँच लदनुवा खाँगि परे हो रमैया राम,

पा० १—परेहु।

खांखरि डारिनि फोरि हो रमैया राम,
सिर धुनि हंसा उड़ि चले हो रमैया राम।
सरवर मीत जोहारि हो रमैया राम,
आगि जो लागी सरवर[1] में हो रमैया राम।
सरवर जरि भौ धूरि हो रमैया राम,
कहँहिं कबीर सुनु संतों हो रमैया राम।
परखि लेहु खरा खोट हो रमैया राम ॥ १ ॥

भल सुम्रिति[2] जहँड़ायहु हो रमैया राम,
धोखे कियहु विसवास हो रमैया राम।
सो तो है बन सीकसी[3] हो रमैया राम,
सो रे कियहु बिसवास हो रमैया राम।
ई तो है बेद भागवत हो रमैया राम,
गुरु दीहल मोहिं थापि हो रमैया राम।
गोबर कोट उचाए[4] हो रमैया राम।
परिहरि जैबहु खेत हो रमैया राम ॥
बुधि बल जहाँ न पहुँचै हो रमैया राम,
तहाँ खोज कस होई हो रमैया राम।
सो सुनि मन धीरज भयल हो रमैया राम,
मन बढ़ि रहल लजाय हो रमैया राम ॥
फिरि पाछे जनि हेरहु हो रमैया राम,
कालबूत[5] सब आहिं हो रमैया राम।
कहँहिं कबीर सुनो[6] सन्तो हो रमैया राम,
मन[7] बुधि मति फैलावहु हो रमैया ॥२॥

पा० १—सरोवर। २—सुमिरन। ३—बंसी कस। ४—उठायहु। ५—कालभूत। ६—सुनु। ७—मति ढिग ही।

बिरहुली

आदि अन्त नहिं होत बिरहुली, नहि जर पल्लौ पेड़ बिरहुली ।
निसु बासर नहिं होत बिरहुली, पौन पानी नहिं मूल बिरहुली ।।
ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली, कथि गेल जोग अपार बिरहुली ।
मास असाढ़े[1] सीतल बिरहुली, बोइनि सातो बीज बिरहुली ।।
नित कोड़ै नित सीचै बिरहुली, नित नव पल्लौ पेड़ बिरहुली ।
छिछिल बिरहुली छिछिल बिरहुली, छिछिल रहलि तिहुँलोक बिरहुली
फूल एक भल फूलल बिरहुली, फूलि रहल संसार बिरहुली ।।
सो फूल लोरै[2] संत जना बिरहुली, बंदिके राउर जाँहि बिरहुली ।।
सो फूल बन्दहिं भक्त बिरहुली, डसि गैल बैतल साँप बिरहुली ।
विषहर मंत्र न मान बिरहुली, गारुड़ि बोलै अपार बिरहुली ।।
विष की कियारी बोयहु बिरहुली, लोढ़त का पछिताहु बिरहुली ।
जनम जनम जम अंतर बिरहुली, फल एक कनयर डार बिरहुली ।।
कहहिं कबीर सचुपाव बिरहुली, जो फल चाखहु मोर बिरहुली ।।१।।

पा०—१, असाहे । लोढ़े ।

हिंडोला

भरम हिंडोलना झूलै सब जग आय,
पाप पुन्नि के खंभा दोऊ मेरु माया मांहि।
लोभ मरुवा बिषै भँवरा काम कीला[1] ठानि,
सुभ असुभ बनाय डाँड़ी गहै दोनौ पानि॥
करम पटरिया बैठिकै को को न झूलै आनि,
झूलैं गन गंध्रप मुनिवर झूलैं सुरपति इंद्र।
झूलैं नारद सारदा झूलैं ब्यास फनिंद,
झूलैं बिरंचि महेस सुक मुनि झूलैं सूरज चन्द॥
आपु निरगुन सगुन होय के झूलिया गोविंद,
छौ चारि चौदह सात इकइस तीनि लोक बनाय।
खानी बानी खोजि देखहु थिर न कोउ रहाय,
खंड ब्रह्मंड पट दरसना छूटत कतहूँ नाहिं॥
साधु संत बिचारि देखहु जीव तरि कहँ जाहिं,
ससि सूर रैनी सारदी[2] तहाँ तत्त पल्लौ नाहिं।
काल अकाल प्रलै नहीं तहाँ संत बिरलै जाहिं,
तहाँ के बिछुरे बहु कलप बीते भूमि परे भुलाय॥
साधु संगति खोजि देखहु बहुरि उलटि समाय,
यह झूलिबे की भय नहीं जो होहिं संत सुजान।
कहहिं कबीर सत सुक्रित मिलै तौ बहुरि न झूलै आय॥१॥

बहु बिधि चित्र बनाय के हरि रच्यो क्रीड़ा रास।
जाहि न इच्छा झूलिबे की ऐसी बुधि केहि पास॥

पा० १—कीन्हों ठाँव। २—रैनि दिवस न चन्द सूरज।

झूलत झूलत बहु कल्प बीते मन नहिं छोड़ै आस।
रच्यो[1] हिंडोला अहो निसि चारि जुग चौमास ॥
कबहुँ ऊँचे कबहुँ नीचे सरग भूमि ले जाय।
अति भरमत[2] भरम हिंडोलना नेकु नहीं ठहराय ॥
डरपत हौं यह झूलिबे को राखु जादव राय।
कहँहिं कबीर गोपाल बिनती सरन हरि तुम पास ॥ २ ॥

लोभ मोह के खंभा दोऊ मनसे रच्यो हिंडोल।
झूलहिं जीव जहान जहाँ लगि कतहुँ नहीं थित ठौर ॥
चतुरा झूलहिं चतुराइया झूलहिं राजा सेस।
चाँद सूरज दोउ झूलहिं उनहुं न अग्या भेव ॥
लख चौरासी जीव झूलहिं रविसुत धरिया ध्यान।
कोटि कल्प जुग बीतल अजहुँ न मानै हारि ॥
धरति अकास दोऊ झूलहिं झूलहिं पवना नीर।
देह धरे हरि झूलहिं ठाढ़े देखहिं हंस कबीर ॥

पा० १—मचो रहत, रच्यो रहस। २—भरमित।

साखी

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय ।
छठी तिहारी हौं जगा, तू कहाँ चला बिगोय ॥ १ ॥

सब्द हमारा तू सब्द का, सुनि मति जाहु सरक्क ।
जो चाहो निज तत्व को, सब्दहिं लेहु परक्ख ॥ २ ॥

सब्द हमारा आदि का, सब्दै पैठा जीव ।
फूल रहनि की टोकरी, घोरे खाया घीव ॥ ३ ॥

सब्द बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय ।
द्वार न पावै सब्द का, फिरि फिरि भटका खाय ॥ ४ ॥

सब्द सब्द बहु अंतरा, सार सब्द मत लीजै ।
कहँहिं कबीर जेहि सार सब्द नहिं, धिग जीवन सो जीजै ॥ ५ ॥

सब्दै मारा गिरि परा, सब्दै छोड़ा राज ।
जिन जिन सब्द विवेकिया, तिनकौ सरिगौ काज ॥ ६ ॥

सब्द हमारा आदि का, पल पल करहू याद ।
अन्त फलेगी माहली, ऊपर की सब बाद ॥ ७ ॥

जिन जिन सम्बल न कियो, अस पुर पाटन पाय ।
झालि परे दिन अथये, सम्बल कियौ न जाय ॥ ८ ॥

इहँई सम्बल करिले, आगे बिषई बाट ।
सुरग बिसाहन सब चले, जहँ बनिया ना हाट ॥ ९ ॥

जो जानहु जिय आपना, करहु जीव को सार ।
जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार ॥१०॥

जो जानहु जग जीवना, जो जानहु सो जीव ।
पानिप चाहहु आपना, पानी माँगि न पीव ॥११॥

पानि पियावत का फिरौ, घर घर सायर वारि ।
त्रिषावंत जो होयगा, पीवैगा झख मारि ॥१२॥

हंसा मोती बिकानियाँ, कंचन थार भराय ।
जाको मरम न जानई, ताको काह कराय ॥१३॥

हंसा तू सुबरन बरन, का बरनौं मैं तोहिं ।
तरवर पाय पहेलि हो, तबै सराहौं तोहिं ॥१४॥

हंसा तू तो सबल था, हलुकी अपनी चाल ।
रंग कुरंगे रंगिया, किया और लगवार ॥१५॥

हंसा सरवर तजि चले, देही परिगौ सून ।
कहहिं कबीर पुकारि के, तेही दर तेहि थून ॥१६॥

हंस बग देखा एक रंग, चरै हरियरे ताल ।
हंस छीर ते जानिये, बगु उघरे ततकाल ॥१७॥

काहे हरनी दूबरी, यही हरियरे ताल ।
लक्ष अहेरी एक म्रिग, केतिक टारै भाल ॥१८॥

तीन लोक भौ पींजरा, पाप पुन्न भौ जाल ।
सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल ॥१९॥

लोभै जनम गवाँइया, पापै खाया पुन्न ।
साधी सों आधी कहै, तापर मेरा खुन्न ॥२०॥

आधी साखी सिर खड़ी, जो निरुवारी जाय ।
का पंडित की पोथिया, राति दिवस मिलि गाय ॥२१॥

पाँच तत्त का पूतरा, जुगुति रची मैं कीव ।
मैं तोहिं पूछौं पंडिता, सब्द बड़ा की जीव ॥२२॥

पाँच तत्त का पूतरा, मानुस धरिया नाँव ।
एक कला के बिछुरे, बिकल होत[1] सब ठाँव ॥१३॥

रंगहि ते रंग ऊपजे, सभ रंग देखा एक ।
कौन रंग है जीवका, ताका करहु बिवेक ॥२४॥

जाग्रित रूपी जीव है, सब्द सोहागा सेत ।
जरद बुन्द जल कूकुही, कहँहिं कबीर कोइ देख ॥२५॥

पाँच तत्तु ले या तन कीन्हाँ, सो तन काहि लै दीन्हा ।
कर्महिं के बस जीव कहत हैं, कर्महिं को जीव दीन्हा ॥२६॥

पाँच तत्तु के भीतर, गुप्त वस्तु अस्थान ।
बिरल मरम कोई पाइहै, गुरु के सब्द प्रमान ॥२७॥

असुन तखत अड़ि आसना, पिंड भरोखे नूर ।
ताके[2] दिल में हौं बसौं, सेना लिए हजूर ॥२८॥

हिरदया भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तो तबहीं देखि हो, दिल की दुविधा जाय ॥२९॥

गाँव ऊँच पहाड़ पर, औ मोटे की बाँह ।
ऐसा ठाकुर सेइये, उबरिये जाकी छाँह ॥३०॥

जेहि मारग गये पंडिता, तेई गये बहीर ।
ऊँची घाटी राम की, तहँ चढ़ि रहै कबीर ॥३१॥

पा० १—भया । २—जाके ।

ऐ कबीर तैं उतरि रहु, संबल परोहन साथ।
संबल घटे औ पग थके, जीव बिराने हाथ ॥३२॥

कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल।
पाँव न टिकै पिपील का, खलकन लादे बैल ॥३३॥

बिन देखे वोहि देस की, बात कहै सो कूर।
आपुहि खारी खात है, बेंचत फिरै कपूर ॥३४॥

सब्द सब्द सब कोइ कहैं, वो तो सब्द बिदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि लेह ॥३५॥

परबत ऊपर हर बहै, घोरा चढ़ि बस गाँव।
बिना फूल भौंरा रस चाहे, कहु बिरवा को नाँव ॥३६॥

चन्दन बास निवारहु, तुझ कारन बन काटिया।
जियत जीव जनि मारहु, मूये सभै निपातिया ॥३७॥

चन्दन सरप लपेटिया, चन्दन काह कराय।
रोम रोम बिष भीनिया, अमृत कहाँ समाय ॥३८॥

जौं मोदाद समसान सिल, सबै रूप समसान।
कहँहिं कबीर वहि सावज की गति, तब की देखि भुकान ॥३९॥

गही टेक छोड़ै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
ऐसा तपत अँगार है, ताहि चकोर चबाय ॥४०॥

चकोर भरोसे चन्द्र के, निगले तप्त अँगार।
कहँहिं कबीर डाहै नहीं, ऐसी वस्तु लगार ॥४१॥

झिलमिल झगरा झूलते, बाकी छूटि[1] न काहु।
गोरख अँटके कालपुर, कौन कहावै साहु ॥४२॥

पा० १—रही।

गोरख रसिया जोग के, मुये न जारी देह।
मांस गली माटी मिली, कोरी माँजी देह ॥४३॥

बन ते भागि बिहड़े परा, करहा अपनी बान।
बेदन करहा कासो कहै, को करहा को जान ॥४४॥

बहुत दिवस ते हींड़िया, सुन्नि समाधि लगाय।
करहा पड़ा गाड़ में, दूरि परा पछिताय ॥४५॥

कबीर भरम न भाजिया, बहु बिधि धरिया भेख।
साईं के परिचै बिना, अंतर रहि गई रेख ॥४६॥

बिनु डाँड़े जग डाँड़िया, सोरठ परिया डाँड़।
बाँटनहारा लोभिया, गुर ते मीठी खाँड़ ॥४७॥

मलयागिर की बास में, ब्रिछ रहे सब गोय।
कहबे को चंदन भये, मलयागिर ना होय ॥४८॥

मलयागिर की बास में, बेधे ढाक पलास।
बेना कबहुँ न बेधिया, जुग जुग रहते पास ॥४९॥

चलते चलते पगु थका, नगर रहा नौ कोस।
बीचहि मा डेरा परा, कहहु कौन को दोस ॥५०॥

झालि परे दिन आथये, अंतर परि गई साँझ।
बहुत रसिक के लागते, बेसवा रहि गई बाँझ ॥५१॥

मन कहे कब जाइए, चित्त कहे कब जाँव।
छौ मास के हींडते, आध कोस पर गाँव ॥५२॥

ग्रिह तजि भये उदासी, बन खँड तप को जाय।
चोला थाके मारिया, बेरइ चुनि चुनि खाय ॥५३॥

राम नाम जिन चीह्नियाँ, झीना पंजर तासु ।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जामै मासु ॥५४॥
जो जन भीजै राम रस, बिगसित कबहुँ न रूख ।
अनभौ भाव न दरसई, ताको सुख न दुख ॥५५॥
काटे आम न मौरसी, फाटे जुटै न कान ।
गोरख पारस परस बिनु, कौने को नुकसान ॥५६॥
पारस रूपी जीव है, लोह रूप संसार ।
पारस ते पारस भया, परसि भया टकसार ॥५७॥
प्रेम पाट का चोलना, पहिरि कबीरा नाँच ।
पानिप दीन्हौ तासु को, तन मन बोलै साँच ॥५८॥
दरपन केरी गुफा में, सुनहा पैठा धाय ।
देखी प्रतिमा आपनी, भूंकि भूंकि मरि जाय ॥५९॥
दरपन प्रतिबिंब देखिये, आप दुहुन मा सोय ।
या तत ते वा तत्त है, पुनि याही है सोय ॥६०॥
जोबन सायर सूझते, रसिया लाल कराहिं ।
अब कबीर पाँजी परे, पंथी आवहिं जाहिं ॥६१॥
दोहरा तो नूतन भया, पदहिं न चीन्है कोय ।
जिन यह शब्द बिवेकिया, छत्र धनी है सोय ॥६२॥
कबीर जात पुकारिया, चढ़ि चन्दन की डार ।
बाट लगाये ना लगे, पुनि का लेत हमार ॥६३॥
सबते साँचा है भला, जो साँचा दिल होय ।
साँच बिना सुख नाहिन, कोटि करे जो कोय ॥६४॥

पा०—तेनर

साँचा सौदा कीजिये, अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइए, झूठे मूलहु हानि ॥६५॥

सुक्रित बचन मानै नहीं, आपु न करै बिचार।
कहहिं कबीर पुकारि के, सपने गया संसार ॥६६॥

आगि जो लागी समुद्र में, धुवाँ न परगट होय।
जाने सो जो जरि मुवा, जाकी लाई सोय ॥६७॥

लाई लावन हार की, जाकी लाई पर जरै॥
बलिहारी लावन हार की, छप्पर बाँचै घर जरै ॥६८॥

बूंद जो परी समुद्र में, सो जानत सब कोय।
समुद्र समाना बुंद में, जानै बिरला कोय ॥६९॥

जहर जिमी दै रोंपिया, अमी सींचे सौ बार।
कबीर खलक ना तजै, जामें जौन बिचार ॥७०॥

धौकी डाही लाकड़ी, वो भी[1] करै पुकार।
अब जो जाय लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥७१॥

बिरह की ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुंधुवाय।
दुख ते तबही बाँचिहो, जब सकलो जरि जाय ॥७२॥

बिरह बान जेहि लागिया, औषध लगे न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिये, उठे कराहि कराहि ॥७३॥

साँचा सब्द कबीर का, हिरदय देखु बिचारि।
चित दे समुझै नहीं, कहत भयल जुग चारि ॥७४॥

जो तू साँचा बानिया, सांची हाट लगाव।
अंदर झारू देइ के, कूरा दूरि बहाव ॥७५॥

पा०—१ ऊमी।

कोठी तो है काठ की, ढिग ढिग दीन्हीं आगि ।
पंडित जरि झोली भये, साकट उबरे भागि ॥७६॥

सावन केरा मेहरा[1], बुंद परा असमान ।
सब दुनिया वैस्नव भई, गुरु नहि लागा कान ॥७७॥

ढिग बूड़ा उछरा नहीं, याहि अँदेसा मोहिं ।
सलिल मोह की धार में, नीदरि आई[2] तोहि ॥७८॥

साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय ।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीं ठहराय ॥७९॥

कहता तो बहुतै मिले, गहता मिला न कोय ।
सो कहता बहि जान दे, जो नहिं गहता होय ॥८०॥

एक एक निरुवारिये, जो निरुवारी जाय ।
दुइ दुइ मुख का बोलना, घना तमाचा खाय ॥८१॥

जिभ्या को तो बंद दै, बहु बोलन निरुवार ।
सो सारथि[3] से संग करु, गुरु मुख सब्द विचार ॥८१॥

जाके जिभ्या बंध नहिं, हिरदया नाही साँच ।
ताके संग न लागिये, घाले बटिया माँझ ॥८३॥

प्रानी तो जिभ्या डिगा, छिन छिन बोल कुबोल ।
मन घाले भरमत फिरै, कालहिं देय हिंडोल ॥८४॥

हिलगी भाल सरीर में, तीर रहा है टूटि ।
चुंबक बिन निसरै नहीं, कोटि पाहन गे छूटि ॥८५॥

आगे सीढ़ी साँकरी, पाछे चकनाचूर ।
परदा तर की सुंदरी, रही धका दे दूर ॥८६॥

पा० १–सेहरा । २–क्यों नीद परी है । ३–पारखी ।

संसारी समय विचारिया, कोइ गिरही कोइ जोग ।
अवसर मारे जात है, चेतु बिराने लोग ॥८७॥

संसै सब जग खंधिया, संसै खंधै न कोय ।
संसै खंधे सो जना, सब्द बिवेकी होय ॥८८॥

बोलन है बहु भाँति का, नैन कछू नहिं सूझ ।
कहँहिं कबीर पुकारि के, घट घट बानी बूझ ॥८९॥

मूल गहे ते काम है, तैं मति भरम भुलाव ।
मन सायर मनसा लहरि, बहिं कतहूँ मति जाव ॥९०॥

भँवर बिलंबे बाग में, बहु फूलन की बास ।
जीव बिलंबे विषै में, अंतहु चले निरास ॥९१॥

भँवर जाल बगु जाल है, बूड़े बहुत अचेत ।
कहँहिं कबीर ते बाँचि है, जाके हृदै बिवेक ॥९२॥

तीनि लोक टीड़ी भये, उड़ै जो मन के साथ ।
हरि जाने बिनु भटकते, परे काल के हाथ ॥९३॥

नाना रंग तरंग है, मन मकरन्द असूझ ।
कहँहिं कबीर पुकारि कै, अकिल कला ले बूझ ॥९४॥

बाजीगर का बानरा, ऐसे जीउ मन साथ ।
नाना नाच नचाय कै, राखै अपने हाथ[1] ॥९५॥

यह मन चंचल चोर है, यह मन सुद्ध ठगार ।
सुर नर मुनि जहँड़ाइया, मन के लच्छ दुवार ॥९६॥

बिरह भुवंगम तन डस्यो, मंत्र न मानै कोय ।
राम बियोगी ना जियै, जियै तौ बाउर होय ॥९७॥

पा० १—नाचै नट के साथ ।

राम बियोगी बिकल तन, इन दुखवौ मति कोय ।
छूवत ही मरि जायँगे, तालाबेली होय ॥९८॥

बिरह भुवंगम पैठिके, कीन्ह करेजे घाव ।
साधू अंग न मोरहीं, ज्यों भावै त्यों खाव ॥९९।

करक करेजे गड़ि रही, बचन ब्रिच्छ की फांस ।
निकसाये निकसै नहीं, रही सो काहू गांस ॥१००॥

काला सरप सरीर में, खाइसि सब जग झारि ।
बिरले ते जन बाचिहैं, रामहिं भजें बिचारि ॥१०१॥

काल खड़ा सिर ऊपरे, जागु बिराने मीत ।
जाका घर है गैल में, क्या सोवै निचींत ॥१०२॥

काली काठी कालो घुन, जतन जतन घुन खाय ।
काया मध्ये काल बसे, मरम न कोऊ पाय ॥१०३॥

मन माया की कोठरी, तन संसय का कोट ।
बिषहर मंत्र न मानै, काल सरप की चोट ॥१०४॥

मन माया तौ एक है, माया मनहिं समाय ।
तीन लोक संसै परा, काहिं कहौं समुझाय ॥१०५॥

वेड़ा दीन्हों खेत को, वेड़ा खेतहिं खाय ।
तीनि लोक संसै परा, काहिं कहौं समुझाय ॥१०६

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत ।
कहँहिं कबीर ते बाचिहैं, जिनके हिरदय बिवेक ॥१०७॥

सायर बुद्धि बनाय के, वायु बिचच्छन चोर ।
सब दुनिया जहँड़ाइ गै, कोई न लागा ठौर ॥१०८

मानुष ह्वै कै न मुवा, मुवा सो डांगर ढोर ।
एकौ ठौर न लागिया, भया सो हाथी घोर ॥१०९॥

मानुष तैं बड़ पापिया, अच्छर गुरुहिं न मान ।
बार बार वन कूकुही, गरभ धरतु है ध्यान ॥११०॥

मानुष विचारा का करै, कहे न खेलै कपाट ।
स्वान[1] चौक बैठाइये, पुनि पुनि ऐपन चाट ॥१११॥

मानुष विचारा का करै, जाके सुन्न सरीर ।
जे जिव झाँकि न ऊपजे, काह पुकार कबीर ॥११२॥

मानुष जन्महि पायकै, चूकै अब की घात ।
जाय परै भव चक्र में, सहै घनेरी लात ॥११३॥

रतन ही का जतन करु, माटी का सिंगार ।
आय कबीरा फिरि गया, फीका है संसार ॥११४॥

मानुष जन्म दुरलभ अहै, होय न दूजी बार ।
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार ॥११५॥

बाँह मरोरे जात हौ, सोवत लिये जगाय ।
कहहिं कबीर पुकारि कै, पिंडै[2] ह्वै कै जाय ॥११६॥

साखि पुरन्दर ढहि परै, बिवि अच्छर जुग चारि ।
रसना रंभन होत है, कोइ न सकै निरुवारि ॥११७॥

बेड़ा बांधिनि सरप का, भव सागर के माँहि ।
जो छाड़ै तो बूड़ई, गहै तौ डसि है बाँहि ॥११८॥

कर[3] खोरा खोवा भरा, मग जोहत दिन जाय ।
कबीर उतरा चित्त ते, छाँछ दियो नहिं जाय ॥११९॥

पा० १–सोनहा । २–पैंडे । ३–हाथ ।

एक कहौं तौ है नहीं, दोय कहौं तौ गारि।
है जैसा तैसा रहै, कहँहिं कबीर बिचारि ॥१२०॥

अमृत केरी पूरिया, बहु बिधि दीन्ही छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पियाऔं घोरि ॥१२१॥

अमृत केरी मोठरी, सिर से धरी उतारि।
जाहि कहौं मैं एक है, मोहिं कहै दुइ चारि ॥१२२॥

जाके मुनिवर तप करैं, बेद थके गुन गाय।
सोई देउँ सिखापना, कोई नहिं पतियाय ॥१२३॥

एकहि ते अनंत भौ, अनंत एक ह्वै आय।
परचै भई जब एक ते, अनंतौ एक समाय ॥१२४॥

एक सब्द गुरुदेव का, ताका अनंत बिचार।
थाके मुनिवर ग्यानी, बेद न पावैं पार ॥१२५॥

राउर के पिछवारै, गावैं चारों सैन।
जीव परा बहु लूटि में, ना कछु लेन न देन ॥१२६॥

चौगोड़ा के देखते, ब्याधा भागा जाय।
एक अचंभा हौं लखा, मूवा कालहिं खाय ॥१२७॥

तीन लोक चोरी भई, सब का सरबस लीन।
बिना मूंड का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥१२८॥

चक्की चलती देखिकै, नैनन आया रोय।
दुइ पट भीतर आय के, साबुत गया न कोय ॥१२९॥

चारि चोर चोरी चले, पगु पानही उतार।
चारिउ दर थूनी हनी, पंडित करहु बिचार ॥१३०॥

बलिहारी वहि दूध की, जामें निकरै घीव ।
आधी साखी कबीर की, चारि वेद का जीव ॥१३१॥

बलिहारी तेहि पुरुष की, परचित परखन हार ।
साई दीन्हीं खाँड़ की, खारी बोझै गँवार ॥१३२॥

बिष के बिरवै घर किया, रहा सरप लपटाय ।
ताते जियरहिं डर भया, जागत रैनि बिहाय ॥१३३॥

जोई घर है सरप का, सो घर साधु न होय ।
सकल सम्पदा लै गया, विषहर लागा सोय ॥१३४॥

घुँघची भरि कै बोइये, उपजै पसेरी आठ ।
डेरा परिया काल का, साँझ सकारे जात[1] ॥१३५॥

मन भर के बोये कबौं, घुँघची भरि नहिं होय ।
कहा हमार मानै नहीं, आपुहिं चला बिगोय ॥१३६॥

आपा तजै औ हरि भजै, नख सिख तजै बिकार ।
सब जिउते निर बैर[2] रहै, साधु मता है सार ॥१३७॥

पछा पछी के कारने, सब जग रहा भुलान ।
निरपछ ह्वै कै हरि भजै, सोई संत सुजान ॥१३८॥

बड़े गये बड़ पने, रोम रोम हंकार ।
सतगुर के परिचै बिना, चारों बरन चमार ॥१३९॥

माया त्यागे का भया, मान तजा नहिं जाय ।
जेहि मानै मुनिबर ठगे, मान सभनि को खाय ॥१४०॥

माया की झक[3] जग जरै, कनक कामिनी लागि ।
कहहिं कबीर कस बाँचिहो, रुई लपेटी आगि ॥१४१॥

पा० १—खात । २—निरभै । ३—भूल ।

माया जग साँपिनि भई, विषले बैठी पास।
सब जग फंदे फंदिया, चले कबीर उदास ॥१४२॥

साँप बीछि का मंत्र है, माहुर झारे जाय।
बिकट नारि पाले परो, काढ़ि कलेजा खाय ॥१४३॥

तामस केरे तीनि गुन, भँवर लेहिं तहँ बास।
एकै डारी तीनि फल, भाँटा ऊख कपास ॥१४४॥

मन मतंग गइयर हने, मनसा भई सचान।
जंत्र मंत्र मानै नहीं, लागी उड़ि उड़ि खान ।१४५॥

मन गयन्द मानै नहीं, चलै सुरति के साथ।
दीन महावत का करै, अंकुस नाहीं हाथ ॥१४६॥

ई माया है चूहड़ी, औ चूहड़ों की जोय।
बाप पूत अरुझाय के, संग न काहु के होय ॥१४७॥

कनक कामिनी देखि के, तू मत भूल सुरंग।
बिछुरन मिलन दुहेलरा, केचुल तजत भुवंग ॥१४८॥

माया के बसि सब परे, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
सनक सनंदन नारदहु, गौरी पूत गनेस ॥१४९॥

पीपरि एक जो महागभानी, ताकर मरम कोई नहिं जानी।
डार लभाये कोइ न खाय, खसम अछत बहु पिपरे जाय ॥१५०॥

साहू सेती चोरिया, चोरों सेती सूझ।
तब जानहु गे जीयरा, मार परेगी तूझ ॥१५१॥

ताकी पूरी क्यों परे, गुरु न लखाई बाट।
ताको बेड़ा बूड़ि है, फिरि फिरि औघट घाट ॥१५२॥

जाना नहिं बूझा नहीं, समुझि किया नहिं गौन ।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन ॥१५३॥

जाका गुरु है आंधरा, चेला काह कराय ।
अंधे अंधा पेलिया, दोऊ कूप पराय ॥१५४॥

लोगन केर अथाइया, मति कोई पैठो धाय ।
एकहि खेते चरत हैं, बाघ गधेरा गाय ॥१५५॥

चारि मास घन बरसिया, अति अपूर सर नीर ।
पहिरे जड़ तन बखतरी, चुभै न एकौ तीर ॥१५६॥

गुरु की भेली जिउ डरै, काया सींचनं हार ।
कुमति कमाई मन बसे, लागि जु वाकी लार ॥१५७॥

तन संसै मन सोनहा, काल अहेरी नित्त ।
एकै डांग बसेरवा, कुसल पूछौ का मित्त ॥१५८॥

साहु चोर चीन्हैं नहीं, अंधा मति का हीन ।
पारख बिना बिनास है, करु विचार हो भीन ॥१५९॥

गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहि मसकला देय ।
सब्द छोलना छोलिकै, चित दरपन करि लेय ॥१६०॥

मूरख के सिखलावते, ग्यान गांठि का जाय ।
कोयला होय न ऊजरा, सौ मन साबुन लाय ॥१६१॥

मूढ करमिया मानवा, नख सिख पाखर आहि ।
बाहनहारा का करे, बान न लागे ताहि ॥१६२॥

सेमर केरा सूगना, छिउले बैठा जाय ।
चोंच संवारै[2] सिर धुनै, या वाही को भाय ॥१६३॥

पा० १—छीजन । २—खभावै ।

सेमर सुगना बेगि तजु, घनी बिगुरचनि पांखि ।
ऐसा सेमर सेव जो, हृदया नाहीं आंखि ।।१६४।।

सेमर सुगना सेइया, दुइ ढेंढी की आस ।
ढेढ़ी फूटि चटाक दै, सुगना चला निरास ।।१६५।।

लोग भरोसे कौन के, बैठि रहे अरगाय ।
जियरहिं लूटत जम फिरै, मेढ़ै लूटै कसाय ।।१६६।।

समुझि बूझि जड़ ह्वै रहै, बल तजि निर्बल होय ।
कहैं कबीर ता संत का, पला न पकरै कोय ।।१६७।।

हीरा सोई सराहिए, सहै घनन की चोट ।
कपट कुरंगी मानवा, परखत निकरा खोट ।।१६८।।

हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हाट ।
जब आवै जन जौहरी, तब हीरों की साट ।।१६९।।

हीरा तहां न खोलिये, जहां कुँजड़ों की हाट ।
सहजै गांठी बाँधि कैं, लगिये अपनी बाट ।।१७०।।

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय ।
मूरुख था सो बहि गया, पारखि लिया उठाय ।।१७१।।

हीरों की ओबरी नहीं, मलयागिर नहीं पांति ।
सिंहों के लहड़ा नहीं, साधु न चलैं जमाति ।।१७२।।

अपने अपने सिरों का, सबन लीन है मान ।
हरि की बात दुरंतरी, परी न काहू जान ।।१७३।।

हाड़ जरैं जस लाकड़ी, केस जरैं जस घास ।
जरै कबीरा राम रस, कोठी जरै कपास ।।१७४।।

घाट भुलाना बाट बिनु, भेष भुलाना कान ।
जाकी मांडी जगत में, सो न परा पहिचान ॥१७५॥

मूरख सों का बोलिये, सठ से काह बसाय ।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय ॥१७६॥

जैसे गोली गुमुज की, नीच परी ढहराय ।
तैसौ हृदया मूर्ख का, सब्द नहीं ठहराय ॥१७७॥

ऊपर की दोऊ गई, हिय की गई हेराय ।
कहहिं कबीर चारिऊ गई, ताको काह उपाय ॥१७८॥

केते दिन ऐसे गये, अन रूचे का नेह ।
ऊसर बोय न ऊपजे, अति घन बरसै मेह ॥१७९॥

मैं रोवौं यहि जगत को, मोको रोव न कोय ।
मोकौ रोवै सो जना, सब्द विवेकी होय ॥१८०॥

साहेब साहेब सब कहैं, मोहिं अंदेसा और ।
साहेब से परिचै नहीं, बैंठोगे केहि ठौर ॥१८१॥

जीव बिना जीव बांचै नहीं, जीव का जीव अधार ।
जीव दया करि पालिये, पंडित करहु बिचार ॥१८२॥

हौं तो सब ही की कही, मोको कोऊ न जान ।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, जुग जुग हौंउँ न आन ॥१८३॥

प्रगट कहौं तो मारिया, परदा लखै न कोय ।
सुनहा छिपा पयार तर, को कहि बैरी होय ॥१८४॥

देस बिदेसे हौं फिरा, मन ही भरा सुकाल ।
जाको ढूंढ़त हौं फिरौं, ताका परा दुकाल ॥१८५॥

कलि खोटा जग आंधरा, सब्द न मानै कोय।
जाहिं कहौं हित आपना, सो उठि वैरी होय ॥१८६॥

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात ॥१८७॥

फहम आगे फहम पीछे, फहम बांये डेरी।
फहम पर फहम निरवारै, सो फहम है मेरी ॥१८८॥

हद चलै सो मानवा, वेहद चले सो साध।
हद वेहद दोऊ तजै, ताकर मता अगाध ॥१८९॥

समुझे की मति एक है, जिन समझा सब ठौर।
कहँहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और की ओर ॥१९०॥

राह बिचारी क्या करै, पथिक न चलै बिचारि।
आपन मारग छांड़ि कै, फिरै उजारि उजारि ॥१९१॥

मूवा है मरि जाहुगे, मुये की बाजी ढोल।
सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगा बोल ॥१९२॥

मूवा है मरि जाहुगे, बिन सर थोथी भाल।
परा कराहै[1] ब्रिच्छ तर, आजु मरै की काल ॥१९३॥

बोली हमरी पूरब की, हमैं लखै नहिं कोय।।
हम को तो सोई लखै, धुर पूरब का होय ॥१९४॥

जेहि चलते खड़े[2] परा, धरती होत बिहाल।
सो साउज घामै जरै, पंडित करहु विचार ॥१९५॥

पावन पुहुपी नापते, दरिया करते फाल।
हाथन परबत तौलते, ते धरि खायो काल ॥१९६॥

पा० १—कल्हारै। २—खंदे।

नौ मन दूध बटोरि कै, टिपके किया बिनास ।
दूध फाटि काँजी भया, हूवा ध्रित का नास ॥१९७॥

कितनु मनाऊँ पाँव परि, कितनु मनाऊँ रोय ।
हिंदू मनावै देवता, तुरुक न काहू होय ॥१९८॥

मानुष केरा गुन बड़ा, मासु न आवै काज ।
हाड़ न होते आभरन, तुचा न बाजन बाज ॥१९९॥

जो मोहिं जानैं, ताहि मैं जानौं ।
लोक बेद का, कहा न मानौं ॥२००॥

सब की उतपति धरनि से, सब जीवन प्रतिपाल ।
धरनि न जानै आप गुन, ऐसा गुरु दयाल ॥२०१॥

धरनि जो जानति आप गुन, कधी न होती डोल ।
तिल तिल बढ़ि गारू भई, होत ठिकों की मोल ॥२०२॥

जहिया किरतम ना हता, धरती हती न नीर ।
उतपति परलै न हती, तब की कहैं कबीर ॥२०३॥

जहां बोल तहां अच्छर आया, जहां अच्छर तहां मनहिं दिढ़ाया ।
बोल अबोल एक है सोई, जिन यह लखा सो बिरला होई ॥२०४॥

तौ लगि तारा जगमगै, जौ लगि उगै न सूर ।
तौ लगि जीव करम बस डोलै, जौ लगि ग्यान न पूर ॥२०५॥

नाम न जाने गाँव का, भूला मारग जाय ।
काल गड़ेगा कांटवा, अगमन कस न खुराय ॥२०६॥

संगति कीजै साधु की, हरै और की ब्याधि ।
ओछी संगति कूर की, आठौं पहर उपाधि ॥२०७॥

संगति से सुख उजजै, कुसंगति दुख होय।
कहँहिं कबीर तहाँ जाइए, अपनी संगति होय ॥२०८॥

जैसी लागी ओर से, वैसे निबहे छोर।
कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जोरैं लच्छ करोर ॥२०९॥

आजु काल दिन कैक में, अस्थिर नाहिं सरीर।
केते दिन लौं राखि हो, काँचे बासन नीर ॥२१०॥

बहु बंधन ते बांधिया, एक बिचारा जीव।
की छूटै बल आपने, की रे छोड़ावैं पीव ॥२११॥

जीव जनि मारहु बापुरा, सबका एकै प्रान।
हत्या कबहु न छूटिहै, कोटिन सुनहु पुरान ॥२१२॥

जीव घात न कीजिए, बहुरि लेत वै कान।
तीरथ गये न बाचि हौ, कोटि हीरा करो दान ॥२१३॥

तीरथ गए तीनि जन, चित चंचल मन चोर।
एकौ पाप न काटिया, लादिन दस मन और ॥२१४॥

तीरथ गए ते बहि मुये, जूड़े पानी नहाय।
कहँहिं कबीर संतो सुनो, राच्छस ह्वै पछिताय ॥२१५॥

तीरथ भई बिष बेलरी, रही जुगन जुन छाय।
कबिरन मूल निकंदिया, क्यों न हलाहन खाय ॥२१६॥

ये गुनवंती बेलरी, तब गुन बरनि न जाय।
जर काटे ते हरियरी, सींचे ते कुंभिलाय ॥२१७॥

बेलि कुढंगी फल बुरो, फुलवा कुबुधि बसाय।
और बिनष्टी तूमरी, सरे पात करूवाय ॥२१८॥

पानी ते अति पातरा, धूंवा ते अति झीन।
पवनहुँ ते ऊतावला, दोस्त कबीर न कीन ॥११६॥

गुरू बचन संतो सुनो, मति सिर लीजै भार।
हाँ हजूर ठाढ़ो कहौं, अब तैं समर सँभार ॥२२०॥

ए करुवाई बेलरी, है करुवा फल तोर।
सिद्ध नाम जब पाइए, बेलि बिछोहा होय ॥२२१॥

सिद्ध भया तो क्या भया, चहुँ दिसि फूटी बास।
अंतर वाके बीज है, फिरि जामन की आस ॥२२२॥

परदे पानी ढारिया, संतो करहु विचार।
सरमा सरमी पचि मुवा, काल घसीटन हार ॥२१३॥

अस्ति कहौं तौ कोई न पतीजै, बिना अस्ति का सिध।
कहँहिं कबीर सुनहु हो संतो, हीरै हीरा बिध ॥२१४॥

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरहिं सौ बार।
दुरजन भांड़ कुम्हार के, एकै धक्का दरार ॥२१५॥

काजर केरी कोठरी, बूड़त यह संसार।
बलिहारी तेहि पुरुष की, पैठिकै निकरनि हार ॥२१६॥

काजर ही की कोठरी, काजर ही का कोट।
तोंदी कारी ना भई, रही जो ओटहिं ओट ॥२१७॥

अरब खरब लौं दरब है, उदय अस्त लौं राज।
भक्ति महातम ना तुलै, ई सभ कौने काज ॥२१८॥

मछ बिकाने सब चले, धीमर के दरबार।
अँखिया रतनारी तेरी, क्यों करि पहिरा जाल ॥२१६॥

पानी भीतर घर किया, सेजा किया पताल ।
पासा परा करीम का, ताते पहिरा जाल ॥२३०॥

मछ होय नहिं बाँचि हो, धीमर तेरो काल ।
जेहि जेहि डाबर तुम फिरौ, तहँ तहँ मेलै जाल ॥२३१॥

विन रसरी गर सब बँधे[1], तासो बँधा अलेख ।
दीन्हों दरपन हाथ में, चसम बिना का देख ॥२३२॥

समुझाये समझै नहीं, पर हथ आपु बिकाय ।
मैं खैंचत हौं आपु को, चला सो जमपुर जाय ॥२३३॥

नित की खरसान, लोह घुन छूटै ।
नित की गोस्टि, माया मोह टूटै ॥२३४॥

लोहा केरी नावरी, पाहन गरुवा भार ।
सिर पर बिष की मोटरी, उतरन चाहै पार ॥२३५॥

कृस्न समीपी पंडवा, गले हिवारै जाय ।
लोहा को पारस मिले, काहे काई खाय ॥२३६॥

पूरब उगि पच्छिम अथै[2], भखै पवन के फूल ।
ताहू को राहू ग्रसै, मानुष काहे को भूल ॥२३७॥

नैनन आगे मन बसे, पलक पलक करे दौर ।
तीनि लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥२३८॥

मन सारथि आपहि रसिक, विषय लहर फहराय ।
मन के चलाये तन चले, ताते सरबस जाय ॥२३९॥

ऐसी[3] गति संसार की, ज्यों गाड़र का ठाठ ।
एक परा जो गाड़ में, सबै गाड़ में जात ॥२४०॥

पा० १–खलक बँधे । २–विसवै । ३–कैसी, कासी ।

मारग तो अति कठिनहै, वहाँ कोई मति जाय।
गये ते बहुरे नहीं, कुसल कहै को आय ॥२४१॥

मारी मरै कुसंग की, केरा साथे बेर।
वै हालै वै चींधरे, विधिनै संग निबेर ॥२४२॥

केरा तबहिं न चेतिया, जब ढिग लागी बेर।
अब के चेते का भया, काँटन लीन्हा घेर ॥२४३॥

जीव मरम जानै नहीं, अंध भया सब जाय।
बादी दाद न पावई, जनम जनम पछिताय ॥२४४॥

जाको सतगुरु ना मिला, व्याकुल दहुँ दिसि धाय।
आंखि न सूझै बावरा, घर जरै घूर बुताय ॥२४५॥

बस्तु कहीं खोजै कहीं, क्यौं करि आवै हाथ।
ग्यानी सोइ सराहिये, पारख राखै साथ ॥२४६॥

सुनिये सब की, निबेरिये अपनी।
सेंधुरे का सिंधौरा, झपनी की झपनी ॥२४७॥

बाजन दे बाजंतरी, कल कुकुही मत छेड़।
तुझे बिरानी का पड़ी, अपनी आप निबेर ॥२४८॥

गावै कथै बिचारै नाहीं, अनजाने का दोहा।
कहँहि कबीर पारस परसे बिन, पाहन भीतर लोहा ॥२४९॥

प्रथम एक जो हौं किया, भया सो बारह बाट।
कसत कसौटी ना टिका, पीतर भया निराट ॥२५०॥

कबिरन भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय।
अंतर में बिष राखि कै, अमृत डारिन खोय ॥२५१॥

रही एक की भई अनेक की, वेस्या बहुत भतारी ।
कहँहिं कबीर काके संग जरिहै, बहु पुरुषन की नारी ॥२५२॥

तन बोहित मन काग है, लछ जोजन उड़ि जाय ।
कबहिं के भरमे अगम दरिया, कबहुँक गगन रहाय[1] ॥२५३॥

ग्यान रतन की कोठरी, चुंबक दीन्हौ ताल ।
पारखि आगे खोलिये, कुंजी बचन रसाल ॥२५४॥

सुरग पताल के बीच में, दुई तुमरिया बिद्ध ।
षट दरसन संसै परी, लख चौरासी सिद्ध ॥२५५॥

सकलो दुरमति दूर करु, अच्छा जनम बनाव ।
काग गौन गति छांड़ि कै, हंस गौन चलि आव ॥२५६॥

जैसी कहै करै पुनि तैसी, राग दोष निरुवारै ।
तामे घटै बढ़ै रतियो नहिं, यहि बिधि आपु सँवारै ॥२५७॥

द्वारे तेरे रामजी, मिलहु कबीरा मोहिं ।
तैं तो सब सों मिलि रहा, मैं न मिलौंगा तोहिं ॥२५८॥

भरम बढ़ा तिहुँ लोक में, भरम मँडा सब ठाँव ।
कहँहि कबीर पुकारिकै[2], बसेउ भरम के गांव ॥२५९॥

रतन अड़ाइन रेत में, कंकर चुनि चुनि खाय ।
कहँहि कबीर पुकारिकै, बहुरि चलै पछिताय ॥२६०॥

जेते पत्र बनासपति, औ गंगा की रेन ।
पंडित बिचारा का कहै, कबीर कहीं मुख बैन ॥२६१॥

हौ जाना कुल हंस हो, ताते कीन्हा संग ।
जो जानत बगु बावरा, छुवन न देते अंग ॥२६२॥

पा० १—कबहो दरिया अगम बहै कबही गगन समाय । २—यह अवसर बीते ।

गुनिया तौ गुन ही कहै, निर्गुन गुनहिं घिनाय।
बैलहिं दीजै जायफर, का बूझै का खाय ॥२६३॥

अहिरहु तजि खसमहु तजी, बिना दांत की ढोर।
मुक्ति बिना[1] बिललात है, बिंद्रावन की खोर ॥२६४॥

मुख की मीठी जो कहै, हिरदय है मति आन।
कहँहिं कबीर तेहि लोग से, तैसहिं राम[2] सयान ॥२६५॥

इतते सब कोई गये, भार लदाय लदाय।
उतते कोई न आइया, जासों पूछौं धाय ॥२६६॥

भगति पियारी राम की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पत्तन[3] जरि मुवा, बहुरि लै आवै[4] मांगि ॥२६७॥

नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोय।
जार मीत हिरदय बसे, खसम खुसी क्यौं होय ॥२६८॥

सज्जन तो दुरजन भया, सुनि काहू के बोल।
कांसा तांबा होय रहा, नहि हिरन्य का मोल ॥२६९॥

बिरहिन साजी आरती, दरसन दीजै राम।
मूये दरसन देहुगे, आवै कौने काम ॥२७०॥

पल में परलै बीतिया, लोगन लागि तमारि।
आगल सोच निवारि कै, पाछिल करो गोहारि ॥२७१॥

एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, जहाँ दूसरा नांहि ॥२७२॥

एक साधे सब साधिया, सब साधे एक[5] जाय।
जैसे सींचे[6] मूल को, फूलै फलै अघाय ॥२७३॥

पा० १—परी। २—रामहु अधिक। ३-पट्टन। ४—फिरि फिरि लावै।
५—सब। ६—उलटि जो सींचै।

जेहि बन सिंघ न संचरै, पंछी ना उड़ि जाय ।
सो बन कबिरन हींड़िया, सुन्न समाधि लगाय ॥२७४॥

सांच कहौं तो मारिया, झूठहिं लागु पियारी ।
मो सिर ढारे ढेंकुली, सींचे और कियारि ॥२७५॥

बोली तौ अनमोल है, जो कोई बोलै जानि ।
हिये तराज़ू तौलकै, तब मुख बाहर आनि ॥२७६॥

करु बहियाँ बल आपनी, छाडु बिरानी आस ।
जेहि आगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास ॥२७७॥

वो तो वैसेही हुआ, तू मति होहु अयान ।
वो निरगुन गुनवंत तू, मत एकहि में मान ॥२७८॥

जो मतवारे राम के, मगन होंहि मन माँहिं ।
ज्यों दरपन की सुंदरी, गहे न आवै बांहिं ॥२७९॥

साधू होना चाहिये, पक्का ह्वै कै खेल ।
कच्ची सरसों पेरिकै, खरी भई नहिं तेल ॥२८०॥

सिंघों केरी खोलरी, मेंढ़ा पैठा धाय ।
बानी ते पहिचानिये, सब्दै देत लखाय ॥२८१॥

जेहि खोजत कलपौ गये, घटही माँहि सो मूर[1] ।
बाढ़ी गरब गुमान ते, ताते परि गइ दूर ॥२८२॥

दस द्वारे का पिंजरा, तामें पंछी पौन ।
रहिबे का अचरज अहै, जात अचंभौ कौन ॥२८३॥

रामहिं सुमिरे रन भिरे, फिरे और की गैल ।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़ि फिरतु है बैल ॥२८४॥

पा० १—नूर, पूर ।

खेत भला बीजौ भला, बोय मुठी का फेर ।
काहे बिरवा रूखरा, ये गुन खेतहिं केर ॥२८५॥

गुरु सीढ़ी ते ऊतरे, सब्द विहूना[१] होय ।
ताको काल घसीटिहै, राखि सकै नहिं कोय ॥२८६॥

भूंभुरि घाम बसे घट मांही, सब कोई बसे सोग की छांही ।२८७।

जो मिलिया सो गुरु मिलिया, सीख न मिलिया कोय।
छः लाख छानवे रमैनी, एक जीव पर होय ॥२८८॥

जहँ गाँहक तहँ हौं नहीं, हौं तहाँ गाँहक नाहिं ।
बिनु बिवेक भटकत फिरै, पकरि सब्द की छाँहिं ॥२८९॥

नग पखान जग सकल है, परखे बिरला कोय ।
नग तो उत्तम पारखी, जग में बिरला होय ॥२९०॥

सपने सोया मानवा, खोलि जो देखा नैन ।
जीव परा बहु लूटि मैं, ना कछु लेन न देन ॥२९१॥

नस्टहिं का तो राज है, नफर का बरते तेज ।
सार सब्द टकसार है, हिरदय माहिं बिबेक ॥२९२॥

जब लग ढोला तब लग बोला, तौलौं धन ब्यवहार ।
ढोला फूटा बोला गया, कोई न झाँकै द्वार ॥२९३॥

कर बंदगी बिबेक की, भेष धरे सब कोय ।
सो बंदगी बहि जान दै, सब्द बिवेक न होय ॥२९४॥

सुर नर मुनि औ देवता, सात दीप नौ खंड ।
कहँहिं कबीर सब भोगिया, देह धरे का दंड ।।२९५॥

पा०–१–बिमूखा ।

जब लग दिल पर दिल नहीं, तब लग सब सुख नाहिं ।
चारिउ जुगन पुकारिया, सो संसै दिल माँहि ॥२९६॥
जंत्र बजावत हौं सुना, टूटि गये सब तार ।
जंत्र बिचारा का करे, गया बजावनि हार ॥२९७॥
जो तू चाहै मुझको, छाँड़ सकल की आस ।
मुझहीं ऐसा होय रहु, सब सुख तेरे पास ॥२९८॥
साधु भया तो का भया, बोलै नाहिं बिचारि ।
हते पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवारि ॥२९९॥
हंसा के घट भीतरे, बसे सरोवर खोट ।
चले गाँव जहँवा नहीं, तहाँ उठावन कोट ॥३००॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥३०१॥
ढाढस देखो मरजीवा को, धँसिकै[1] पैठ पताल ।
जीव अटक मानै नहीं, ले गहि निकरा लाल ॥३०२॥
ई जग तो जहँड़े गया, भया जोग ना भोग ।
तिलै झारि कबीरा लिया, तिलठी झारै लोग ॥३०३॥
ये मरजीवा अमृत पीवा, का धँसि मरसि पतार ।
गुरु की दया साधु की संगति, निकरि आव यहि द्वार ॥३०४॥
केते बुंद हलफौं गये, केते गये बिगोय ।
एक बुंद के कारने, मानुष काहेक रोय ॥३०५॥
आगि जो लागि समुद्र में, टूटि टूटि खसै खोल ।
रोवै कबीरा डँफिया, हीरा जरै अमोल ॥३०६॥

पा० १—धाय जुरि ।

छौ दरसन महँ जो परमानाँ, तासु नाम बनवारी ।
कहँहिं कवीर सब खलक सयाना, इनमें हमहिं अनारी ।।३०७।।

साँचे स्राप न लागई, साँचे काल न खाय ।
साँचे साँचे जो चले, ताको काह नसाय ।।३०८।।

पूरा साहब सेइये, सब बिधि पूरा होय ।
ओछ से नेह लगाय कै, मूलहुँ आवै खोय ।।३०८।।

जाहु बेद घर आपने, बात न पूँछै कोय ।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहेगा सोय ।।३१०।।

औरन के सिखलावते, मोहड़े परिगौ रेत ।
रास बिरानी राखते, खइनि घर का खेत ।।३११।।

मैं चितवत हौं तोहिं को, तू चितवत है ओहिं ।
कहँहिं कबीर कैसे बने, मोहिं तोहिं औ ओहिं ।।३१२।।

तकत तकावत तकि रहा, सका न बेझा मारि ।
सबै तीर खाली परे, चला कमानहिं डारि ।।३१३।।

जस कथनी तस करनी, जस चुंबक तस ग्यान ।
कहँहिं कबीर चुंबक बिना, क्यों जीतै संग्राम ।।३१४।।

आपनि कहै मेरी सुनै, सुनि मिलि येकै होय ।
हमरे देखत जग चला, ऐसा मिला न कोय ।।३१५।।

देस बिदेसन हौं फिरा, गाँव गाँव की खोरि ।
ऐसा जियरा ना मिला, लेवै फटकि पछोरि ।।३१६।।

हौं चितवत हौं तोहि को, तू चितवत कछु और ।
लानत ऐसे चित्त पर, येक चित्त दुइ ठौर ।।३१७।।

पा० १—परवाना, एक बिचारा ।

चुंबक लोहे प्रीति है, लोहै लेत उठाय।
ऐसा सब्द कबीर का, जम से लेत छुड़ाय ॥३१८॥

भूला तो भूला, बहुरि कै चेतना।
सब्द की छूरी से, संसै को रेतना ॥३१९॥

दोहरा कथि कहँ कबीर, प्रतिदिन समय जो देखि।
मुये गये नहिं बहुरे, बहुरि न आये फेरि ॥३२०॥

गुरू बिचारा का करै, सीषहिं माँ है चूक।
भावै त्यों परमोधिये, बाँस बजाए फूंक ॥३२१॥

दादा भाई बाप कै लेखों, चरनन होइ हौं बंदा।
अबकी पुरिया जो निरुवारे सो जन सदा अनंदा ॥३२२॥

सबते लघुता है भला, लघुता ते सब होय।
जस दुतिया को चंद्रमा, सीस नवै सब कोय ॥३२३॥

मरते मरते जग मुवा, मुवै न जाना कोय।
असा होय कै ना मुवा, बहुरि न मरना होय ॥३२३॥

मरते मरते जग मुवा, बहुरि न किया बिचार।
एक सयानी आपनी, परबस मुवा संसार ॥३२५॥

सब्द अहै गाहक नहीं, बस्तू महँगे मोल।
बिना दाम का मानवा, फिरै सो डाँवा डोल ॥३२६॥

ग्रिह तजिकै जोगी भये, जोगी के ग्रिह नाहिं।
बिनु बिवेक भटकत फिरै, पकरि सब्द की छाँहि ॥३२७॥

सिंघ अकेला बन रमे, पलक पलक करै दौर।
जैसा बन है आपना, वैसा बन है और ॥३२८॥

पा०—१ दादा, भाई मान के लेखे, चरन होय गै बन्धा। अबकी बेरिया जो न समझे, सो नर सदा है अन्धा ॥

पैठा है घट भीतरे, बैठा है साचेत ।
जब जैसी चाहै गती, तब तैसी मति देत ॥३२९॥

बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर का घाट ।
अंतर घट की करनी, निकरै मुख की बाट ॥३३०॥

दिल का महरम कोई न मिलिया, जो लिया सो गरजी ।
कहैं कबीर असमानैं फाटा, क्यों करि सीवै दरजी ॥३३१॥

ई जग जरतै देखिया, अपनी अपनी आगि ।
ऐसा कोई न मिला, जासों रहिये लागि ॥३३२॥

बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल ।
कहा लाल लै कीजिये, बिना बास का फूल ॥३३३॥

साँच बरोबरि तप नहीं, झूठ बरोबरि पाप ।
जाके भीतर साँच है, ताके हिरदय आप ॥३३४॥

का रे बड़े कुल ऊपजे, जो रे बड़ी बुधि नाहिं ।
जैसा फूल उजार का, मिथ्या लगि झरि जाहि ॥३३५॥

करते किया न बिधि किया, रबि ससि परी न दीठि ।
तीनि लोक में है नही, जानै सकलौ स्रीस्टि ॥३३६॥

सुरहुर पेड़ अगाध फल, पंछी मरिया झूर ।
बहुत जतन कै खोजिया, फल मीठा पै दूर ॥३३७॥

बैठा रहै सो बानिया, ठाढ़ रहै सो ग्वाल ।
जागत रहै सो पहरुआ, तेहि धरि खायौ काल ॥३३८॥

आगे आगें दौ जरे, पाछे हरियर होय ।
बलिहारी तेहि ब्रिछ की, जर काटे फल होय ॥३३९॥

जनम मरन बालापना, बिरध अवस्था आय।
जस बिलाइ मूसा तकै, जम जिव घात लगाय ॥३४०॥

है बिगरायल ओर का, बिगरो नाहिं बिगारो।
घाव काहि पर घालौं, जित देखै तित प्रान हमारो ॥३४१॥

पारस परसे कनक भौ, पारस कबहुँ न होय।
पारस के अरसै परस, कनक कहावै सोय ॥३४२॥

ढूंढ़त ढूंढ़त ढूंढ़िया, भया सो गूना गून।
ढूंढ़त ढूंढ़त ना मिला, हारि कहा बेचून ॥३४३॥

बे चूने जग चूनिया, सांई नूर निनार।
तब आखिर के बखत में, किसका करो दिदार ॥३४४॥

सोई नूर दिल पाक है, सोइ नूर पहिचान।
जाके कीन्हें जग भया, सो बेचून क्यों जान ॥३४५॥

ब्रह्मा पूछै जननि से, कर जोरि सीस नवाय।
कौन बरन वह पुरुष है, माता कहु समझाय ॥३४६॥

रेख रूप वै है नहीं, अधर धरी नहिं देह।
गँगन मँडल के मध्य में, निरखो पुरुष बिदेह ॥३४७॥

धरे ध्यान गँगन के माँही, लाये बज्र कँवार।
देखी प्रतिमा आपनी, तीनिउँ भये निहाल ॥३४८॥

यह मन तो सीतल भया, जब उपजा ब्रह्मा ग्यान।
जेहि बसंदर जग जरे, सो पुनि उदक समान ॥३४८॥

जासो नाता आदि का, बिसरि गया सो ठौर।
चौरासी की बसि परै, कहे और की और ॥३५०॥

अलख लखौं अलखै लखौं, लखौं निरंजन तोहिं ।
हौं कबीर सब को लखौं, मोको लखै न कोय ॥३५१॥

हम तो लखा तिहु लोक, में तू क्यों कहै अलेख ।
सार सब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥३५२॥

साखी आँखी ग्यान की, समुझि देखु मन माँहि ।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं ॥३५३॥

परिशिष्ट (क)

कोश

अ

अंकुल—सं० पु० [सं० अंकुर] अँखुवा। गाभ। आ० अहंकार इच्छा।

अंकुस—सं० पु० [सं० अंकुश] हाथी हांकने का दो मुहाँ भाला जिस का एक फल झुका रहता है। आंकुस। आ० संसारिक यातनायें। ज्ञान।

अँचवन—सं० पु० [सं० आचमन] भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना। क्रि० स० पीना। पान करना।

अँचवै—देखो अँचवन

अंजनी—सं० स्त्री० माया।

अंटके—क्रि० अ० [सं० अ=नहीं + टिक्=चलना] अटकना। फंसना। उलझना

अंड—सं० पु० [सं०] अंडा। ब्रह्मांड, लोक पिंड। विश्व। अंडज। वीर्य। शुक्र

अंतर—क्रि० वि० भीतर। अंदर। सं० पु० [सं० अन्तस्] हृदय। अंतः करण। मन।

अंतर जोति—सं० स्त्री० [सं० अंतर्ज्योति] अपने भीतर की ज्योति। आ० चैतन्य।

अंतरिछ—सं० पु० [सं० अंतरिक्ष] पृथ्वी और सुर्यादि लोकों के बीच का स्थान। आकाश। स्वर्ग लोक। दे० प० ख० हरिश्चंद।

अंदेसा—सं० पु० [फा० अंदेशा] चिंता। सोच। फिक्र। संशय। भय। दुविधा।

अंध—वि० [सं०] नेत्र हीन। अज्ञानी। मूर्ख। अविवेकी। अचेत।

अंधियारी—सं० स्त्री० [हि०] अंधकार। तम। आ० अज्ञान।

अंबु—सं० पु० [सं०] जल। पानी। आ० विन्दु। वीर्य।

अंमर—सं० पु० [सं० अंबर] आकाश। आसमान। गगन मंडल। ब्रह्मरंध्र। शून्य। स्वर्ग। देवलोक। आ०चैतन्य। जीवात्मा। गगन गुफा।

अउठा—दे० अहुंठा।

अकथ—वि० [सं० अकथ्य] जो कहा न जा सके। बरणन से परे। अकथनीय।

अकरम—सं० पु० [सं० अकर्म] न करने योग कार्य। दुष्कर्म। बुरा काम। कर्म का अभाव।

अकहुआ—दे० अकथ

अकिल—सं० स्त्री० [अ० अक़्ल] बुद्धि। समझ। प्रज्ञा। ज्ञान। विवेक।

अखधै—वि० [सं० अखाद्य] न खाने योग्य। अभक्ष्य। आ० अशुभ कर्म।

अखै—वि० [सं० अक्षय] जिस का क्षय न हो। अविनाशी।

अगम—वि० [सं० अगम्य] जहाँ कोई जा न सके। बुद्धि से परे। पहुच के बाहर। अथाह। दुर्गम। कठिन। दुर्लभ। बहुत। अपार। आ० निगुंण।

अगमन—क्रि० वि० [सं० अग्रवान] आगे। पहिले। प्रथम। उ० तब अगमन होय गोरा कहा। जा०

अगाध—वि० [सं०] अथाह। जिसका कोई पार न पा सके। बहुत गहरा।

अगारी—क्रि० वि० आगे। सं० पु० [सं० आगार] घर। निवास स्थान। आ० हृदय।

अगुआ—सं० पु० [सं० अग्रगामी] अग्रसर। आगे चलने वाला। मुखिया। प्रधान। नेता। पथ दर्शक। आ० ब्रह्म। गुरुवा।

अगुवन—सं० पु० [अगुवा का बहुवचन] आगे चलने वाले। आ० देवता।

अगिनि—दे० 'आगि' आ० जठर अग्नि। त्रयताप।

अघाय—क्रि०अ० परिपूर्ण होकर।

अचरज—सं० पु० [सं० आश्चर्य] अचंभा।

अचारा—सं० पु० [सं० आचार] शुद्धि। सफाई।

अचेत—सं० पु० [सं० अचित्] जड़ प्रकृति। जड़त्व। माया। अज्ञान।

अच्छय—दे० अखै

अच्छर—वि० [सं० अक्षर] आकरादि वर्ण। हरफ़। नित्य। स्थिर। अविनाशी आ० उपदेश।

अछत—क्रि० वि० रहते हुए। सामने। विद्यमानता में। उ०तोर अछत दशकन्धर मोर कि अस गति होय।—तु०

अछलो, अछलौं—क्रि० अ० [प्रा० अच्छ=होना] अछना। रहना। विद्यमान रहना। था।

अजगूता—सं० पु० [सं० अयुक्त] अचंभे की बात। आश्चर्यजनक भेद। अस्वाभाविक व्यापार। उ० तापर एक सुनोरी अजगुत लिखि लिखि जोग पठावैं।—सूर

अजान—दे० अयान

अटक—सं० पु० [सं० आ+टक= बंधन] रोक। रुकावट। अड़चन। बिघ्न। बाधा। उ० बाट बाट कहुं अटक होय नहीं सब कोउ देइ निबाहि।—सूर

अटल—वि० [सं० अ= नहीं + टल=चंचल] जो न टले। जो न डिगे। निश्चल। स्थिर।

अठारहभार—सं० पु० [देश०] सम्पूर्ण वनस्पति जगत। उ० ज्यूँ माषी मधु काढि ले,सोधि अठारह भार। त्यूँ रज्जब तत हीं गह्यो, तीन्यू लोक मँझार—रज्जब।

अड़ाइनि—क्रि० स० [देश०] गिराना। ढरकाना। उठेलना।

अड़ि—क्रि० अ० ठहरना स्थिर होना।

अतीत—वि० [सं०] विरक्त। निर्लेप। असंग। सं०पु० वीतराग। सन्यासी। यती। विरक्त साधु।

अथई—क्रि० अ० अस्त होना। डूबना। आ० लय होना।

अथाइया— सं० स्त्री० [सं० स्थान] बैठने की जगह। चौबारा। घर की वह बाहरी चौपाल जहाँ लोग इष्ट मित्रों के साथ बैठते हैं। घर के सामने का चबूतरा जिस पर लोग उठते-बैठते हैं। मंडली। सभा। उ० गोप बड़े-बड़े बैठें अथाइन केशव कोटि सभा अवगाही—के०

अदग—वि० [सं० अदग्ध] निष्कलंक। शुद्ध। निर्मल। अछूता।

अदबुद, अदबुद—वि० [सं० अद्भुत] आश्चर्यजनक। विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अपूर्व। अलौकिक।

अदल—सं० पु० [अ०] इंसाफ।

अदिष्ट—वि० [सं० अदृष्ट] न देखा हुआ। सं० पु० भाग्य। प्रारब्ध। भावी। उ० केशव अदृष्ट साथ बीज जोति जैसी—केशव।

अधकूचा—वि० [हिं० अधकचरा] अधूरा। अपूर्ण।

अदबुध—वि० अर्धशिक्षित अध-कचरा। जिसकी शिक्षा पूरी न हुई हो।

अधर कटोरी—सं० स्त्री० [देश०] [सं० चषक] प्याला। आ० हठ-योगियों के जिह्वा उलट कर निर्झर पान करने का एक रूप।

अधार—सं० पु० [सं०] आश्रय। सहारा। अवलंब।

अधारा—दे० अधार

अधारी—सं० स्त्री० [सं० अधार] काठ के ठंठे में लगे हुए पीढ़े को अधारी कहते हैं, जिसे योगी (साधू) सहारे के लिये रखते हैं। आसा। उ० जोग बाट रुद्राक्ष अधारी। जा०।आ०जीव। चैतन्य।

अधिकारी—सं० पु० [सं० अधिकारिन] स्वत्वाधारी। योग्यता रखने वाला। उपयुक्त पात्र। मु० सब मनुष्य वेदांत के अधिकारी नहीं हैं।

अनंत—वि० [सं०] अनेक। असंख्य। बहुत अधिक। जिसका अंत न हो। ब्रह्म।

अनंता—दे० अनंत

अनगुनी—वि० [सं० निर्गुणी। बिना गुण वाला। आ० निर्गुणोपासक।

अनजान—वि० [सं० अन + हिं० जान] अज्ञानी।

अनबनि—वि० भिन्न-भिन्न। नाना (प्रकार) विविध। अनेक। उ० भा कटाव सब अनबन भाँती—जा०

अनबेधल—वि० [सं० अन+विद्ध] बिना बेधा हुआ। बिना छेद किया हुआ। आ० चैतन्यात्मा।

अनबोला—वि० [सं० अन्=नहीं+बोल] न बोलने वाला। मौन। गूँगा। आ० अनहद शब्द।

अनल—सं० पु० [सं०] अग्नि। आग। आ० विषय। त्रितापाग्नि।

अनहद—सं० पु० [सं०] अनहद शब्द। बिना अघात का शब्द। योग का एक साधन। गगन गिरा। वह नाद वा शब्द जो दोनों हाथों के अँगूठे से दोनों कानों की लवे बंद कर के ध्यान करने से सुनाई देता है।

अनारी—सं० पु० [सं० अनार्य्य] ना समझ। नादान। गंवार। अनजान। अज्ञानी।

अनुख—सं० पु० [सं० अनख] क्रोध। दुःख। झंझट। अनरीति।

अनभव, अनभौ—सं० पु० [सं० अनुभव] वह ज्ञान जो साक्षात करने से प्राप्त हो। स्मृति भिन्न ज्ञान, मु० सब जीव पीड़ा का अनुभव करते हैं।

अनूपम—वि० [सं० अनुपम] उपमा रहित। बेजोड़। उत्तम। श्रेष्ठ।

अपनपौ—सं० पु० [हिं० अपना+पौ (प्रत्य०) आत्मीयता। आत्म-स्वरूप। संज्ञा। सुध। ज्ञान। उ० सो मैं निरखि अपनपौ खोयों गई मथनिया मांगन री।—सूर

अपरमपार—वि० जिसका परावार न हो। असीम। बेहद। अनंत।

अपार—दे० 'अपरमपार'

अपावन—वि० [सं०] अपवित्र। अशुद्ध।

अपूरी—सं० स्त्री० भरा हुआ। फैला हुआ। व्याप्त। भरपूर।

अपूर—वि० [सं० आपूर्ण] पूरा। उ० जल थल भरे अपूर सब धरनि गगन मिल एक। जा०

अबधू—सं० पु० [अवधूत] त्यागी । सन्यासी । विरागी । संत । साधु । अवधूत । आ० ज्ञानी । योगी । उ० दसवै द्वारि अवधू मधुकरी माँगो ।–गोरख

अबिगत, अविगत—वि० [सं०] जो जाना न जाय । अविनाशी । जो नाश न हो । नित्य । जो उत्पन्न न हुआ हो । व्यापक । ज्ञान रूप । विचित्र ।

अबिचल—वि० [सं०] जो विचलित न हो । अचल । स्थिर । अटल ।

अबिनासी—दे० अविनासी ।

अबरन—वि० [सं० अवर्ण] बिना रूप रंग का । वर्ण शून्य । रूप रहित । निराकार । [सं० अवर्ण्य] अकथनीय उ०अलख अरूप अबरन सो करता ।—जा०

अबुझा—वि० [सं० अबुद्ध] अबूझ । अबोध । नासमझ । नादान ।

अबेध—वि० [सं० अविद्ध] जो छिदा न हो । बिना बेधा । अन-बिधा । आ० अखंड

अभार—वि० [सं० अ=नहीं+भार= बोझा] न ढोने योग्य । दुर्वह ।

अभिअंतर—सं० पु० [सं० अभ्यंतर] हृदय । क्रि० वि० भीतर । अंदर ।

अभिमान—सं० पु० [सं०] अहंकार । गर्व । घमंड ।

अमर—वि० [सं०] जो मरे नहीं । अविनाशी । जीव ।

अमर पद—सं० पु० [सं०] अविनाशी पद । मोक्ष ।

अमर लोक—सं० पु० [सं०] अविनासी लोक । स्वर्ग । इन्द्रपुरी । देवलोक । सत्य लोक ।

अमल—सं० पु० [अ०] अधि-कार । शासन । हुकूमत । प्रभाव । असर । साधन । नशा ।

अमली—वि० [अ०] अमल करने वाला । नशीली चीजें खाने वाला । व्यसनी ।

अमहल—सं० पु० [सं० अ= नहीं + अ० महल] बिना घर का । अनिकेत । व्यापक । आ० कल्पित लोक आदि ।

अमाई—क्रि० अ० समाना । अटना । पूरा-पूरा भरना ।

अमाय—दे० अमाई

अमोलिक—वि० [सं० अ + हि० मोल] अमोलक । अमूल्य । बहुमूल्य । कीमती । उ० छाँडि कनक मणि रत्न अमोलक कांच की किरच गही ।—सूर

अमृत—सं० पु० [सं०] सुधा । पीयूष । मुक्ति । आ० मोक्ष । आत्मा । विचार ।

अमृत बेली—सं० स्त्री० [सं० अमृत बल्ली] कुंडलिनी शक्ति जब उलट कर ब्राह्मांड में पहुँच

जाती है और नख से शिख तक सर्वांग में वायु व्याप्त हो जाती है। तब उलटा सहस्रार से अमृत का निर्भर प्रवाहित होता है। उसीको अमृत बल्लरी का पान करना कहते हैं।

अयान—वि० [सं० अ=नहीं + ज्ञान] अजान। अनजान। न समझ। अज्ञानी।

अयाना—दे० अयान

अरगाय—क्रि० अ० [हिं० अलगाना] अलग होना। मौन होना। चुप्पी साधना। उ० अपनी चाल समुझि मन माहीं गुनि अरगाय रह्यो।—सूर

अरथ, अर्थ—सं० पु० [सं० अर्थ] धन। संपति। मतलब। अभिप्राय।

अरथावै—क्रि० स० [सं० अर्थ] निर्णय करना। व्याख्या करना। विवरण करना। समझाना।

अरध—वि० [सं० अर्द्ध] आधा।

अरब—सं० पु० [देश०] प्रकाश।

अरस परस—सं० पु० [सं० दर्शन स्पर्शन] देखना। छूना। परिचय करना।

अरुझि—क्रि० अ० [सं० अवरोध] उलझना। फंसना। उ० **करत न प्रान पयान सुनहु सखी अरुझि परी एहि लेखे।**—तु०

अर्घ—सं० पु० [सं०] षोड़शोपचार में एक। किसी देवता को जल आदि अर्पण करना। सामने जल गिराना।

अरघा—दे० अर्घ

अलक—सं० पु० [सं०] मस्तक के इधर उधर लटकते हुए मरोड़दार बाल। बाल। केश। आ० लगन। आशा।

अलख—वि० [सं० अलक्ष्य] जो दिखाई न पड़े। अदृश्य। आ०मन।

अलेख—वि० [सं०] बे हिसाब। बे अंदाज। बहुत अधिक।

अलोप—सं० पु० [सं० लोप] गुप्त। लुप्त। देखाई न देना।

अवतार—सं० पु० [सं० अवतार] उतरना। जन्म। शरीर ग्रहण करना।

अवस्था—सं० स्त्री० [सं०] मनुष्य की चारि अवस्थाएँ बाल, कुमार, युवा और वृद्ध। दशा। काल।

अविनाशी—वि० [सं०अविनाशिन्] जिसका नाश न हो। अक्षय। अक्षर। अमर। नित्य। शाश्वत। चिरन्तन।

अष्ट कष्ट—सं०पु० [सं०] आठ कष्ट। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार, अथवा पंचक्लेश-अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश और दैहिक,

दैविक भौतिक ताप। या अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य। ईशत्व, वशित्व आदि सिद्धियाँ।

असमाना—दे० आकास

असरारा—क्रि० वि० [हिं० सर सर] निरंतर। लगातार। बराबर। सं० पु० [अ० असरार] हठ। दुराग्रह। शौक।

असवारा—सं० पु० [फा० सवार] जो किसी चीज पर चढ़ा हो। सवार।

असाधा—वि० [सं० असाध्य] जिसका साधन न हो सके। साधना रहित। असहाय।

असार—वि० [सं०] सार रहित। तत्व शून्य। निःसार।

असाढ़े—सं० पु० [सं० आसाढ़] एक मास का नाम।

असी सहस—सं० पु० [सं० अस्सी सहस्र] अस्सी हजार।

असुन—सं० पु० हृदय। अन्तःकरण।

असुर—सं० पु० [सं०] दैत्य। राक्षस। नीच वृतिका मनुष्य।

असूझ—वि० अंधकार मय। जिसका वार पार न दिखाई पड़े। आ० अज्ञान। नादान।

असौच—सं० पु० [सं० अशौच] अपवित्र। अशुद्ध।

अस्ति—सं० स्त्री० [सं०] भाव। सत्ता। विद्यमानता। है।

अस्थिर—वि० [सं० आस्थिर] निश्चल। अटल। सं० पु० मुक्ति। मोक्ष।

अस्थूल—वि० [सं०] जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।

अहुँठा—सं० पु० [अउठा] नापने की दो हाथ की लकड़ी जो जोलाहों के काम आती है। वि० [अहुठ] साढ़े तीन। आ० शरीर। उ० अहुठ पटण में भिष्या करै।—गो०

अहमक—वि० [अ०] बेवकूफ मूर्ख। नासमझ। दुर्बुद्धि।

अहिर—सं० पु० [सं० आभीर] एक जाति जिसका काम गाय भैंस पालना और दूध बेचना है। श्रीकृष्ण।

अहेर—सं० पु० [सं० आखेट] शिकार। मृगया। वह जन्तु जिसका शिकार खेला जाय।

अहेरा—दे० 'अहेर'

अहेरी—सं० पु० [हिं० अहेर] शिकारी आदमी। आखेटक

अहो निसि—क्रि० वि० [सं० अहर्निश] आठ पहर। रात दिन। सदा। नित्य।

आ

आँगन—सं० पु० [सं० अङ्गण] घर के भीतर का सहन। चौक। अजिर। आ० अंग। हृदय।

आँता—सं० स्त्री० [सं० अन्त्र] प्राणियों के शरीर में फेफड़ों के नीचे की वे नलिकायें जो पेट के दोनों ओर व्याप्त रहती हैं। और पाचन क्रिया में सहायता देती हैं। अवयव।

आँधरि—वि० [सं० अन्ध] अंधी। नेत्र हीन। आ० विवेक हीन।

आऊ—सं० स्त्री [सं० आयु] वय। उम्र। जिन्दगी। जीवन काल।

आकास—सं० पु० [सं० आकाश] अंतरिक्ष। आसमान। गगन। शून्य स्थान। आ० ब्रह्म। ब्रह्मांड।

आखिर—सं० पु० [फा०] अंत।

आगम—सं० पु० [सं०] वेद। शास्त्र। तंत्र शास्त्र। नीति शास्त्र। नीति। भवितव्यता।

आगल—वि० [हिं० अगला] आगे का। अग्रिम।

आगि—सं० स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि। पंच तत्वों में से एक, जिसका गुण दाहक है। आ० अज्ञान।

आतम—सं० स्त्री० [सं० आत्मा] जीव। मन। ब्रह्म।

आतस—दे० 'आगि'

आथये—क्रि० अ० [सं० अस्तमन] अस्त होना। डूबना। उ० सेवक सखा भगति भायप गुण चाहत अब अथये हैं। तु०। आ०शरीरान्त होना।

आदति—सं० स्त्री० [अ० आदत] स्वभाव। अभ्यास।

आदर—सं० पु० [सं०] सम्मान। सत्कार। प्रतिष्ठा। आदर।

आध कोस—सं० पु० आ० अर्ध-मात्रा।

आन—वि० [सं० अन्य] दूसरा। और।

आनि—सं० स्त्री० लाकर।

आपा—सं० पु० [हिं० आप] अहंकार। घमंड।

आपु—सर्व० [सं० आत्मन] स्वयं। खुद।

आब्र—सं० स्त्री० [फा०] प्रतिष्ठा। इज्जत। महिमा।

आभरन—सं०पु० [सं० आभरण] गहना। आभूषण। जेवर।

आरसी—सं० स्त्री० [सं० आदर्श] शीशा। दर्पण। आइना। आ० ज्ञान।

आलम—सं० पु० [अ०] संसार। जहान।

आवा गमन—सं पु० [सं०] आना जाना। अवाई जवाई। जन्म मरण। मरना जीना।

आस—सं० स्त्री० [सं० आशा] आशा।

आसना—क्रि० अ० [सं० अस =होना] होना। सं० पु० [सं० आसन] जोव।

आसिक—सं० पु० [अ० आशिक] प्रेम करने वाला मनुष्य। वि० प्रेमी। आसक्त। मोहित।

आहि—क्रि० अ० आसना का वर्तमान कालिक रूप। है। अस्ति।

आहुति—सं० स्त्री० [सं०] हवन में डालने की सामग्री। होम। हवन।

इ

इंद्री—सं० स्त्री० [सं० इंद्रिय] मनुष्य के शरीर में दस इंद्रियाँ होती हैं, जिनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, जिनके द्वारा अनुभव किया जाता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, जिनके द्वारा कर्म किए जाते हैं। गो।

इच्छा—सं० स्त्री० [सं०] चाह। कामना। ख्वाहिस। अभिलाषा।

इत—क्रि० वि० [सं० इतः] इधर। यहाँ। इस ओर। आ० मृत्यु लोक।

ई

ई—[सं० इ=निकट का संकेत] यह।

ईद—सं० स्त्री० [अ०] मुसलमानो का त्योहार। रमजान महीने में तीस दिन रोजा (व्रत) रखने के बाद जिस दिन दूइज का चाँद दिखाई पड़ता है उस के दूसरे दिन यह त्योहार मनाया जाता है।

ईंधन—सं० पु० [सं०] जलाने की सामग्री। जलाने की लकड़ी।

ईस—सं० पु० [सं० ईश] स्वामी। मालिक। महादेव। शिव।

ईसरी—सं० स्त्री० [सं० ईश्वरीय] ईश्वर सम्बन्धी। ईश्वर की।

उ

उक्ती—सं० स्त्री० [सं० उक्ति] कथन। विचार।

उखेला—क्रि० सं० [सं० उल्लेखन] उरेहना। लिखना। तसवीर बनाना। बनाना।

उगि—दे० उदै।

उगै—दे० उदै।

उघरे—क्रि० अ० [सं० उद्घाटन] खुलना। असली रूप में प्रगट होना। भंडा फूटना। भेद खुलना। उ० उघरे अंत न होय निवाहू।—तु०

उघार—क्रि० सं० [सं० उद्घाटन] [प्रा० उगघाडना] उघारना। खोलना। आवरण रहित।

उघारि—दे० उघार।

उचरी—क्रि० स० [सं० उच्चारण] निकली। उचरना। उच्चारित होना। प्रकट होना।

उचायो—क्रि० स० [सं० उच्च+करना] ऊपर उठाना। सर पर रखना। आ० संसरासक्त होना।

उचिष्टा—वि० [सं० उच्छिष्ट] जूठा। किसी के खाने से बचा हुआ।

उछरा—क्रि० अ० [सं० उच्छलन] उतराना। तरना। ऊपर उठना। आ० संसार से पार होना।

उजर—वि० [सं० उज्ज्वल] सफेद। साफ। निर्मल।

उजारि—सं० पु० [हिं० उजड़ना] उजाड़। शून्य स्थान। जंगल। वयाबान। निर्जन।

उजू—सं० पु० [अ० वजू] नमाज पढ़ने के पूर्व पवित्रता के लिये हाथ पाँव आदि धोना। मुसलमानों का नियम है कि वे पहिले तीन बार हाथ धोते हैं फिर तीन बार कुल्ली कर के नथुनों में पानी देते हैं। पुनः मुँह धोकर कुहनियों तक हाथ धोते हैं और सिर पर पानी लगे हाथ फेरते हैं। अंत में पाँव धोते हैं। इसी आचार का नाम वजू है।

उतंग—वि० [सं० उत्तुङ्ग] ऊँचा। उन्नत। महान।

उतपति—सं० स्त्री० [सं० उत्पत्ति] जन्म। उद्भव। पैदाइस। सृष्टि। आरंभ।

उतपात—सं० पु० [सं० उत्पात] कष्ट पहुचाने वाली आकस्मिक घटना। उपद्रव। आ० पिंड। शरीरादिक।

उत्पाती—दे० उतपानी।

उतपानी—क्रि० स० उत्पन्न करना। पैदा करना। बनाना। उ० तासों मिलि नृप बहु सुख माने। षष्ठ पुत्र तासों उत्पाने। सूर।

उतरि—क्रि० स० [सं० उत्तरण] उतरना। पार होना। उ० उतरि ठाढ़ि मे सुरसरि रेता। तु०। आ० जीवन मुक्त होना।

उतारि—क्रि० स० [हिं० उतारना] किसी धारण की हुई वस्तु को दूर करना। त्यागना।

उद्क—सं० पु० [सं०] जल। पानी।

उद्धि—सं० पु० [सं०] समुद्र। आ० संसार। भव।

उदास—सं० पु० [सं०] दुःख। रंज।

उदासी—सं० पु० [सं० उदास+ हिं० ई (प्रत्य०)] विरक्त पुरुष। त्यागी पुरुष। सन्यासी। उ० होय गृही पुनि होय उदासी। अंत काल दोनो विश्वासी। जा०।

उदै—सं० पु० [सं० उदय] निकलना। प्रगट होना।

उधारन—क्रि० स० [सं० उद्धारन] उद्धार करना। मुक्त करना। छुट-

कारा करना। वि० उद्धार करने वाली।

उनमाना—सं० पु० [सं० अनुमान] अनुमान। निश्चय। अनुभव। ख्याल। ध्यान। समझ। उ० कहिवे में न कछू सक राखी। बुधि विवेक उनमान आपनो मुख आई सो भाखी। सूर।

उनमुनी—सं० स्त्री० [सं० उन्मनी] एक प्रकार की मुद्रा। दे० प० ध।

उपजत—दे० उपजल।

उपजल—क्रि० अ० [सं० उपजन] उत्पन्न होना। पैदा होना।

उपजै—दे० उपजल।

उपनिषद्—सं० पु० [सं०] भारतीय दर्शन से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकें जिनकी संख्या १०८ है। वेद की शाखाओं के ब्राह्मण के अंतिमभाग। ब्रह्म विद्या।

उपराजा—क्रि० स० [हिं० उपजना का स० रूप] उत्पन्न करना। पैदा करना। उ० तेहि पवन सो विजुरी साजा। ओहि मेघ परबत उपराजा। जा०।

उपाधि—सं० स्त्री० [सं०] उपद्रव उत्पात।

उपानी—दे० उपाने।

उपाने—क्रि० स० [सं० उत्पन्न] [स्त्री० उपानी] पैदा होना। पैदा हुए।

उपाया—दे० उपाने।

उपारे—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उखाड़ना।

उबहै—क्रि० स० [सं० उद्वहन] पानी फेकना। उलीचना।

उबाना—सं० पु० [हिं० उबहना] कपड़ा बुनने में राछ के बाहर जो सूत रह जाता है। अलग रहना।

उमंगे—क्रि० अ० [हिं उमंग + ना] उभड़ना। निकलना।

उरग—सं० पु० [सं०] सांप।

उर्ध—क्रि० वि० [सं० ऊर्द्ध्व] ऊपर। ऊपर की ओर।

उरधे—दे० उर्ध।

उरले—वि० [सं० अपर, अवर+ हिं० ला (प्रत्य०)] पिछला। पीछे का।

उलंघे—क्रि० स० [सं० उल्लंघन] नाघना। फाँदना।

उलटि—क्रि० अ० [हिं० उलटना] फिरना। घूमना। पलटना।

उलटी—वि० [हिं० उलटा का स्त्री० रूप०] विपरीत। विरुद्ध।

उलाहन—सं० पु० [सं० उपालंभन] उलाहना। शिकायत। गिला।

उहवाँ—क्रि० वि० [हिं० वहाँ] वहाँ। उस जगह। उस स्थान पर आ० स्वर्ग वैकुण्ठ आदि।

उहै—सर्व० [हिं० वह+ही] जिसके सम्बन्ध में कुछ कहा जा चुका हो। पूर्वोक्त।

ऊ

ऊँकार—सं० पु० [सं० ओंकार] ऊँ शब्द । प्रणव । ब्रह्म बीज । त्रिदेव ।

उ—सर्व० वह ।

ऊख—सं० पु० [सं० इक्षु] ईख । गन्ना । आ० रजोगुण । दुःख'

ऊजरा—दे० उजर

ऊडै—क्रि० अ० [सं० उड्डीयन] जाता रहना । गायब होना । दूर होना । मिटना । नष्ट होना ।

ऊतावला—वि० [हिं० उतावला] चंचल । वेगवान ।

ऊदेस—सं० पु० [सं० उद्देश्य] तात्पर्य । मतलब । अभिप्राय । हेतु । कारण । लक्ष्य ।

ऊन—वि० [सं०] घाटा । कम । न्यून । सं० पु० रुई ।

ऊबै—क्रि० अ० [सं० उद्वेजन] उकताना । घबड़ाना । अकुलाना । अधीर होना ।

ऊबरैं—क्रि० अ० [सं० उद्वारण] उवरना । बचना । छूटना ।

ऊभी—वि० [ऊर्ध्व=प्रा० उब्भ= अप० ऊवभ] ऊँचा ऊपर उठा हुआ । अत्यंत ।

ऊरध—दे० उर्ध

ऊसर—सं० पु० [सं० ऊषर] वह भूमि जिसमें रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न हो । जहाँ कोई वनस्पति जम न सके । निर्जन स्थान ।

ए

एकल—वि० [सं०] अकेला । एकता । आ० कला रहित । निर्गुण ।

एकताई—सं० स्त्री० [सं० एकता] ऐक्य । समानता । बराबरी ।

एतिक—वि० स्त्री० [हिं० एती + एक] इतनी ।

ऐ

ऐपन—सं० पु० [सं० प्रलेप] एक मांगलिक द्रव्य जो चावल और हल्दी को एक साथ गीला पीसने से बनता है । देवताओं की पूजा में इस से थापा लगाते हैं और घड़े पर चिह्न करते हैं । आ० विषय ।

ऐसनि—क्रि० वि० [हिं० ऐसा] इस तरह की । इस प्रकार की ।

ऐसो—दे० ऐसनि ।

ओ

ओ—अ०य० एक संबोधन सूचक शब्द । वह ।

ओछ—वि० [सं० तुच्छ] क्षुद्र । छिछोरा । बुरा । नीच । आ० मन

ओट—सं० स्त्री० शरण । पनाह । रक्षा । आड़ ।

ओटत—क्रि० स० [सं० आवर्तन] कपास को चरखी में दवा कर रुई और विनौलों को अलग करना । आ० विधि विधान करना । वाद विवाद करना ।

ओटा—सं० पु० [सं० ओट] आंड दे० ओट

ओदी—वि० [सं० आर्द्र] गीली । नम । तर । भीगी ।

ओबरी—सं० स्त्री० [सं० विवर] कोठरी । उ० वह मथुरा काजर की ओवरी जो आवे ते कारो ।—सूर

ओर—सं० पु० आदि । आरंभ । हद दरजे का । उ० हौ तो बिगरायल ओर को बिगरो न बिगारिए । -तु०

ओस—सं० स्त्री० [सं० अवश्याय] हवा में मिली भाप जो रात की सरदी से जम कर और जल विन्दु के रूप में हवा से अलग होकर पदार्थों पर लग जाती है । शीत । शबनम । आ० आशा ।

औ

औंधे घड़ा—सं० पु० [सं० अधः+ घट] उलटा घड़ा । जिसका मुँह नीचे हो । आ० वहिरंग वृति । जगत सुख ।

औ—अ०य० [सं० अपर] और ।

औगह—दे० औगाह

औगाह—वि० [सं० अवगाध] अथाह । बहुत गहरा । उ० खल अघ अगुन साधु गुन गाहा । उभय अपार उदधि औगाहा तु० ।

औघट—वि० [सं० अव+घट्ट=घाट] अवघट । कुघाट । दुर्गम । आ० कुमार्ग । कुसंग । अशुभ कर्म । चौरासी ।

औलिया—सं० पु० [अ० वली का वहु०] मुसलमान मत का सिद्ध । पहुँचे हुए फकीर । योग क्रिया को जानने वाला ।

औषध—सं० पु० [सं०] वह वस्तु जिस से शरीर की व्याधि नाश होती है । दवा । आ० सत्य ज्ञान ।

क

कंकर—सं० पु० [सं० कर्कर] एक खनिज पदार्थ जो उत्तर भारत में पृथ्वी के खोदने से निकलता है। कंकड़। कांकर। रोड़े। आ० विषय। दुर्गुण।

कंचन—सं० पु० [सं० काञ्चन] सोना। सुवर्ण। धन। संपति। वि० नीरोग। स्वस्थ। सुन्दर। आ० माया।

कंत—सं० पु० [सं० कांत] पति। स्वामी। मालिक। ईश्वर।

कंथा— सं० स्त्री० [सं०] गूदड़ी। कथड़ी। उ० फारि पटोर सो पहिरौं कंथा। जा०। आ० शरीर। उ० मनुवाँ योगी काया मढ़ी। पंचतत्त ले कंथा गढ़ी। गो०

कँदला—सं० स्त्री० [सं० कंदरा] गुफा। गुहा। आ० ज्ञान गुफा। हृदय।

कंध—सं० पु० [सं० स्कध] किसी कार्य में लगना।

कँवल—सं० पु० [सं० कमल] पानी में होने वाला एक फूल। कमल। कमल के आकार का एक मांस पिंड जो पेट में दाहिनी ओर होता है। हृदय कमल। उ० हृदय कमल, नैन कमल, देखि कै कमल नैन, होहुँगी कमल नैनी और हौ कहाँ कहूँ। के०।

कजरा—सं० पु० [सं० कज्जल] काजल। अंजन। आ० तामस।

कठवत—सं० पु० [हिं० काठ+ औता] काठ का एक बड़ा वर्तन जिस का किनारा बहुत ऊंचा और बहुत ढालू होता है।

कडिहँरिया—सं० पु० [सं० कर्ण-धार] नाविक। नाव चलाने वाला। मांझी। मल्लाह। केवट। पार करने वाला। आ० गुरू।

कथनी—सं० स्त्री० [सं० कथन+ ई (प्रत्य०)] बात। कथन। कहना।

कथि—क्रि० स० [सं० कथन] कथना। बात करना। कहना।

कधी—क्रि० वि० [हिं० कद + ही (प्रत्य०)] कभी। किसी समय।

कनक—सं० पु० [सं०] सोना। सुवर्ण [सं० कनिक] गेहूँ।

कनयर—सं० पु० [सं० कर्णोर] फूलों का एक पेड़ जो सफेद, काला लाल, पीला और गुलाबी पांच रंग का होता है। यह बिषैला भी होता है। आ० अज्ञान।

कन्था—सं० स्त्री० [सं०] अविवाहिता लड़की। कारी लड़की। आ० माया। बुद्धि।

कपड़ा—सं० पु० [सं० कर्पट] कपड़ा। बस्त्र। पट। रुई, रेशम

ऊन व सन के तागों से बना हुआ आच्छादन।
कपाट—सं० पु० [सं०] किवाड़। पाट। आ० अज्ञान।
कपास—सं० स्त्री० [सं० कर्पसि] भारत के अनेक भागों में पाया जाने वाला एक पौधा जिस के ढेढ़ से रुई निकलती है। आ० सतोगुण। सुख
कपि- सं० पु० [सं०] हनुमान। बानर। दे० प० ख।
कपूर—सं० पु० [सं० कर्पूर] एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगंधित द्रव्य। आ० ज्ञान।
कबिरन—सं० पु० [अ० कबीर= श्रेष्ठ+न=नहीं] जो श्रेष्ठ न हो। अज्ञान।
कबीर—सं० पु० [अ०] बड़ा। श्रेष्ठ। संत कबीर।
कबीरा—दे० कबीर।
कमऊ—क्रि० वि० कबहूँ। कभी भी।
कमला—सं० स्त्री० [सं०] लक्ष्मी। आ० माया।
कमान—दे० धनुस। आ० शरीर।
कर—सं० पु० [सं०] हाथ।
करक—सं० पु० [हिं०] बाँस आदि की बहुत छोटी फांस। रुक रुक कर होने वाली पीड़ा। कसक।
करकच—सं० पु० [देश०] बखेड़ा। रगड़। झगड़ा।
करगी—सं० स्त्री० [प्रा०] बाढ़। बूडा। निकट। समीप। आ० मृत्यु। बंधन।
करता—सं० पु० [सं० कर्ता] करने वाला। रचने वाला। विधाता। ईश्वर।
करतूता—दे० करतूती।
करतूती—सं० स्त्री० [हिं० करनी] कर्म। करनी। काम। करतब। उ० ऊँच निवास नीच करतूती।—तु०
करपल्लौ—सं० पु० [सं० करपल्लव] उंगलियाँ। हाथ का अगला भाग। पंजा।
करमिया—वि० [सं० कर्मी] कर्म करने वाला। कर्मठ। कर्मरत।
करवा—सं० पु० [सं० करक] धातु वा मिट्टी का टोंटीदार लोटा। बंधना। आ० देह। हृदय
करह—सं० पु० [सं० कलिः] फूल की कली।
करहा—सं० पु० [सं० करभ] ऊँट। हाथी का बच्चा। आ० हठ योगी।
करामाती—वि० [हिं० करामात] करामात दिखाने वाला। आश्चर्य-जनक क्रियायें दिखाने वाला व्यक्ति। सिद्ध। मु० यदि तुम बड़े करामाती हो तो इस पानी में बहते हुए को जिला दो।
कराहि—दे० कराहै।
कराहै—क्रि० अ० [हिं० करना+ आह] व्यथा सूचक शब्द मुँह से निकालना। आह करना।

करिगह—सं० पु० [फा० कारगाह] जुलाहों के कारखाने की वह नीची जगह जिसमें जुलाहे पैर लटका कर बैठते हैं। और कपड़ा बुनते हैं। जुलाहों के कपड़ा बुनने का यंत्र। जुलाहों का कारखाना। आ० शरीर।

करीम—सं० पु० [अ०] ईश्वर। वि० [अ०] कृपालु। दयालु।

करीमा—दे० करीम।

करुआ—वि० [सं० कटु] कटु। स्वाद में उग्र और अप्रिय। तीक्ष्ण। कडुआ।

करुवाई—सं० स्त्री० [हिं० करुआ] कडुआपन उ० धूमहु तजै सहज करुआई। तु०।

करोरा—सं० पु० [हिं० करोड़] करोड़ पति। बहुत बड़ा धनी।

कलंकी—सं० पु० [सं० कल्कि] कल्कि अवतार।

कल—सं० स्त्री० [सं० कल्य, प्रा० कल्ल] अराम चैन सुख। संतोष।

कल कुकुही—सं० स्त्री० [कल=वाद्य+कुकुही=बनमुर्गी] बनमुर्गी के आकार का एक बाजा। आ० कुण्डलनी।

कलत्र—सं० स्त्री० [सं०] स्त्री। पत्नी।

कलप—सं० पु० [सं०] काल का एक विभाग जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं, और जिसमें १४ मन्वंतर व ४३२०००००० वर्ष होते हैं। विभाग।

कलपौ—दे० कल्प।

कला—सं० स्त्री० [सं०] किसी कार्य को भली भांति करने का कौशल। हुनर। आ० चैतन्यात्मा। चेतना शक्ति।

कलाल—सं० पु० [सं० कल्यपाल] कलवार। मद्य बेचने वाला।

कलि—सं. पु०[सं०] कलियुग। पाप।

कलिमा—सं० पु० [अ० कलमा] वाक्य। बात। वह वाक्य जो मुसलमान धर्म का मूल मंत्र है। ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह।

कलेज—दे० कलेजा।

कलेजा—सं० पु० [सं० यकृत] प्राणियों का एक भीतरी अवयव जो छाती के भीतर बाईं ओर होता है जिस से नाड़ियों के सहारे शरीर में रक्त का संचार होता है। हृदय। दिल।

कलेवा—सं० पु० [सं० कल्यवर्त] वह हलका भोजन जो सुबह बासी मुँह किया जाता है। जलपान। उ० छगन मगन प्यारे लाल कीजिये कलेवा। सूर

कल्हारै—क्रि० अ० [सं० कल्ल=शोर करना] दुख से कराहना। चिल्लाना।

कवि—सं० पु० [सं०] काव्य करने वाला।

कस—क्रि० वि० [देश०] किस तरह। कैसे। क्योंकर।

कसनि—सं० स्त्री० [हिं० कसना] बंधन।

कसमल—सं० पु० [सं० कशमल] पाप। अघ। उ० कसमल होता ते झड़ि पड़िया रहि गया तहाँ ततसार। गो०।

कसाई—सं० पु० [अ० कस्साब] बधिक। घातक। गो घातक। बूचड़। आ० काल।

कसाव—सं० पु० [सं० कषाय] कसैलापन। खिंचाव।

कसावै—क्रि० स० [हिं० कसना] कसाना। बाँधाना।

कसौटी—सं० स्त्री० [हिं०] परख। जाँच।

कहगिल—सं० स्त्री० [फा० काह= घास+गिल+मिट्टी] दीवार जोड़ने का मिट्टी का पतला गारा।

काँचे—दे० काचे।

काँजी—सं० स्त्री० [सं० कञ्जिक] फटे हुए दूध का पानी। उ० दूध फाटि जैसै भइ कांजी कौन स्वाद करि खाइ। सू०

काँटवा—सं० पु० [सं० कंट] किसी किसी पेड़ की डालियां और टहनियों में निकले हुए सुई की तरह के नुकीले अंकुर जो पुष्ट होने पर बहुत कड़े हो जाते है। कंटक।

काँसा—सं० पु० [सं० कांस्य] एक मिश्रित धातु जो तांबे और जस्ते के संयोग से बनती है। आ० तुच्छ।

का—सर्व० [सं० कः] क्या उ० का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे। तु०।

काग—सं० पु० [सं० काक] कौआ। बायस। उ० होय निरामिष कबहु कि कागा। तु०। आ० अविवेक।

कागद कार—सं० पु० [अ० कागज़ +कार=बनाने वाला] कागज़ बनाने वाला।

कागा—दे० काग। आ० गुरूवा।

काचे—वि० [हिं० कच्चा] जो आग में पका न हो। जैसे कच्चा घड़ा।

काज़ी—सं० पु० [अ०] मुसलमानों के धर्म और रीति नीति के अनुसार न्याय की व्यवस्था करने वाला। मुसलमानी शासन के समय का न्यायाध्यक्ष।

काटि—क्रि० स० [सं० कर्तन] नष्ट करना। दूर करना। मिटाना।

काठ—सं० पु० [सं० काष्ठ] पेड़ का कोई स्थूल अंग जो आधार से अलग हो गया हो। लकड़ी।

काठ के घोरा—सं० पु० लकड़ी का घोड़ा। आ० विषय।

काठा—दे० काठ। आ० शरीर।

काढु—क्रि० स० [सं० कर्षण] निकालना। बटोरना। उ०तव मथि काढि लिए नवनीता तु०

कातत—क्रि० स० [सं० कर्तन, प्रा० कत्तन] रुई से सूत बनाना। रुई को ऐंएठ वा बट कर तागा बनाना। चरखा चलाना। आ० कर्म करना।

कातल—दे० कातत। कातने की वर्तमान कालिक क्रिया।

कान—सं० पु० [सं० कर्ण] वह इन्द्रिय जिस से शब्द का ज्ञान होता है। तराजू का पसंगा। बदला। सं० स्त्री० कानि। लोक लज्जा। मर्य्यादा।

कानि—दे० कान।

कापर—सं० पु० [सं० कर्पट=वस्त्र] कपड़ा। उ० काढहु कोरे कापर अरु काढौ घी की मौन। सू०। आ० शरीर

काम—सं० पु० [सं०] कामना। इच्छा। मनोरथ। मैथुन की इच्छा। चार पदार्थों में से एक।

कामरि—सं० स्त्री० [सं० कम्बल] मोटे ऊन के धागों से बनाया गया एक प्रकार का ओढ़ने का बस्त्र। कमली। उ० सूर दास काली कामरि पर चढ़त न दूजो रंग। सू०। आ० शरीर।

कामिनि—दे० कामिनी

कामिनी—सं० स्त्री० [सं०] स्त्री। सुन्दरी। आ० माया।

काया—सं० स्त्री० [सं० काय] शरीर। तन। देह। उ० राग को न साज न विराग जोग जाग जिय, काया नाहीं छाँड़ि ठाटिबो कुठाट को। तु०

कारकुन—सं० पु० [फा०] किसी के बदले काम करने वाला। प्रबंध कर्ता। कारिन्दा।

कारे—वि० [हि० काला] कृष्ण। स्याह। आ० काले केश वाले युवा पुरुष।

काल—सं० पु० [सं०] समय। वक्त। मृत्यु। आ० निरंजन (मन) कल्पना।

कालबूत—वि० [सं० कृत्रिम] नकली। बनावटी। सं० पु० [फ० कालबूद] कच्चा भराव जिस पर महराब बनाई जाती है। उ० कालबूत दूती विना जुरै न और उपाय। फिर ताके टारे बनै पाके प्रेम लदाय। बि० आ० नाशमान।

काला—वि० [सं० कृष्ण] काजल या कोयले के रंग का। कृष्ण स्याह।

कासी—सं० स्त्री० [सं० काशी] काशी नगरी। आ० शरीर

किंचित—वि० [सं०] कुछ। थोड़ा। अल्प।

कितेब—सं० स्त्री० [अ० किताब] पुस्तक। ग्रन्थ।

कियारी—सं० स्त्री० [सं० केदार] खेत का एक भाग। खेतों व बागीचों में थोड़े थोड़े अंतर पर दो पतली मेंड़ों के बीच की भूमि,

जिस में बीज व पौधे लगाए जाते हैं। क्यारी। सिंचाई के लिए बनाये गए खेतों के छोटे टुकड़े। उ० महा वृष्टि भइ फूटि कियारी। तु०

किरतम—सं० पु० [सं० कृत्रिम] बनावटी। नकली।

किरमि—सं० पु० [सं० कृमि] कीड़ा। आ० ईर्ष्या। द्वेष।

किलोल—सं० पु० [सं० कल्लोल] क्रीड़ा। आमोद प्रमोद। केलि। उ० विचित्र विहंग अलि जलज ज्यों, सुखमा करत कलोल। तु०।

किसान—सं० पु० [प्रा०] कृषि व खेती करने वाला। खेतिहर। उ० कृषी निरावहिं चतुर किसाना। तु०। आ० कर्मी जीव

कीट—सं० पु० [सं०] रेंगने या उड़ने वाला क्षुद्र जन्तु। कीड़ा। मकोड़ा।

कीर—सं० पु० [सं०] शुक। सुग्गा। तोता। व्याध।

कीला—दे० कीली

कीली—सं० स्त्री० [हिं० कील] कील। खूँटी। मेख। बिल्ली। दे० प० ख।

कीव—सं० पु० [सं० कृतम्] किया। करना।

कुंजड़ों—सं० पु० [सं० कुज+डा (प्रत्य)] एक जाति जो तरकारी बोती और बेचती है। आ० अविवेकी।

कुंजल—सं० पु० [सं०] हाथी। आ० ज्ञान

कुंड—सं० पु० [सं०] गडढा। आ० गर्भस्थान।

कुंडल—सं० पु० [सं०] मंडल।

कुंभ—सं० पु० [सं०] मिट्टी का घड़ा। घट। कलश।

कुंभरा—दे० कुम्हार।

कुंभारा—दे० कुम्हार।

कुभिलाई—क्रि० अ० [सं० कु+म्लान] मुरझाना। कांति का मलीन पड़ना। प्रफुल्लता रहित होना। उ० सुनि राजा अति अप्रिय बानी, हृदय कंप मुख दुति कुम्हिलानी। तु०

कुकरि—सं० स्त्री० [सं० कुकुरी] कुतिया। आ० माया।

कुकुरी—सं० स्त्री० [सं० कुक्कुरी] कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा जो कात कर तकले पर से उतारा जाता है। अंटी।

कुकुही—सं० स्त्री० [सं० कुक्कुम] बनमुर्गी।

कुचाली—सं० पु० [हिं० कुचाल] दुष्टता। बदमाशी।

कुटिल—सं० पु० [सं०] कपट। छल।

कुटुम—सं० पु० [सं० कुटुम्ब] परिवार। कुनबा। खानदान। वंश।

कुढंगी—वि० [हिं० कुढंग] वेढंगी। टेढ़ी मेढ़ी।

कुतुबा—सं० पु० [फा०] लिखी हुई चीज। पुस्तक। कुरान।

कुदरति—सं० स्त्री० [अ० कुदरत] प्रकृति। माया। ईश्वरी शक्ति।

कुबुजा—सं० पु० [सं० कुब्ज] कुबड़ा मनुष्य। आ० अविवेक।

कुबुधि—वि० [सं० कुबुद्धि] जिस की बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो। दुर्बुद्धि। मूर्ख।

कुमारग—सं० पु० [सं० कुमार्ग] बुरामार्ग। बुरीराह। उ० रे तिय चोर कुमारग गामी। तु०

कुम्हार—सं० पु० [सं० कुम्भकार] मिट्टी के बर्तन बनाने वाला। मिट्टी के बर्तन बनाने वाली एक जाति। कुम्हार। आ० ब्रह्मा। मन। अज्ञानी जीव।

कुम्हिलानी—दे० कुंभिलाई

कुरंगी—वि० [सं० कु + हिं० रंग] बुरे लक्षण वाला।

कुरंगे—सं० पु० [सं० कु + हिं० रंग] बुरे लक्षण। खराब रंग।

कुरिया—सं० स्त्री० [देश०] मकान। घर। महल।

कुल—सं० पु० [सं०] वंश। घराना। खानदान। जाति। समूह। झुंड।

कुलाल—दे० कुम्हार।

कुलाला—दे० कुम्हार।

कुलीन—वि० [सं०] उत्तम कुल में उत्पन्न। अच्छे घराने का। पवित्र। शुद्ध। उ० गंग जो निरमल नीर कुलीना। जा०।

कुसंभ—सं० पु० [सं० कुसुंभ] कुसुम। केसर। कुमकुम। अग्नि शिखा।

कुहतु—क्रि० स० [सं० कु + हनन= मारना] मारना। बुरी तरह से मारना। उ० आपु ब्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग। तुलसी जौं मृग मन मरै परै प्रेम पर दाग। तु०

कुहिया—सं० पु० [देश०] घातक। मारने वाला।

कूकुर—सं० पु० [सं० कुक्कुर] कुत्ता। श्वान। आ० अज्ञानी।

कूच सं० पु० [तु०] प्रस्थान। रवानगी।

कूट—सं० पु० [सं०] हास्य। व्यंग। निंदा।

कूप—दे० कूवाँ।

कूर—वि० [सं० क्रूर] दुष्ट। बुरा। कुमार्गी। मूर्ख।

कूरा—सं० पु० [सं० कूट] जमीन पर पड़ी हुई गर्द। खर पत्ते आदि निकम्मी चीजें। कूड़ा करकट। आ० विकार।

कूवा—सं० पु० [सं० कूप] कुआँ। इनारा। कूप। गड्ढा। कुंड। आ० गर्भवास। नरक।

कृमि—सं० पु० [सं०] क्षुद्रकीट। छोटा कीड़ा।

केंचुलि—सं० स्त्री० [सं० कंचक] सर्प आदि प्राणियों के शरीर पर का झिल्ली दार चमड़ा जो हर साल गिर जाता है।

केंचुवा—सं० पु० [सं० किञ्चिलिक] सूत के आकार का एक बरसाती कीड़ा।

केतिक—वि० [सं० कति + एक] कितना। किस कदर। संख्या वाचक शब्द।

केर—अव्य० [सं० कृत] सम्बन्ध सूचक अव्यय। अवधी भाषा में यह क, की, के विभक्तियों के स्थान में आता है। उ० छमहु चूक अन जानत केरी। तु०

केरा—सं० पु० [सं० कदल] एक पेड़ जिसके पत्ते गज़ डेढ़ गज़ लम्बे और हाथ भर चौड़े होते हैं। इस पेड़ में डालियाँ नहीं होती हैं। केला। आ० सात्वकी।

केरि—दे० केर।

केलि—सं० स्त्री० [सं०] क्रीड़ा। खेल। विहार। हंसी। मज़ाक।

केवट—सं० पु० [सं० कैवर्त्त] मल्लाह। कर्णधार। मांझी। नाव खेने वाला। उ० केवट राम रजायसु पावा। तु०। आ० यमराज।

केस—सं० पु० [सं० केश] सिर के बाल।

केसो—सं० पु० [सं० केशव] विष्णु का एक नाम।

केहरि—सं० पु० [सं० केसरी] सिंह। शेर। आ० जीव। ज्ञान।

केहु—सर्व० [हिं० के] कोई।

कैंडा—सं० पु० [सं० काड़=एक प्रकार का वर्गमाप] किसी वस्तु के विस्तार आदि नापने का पैमाना।

कैक—वि० [प्रा० कइ+एक] कितने एक। कितनों।

कोख—सं० पु० [सं० कुक्षि] उदर। पेट।

कोखिया—दे० कोख। आ० अंतःकरण।

कोट—सं० पु० [सं०] दुर्ग। गढ़। किला। आ० शरीर।

कोटिक—वि० [सं० कोटि+क] अमित। अनगिनत। बहुतअधिक। करोड़ों।

कोठरी—सं० स्त्री० [हिं०] वह छोटा स्थान जो चारों ओर दीवारों व दरवाजों आदि से घिरा और ऊपर से छाया हुआ हो। छोटा कमरा। तंग कोठा। आ० शरीर।

कोठा—सं० पु० [सं० कोष्ठक] शरीर या मस्तिष्क का कोई भीतरी भाग।

कोठी—सं० स्त्री० [हिं० कोठा] बड़ा पक्का मकान। हवेली। आ० शरीर।

कोड़—सं० पु० [देश०] कार्य। काम। काज।

कोड़ै—क्रि० स० [सं० कुंड=खंड़ित एक] खेत गोड़ना। खेत की मिट्टी को कुछ गहराई तक खोद कर उलट देना।

कोतवलिया—सं० स्त्री० [देश०] रक्षा। रखवाली। आ० गुरुपन

कोदइत—सं० पु० [देश०] कोदो दरने की चक्की। मु० कोदो दलना=निकृष्ट या तुच्छ काम करना। आ० लौकिक सुख।

कोरिया—दे० कोरी। आ० आत्मा। जीव।

कोरी—वि० [सं० कोटि] सौलाख। करोड़। सं० पु० [हिं०] हिन्दुओं की एक जाति जो सादे और मोटे कपड़े बुनती है। हिन्दू जुलाहा। आ० जीव। वि० [सं० केवल] साफ।

कोलाहल—सं० पु० [सं०] बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट। शोर। हल्ला।

कोल्हू—सं० पु० [हिं०] तेल पेरने का यंत्र जो डमरू के आकार का और बहुत बड़ा होता है।

कोहू—सं० पु० [सं० क्रोध] गुस्सा। क्रोध

कौतुक—सं० पु० [सं०] आश्चर्य। आनन्द। प्रसन्नता।

क्रितिया—वि० [सं० कृत्रिम] काल्पनिक। बनावटी।

क्रीड़ा—सं० स्त्री० [सं०] कल्लोल। केलि। आमोद। प्रमोद।

ख

खंदा—क्रि० अ० [प्रा० खंत] खाना। भक्षण करना। उ० खंतु पियंतु कि जीव जई। प्रा० दो०

खंदे—सं० पु० [अ० खंदक] गडढा। खंदक।

खंधिया—क्रि० स० [हिं० खनना] खोदना। नष्ट करना।

खंधे—दे० खंधिया।

खंभ—सं० पु० [सं० स्तम्भ] पत्थर व लकड़ी का मोटा खंभा जिस के आधार पर छप्पर या छत बनाई जाती है। खंभा। स्तम्भ। आधार।

खंभे—दे० खंभ।

खग—सं० पु० [सं०] पक्षी। चिड़िया। आ० मन।

खजूर—सं० पु० [हिं०] एक वृक्ष विशेष जो बहुत ऊँचा होता है उसके तने में शाखाएँ नहीं होती हैं।

खट—वि० [सं० षट] छः। एक संख्या वाचक शब्द।

खटोला—सं० पु० [हिं०] छोटी खाट या चारपाई। आ० अर्थी।

खतमा—सं० पु० [अ० खुतबा] प्रशंसा। तारीफ।

खताना—क्रि० अ० [हिं० खुटाना] समाप्त होना । खतम होना । बुझ जाना ।

खदेरा—क्रि० स० [हिं० खेदना] हटाना । दूर करना ।

खध—वि० [सं० खाद्य] खाने योग्य । भोज्य । भक्ष्य । आ० शुभ कर्म

खन—सं० पु० [सं० क्षण] क्षण । लमहा ।

खना—दे० खन ।

खपै—क्रि० अ० [सं० क्षेपन] नष्ट होना ।

खप्पर—सं० पु० [सं० खर्पर] भिक्षा पात्र । आ० खोपड़ी ।

खर—सं० पु० [सं०] गदहा । गधा । आ० अज्ञानी । मूर्ख । वि० [सं० खर=तीक्ष्ण] अच्छा । बढ़िया ।

खरग—सं० पु० [सं० खड्ग]तलवार।

खरसान—सं० स्त्री० [हिं० खर+सान] एक प्रकार की सान जो अधिक तीक्ष्ण होती है । इस पर तलवार उतारी जाती है । शाण । सान ।

खरा—वि० [सं०] असली । अच्छा । बढ़िया ।

खरी—सं० स्त्री० [सं० खलि] तेल निकाल लेने पर तेलहन की बची हुई सीठी

खलक—दे० आलम ।

खलकन—दे० आलम ।

खवासी—सं० पु० [हिं० खवास+ई (प्रत्य०)] खिदमतगारी । चाकरी । नौकरी उ० उग्रसेन की करत खवासी । वि० सा०

खसम—सं० पु० [अ०] पति । स्वामी । उ० जियत खसम किन भस्म रमायो । सूर । आ० ईश्वर । सद्गुरु । जीव ।

खसै—क्रि० अ० [सं० खसना] अपने स्थान से हटना । खसकना । गिरना । उ० खसी माल मूरति मुसकानी ।—तु०

खांखरि—वि० [हिं० खांखर] जिसमें बहुत छेद हों । आ० खोपड़ी । शरीर

खांगि—क्रि० अ० [सं० खंज] चलने में असमर्थ होना । छीजना । असमर्थ होना ।

खांच—सं० पु० [हिं० खाचना] पतली टहनी आदि का बना बड़ा टोकरा । खाँची ।—आ० तृष्णा ।

खांड—सं० स्त्री० [सं० खंड] बिना साफ की हुई चीनी । कच्ची शक्कर आ० गुरुपद ।

खाइसि—क्रि० स० [सं० खादन] विषैले कीड़ों के काटने के अर्थ में केवल काला (सांप) के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है । जैसे तुझे काला खाय ।

खाई—सं० स्त्री० [सं० परिखा] वह नहर जो किसी गाँव, किले, बाग़ या महल आदि की रक्षा के लिए खोदी गई हो। खंदक। [देश०] वह ऊँची मेंड़ जो बाग़ या फुलवारी की रक्षा के लिए बनाई जाती है।

खाटा—सं० स्त्री० [सं० खट्वा] चारपाई। खटिया। आ० वृति।

खानि—सं० स्त्री० [सं० खनि] उत्पत्ति स्थान। योनिया जैसे अण्डज, पिण्डज, स्वेदज तथा उषमज।

खानी—सं० स्त्री० [सं० खानि] वह जगह जिस में या जहाँ कोई वस्तु अधिकता से हो। खजाना।

खारी—सं० स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षार लवण [नमक] जो दवा के काम में आता है। आ० विषय, विकार।

खिझुवा—सं० पु० [सं० खिद्यते] खीझने वाला।

खिरपै—क्रि० स० [प्रा० खेरइ] किट किटाना। पीसना। मु० दाँत पीसना। दाँत किट किटाना।

खीझि—दे० खीझै।

खीझै—क्रि० अ० [हिं०] दुखी और क्रुद्ध होना। झुंझलाना।

खीन—वि० [सं० क्षीण] क्षीण। कमजोर। नाश।

खीलि—क्रि० स० [सं० कीलन] गाड़ना। जड़ना।

खीसै—वि० [सं० क्ष्क=वध, नाश] नष्ट। बरबाद। उ० सती मरन सुनि संभु गण, लगे करन मख खीस। तु०

खुटुकार—सं० स्त्री० [हिं० लगन] किसी ओर ध्यान लगाने की क्रिया। लौ। लगन [हिं० खुटका] चिंता।

खुदी—सं० पु० [फ०] अहंभाव। अहंकार। अभिमान। घमंड। शेखी।

खुन्न—सं० पु० [फा०] सखुन। बात। कथन।

खुमारी—सं० स्त्री० [अ० खुमार] मद। नशा। उ० जब जान्यो व्रज देव मुरारी। उतरि गई तब गर्व खुमारी। सू०

खुर—सं० पु० [सं०] सींग वाले चौपायों के पैर की कड़ी टाप जो बीच में फटी होती है। गाय, भैंस आदि सींग वाले चौपायों के पैर का निचला छोर जो खड़े होने पर पृथ्वी पर पड़ता है।

खुर-खुर—सं० पु० [हिं०] घर घर शब्द। खुर खुर शब्द।

खुराय—वि० [देश०] सावधान। सचेत। सतर्क।

खूँटा—सं० पु० [सं० क्षोड] बड़ी मेख। पशुओं के बांधने के लिए खड़ी गड़ी हुई लकड़ी। आ० आशा। ध्येय

खूटी—सं० स्त्री०] हिं० खूँटा] छोटी मेख । [हिं० खूंडा] खूंडी, एक पतली लकड़ी जिसके सिरे पर काँच का एक चुल्ला फोड़ कर बांध देते हैं। इसी चुल्ले में रेशम के महीन तागे डालकर झुलाके ताना तनते हैं।

खेड़ा—सं० पु० [सं० खेट] छोटा गांव । श्रा० शरीर ।

खेतू—सं० पु० [हिं० खेत=समर भूमि] लड़ाई । संग्राम । समर । उ० इति हौं खेत खिलाइ खिलाई । तोहि अबहि का करौं बड़ाई । जा०

खेदे—क्रि० स० [हिं० खेदना] भगाना । खदेरना । खेदना ।

खेवैं—क्रि० स० [हिं० खेना] नाव चलाना । नाव के डाड़ों को चलाना । श्रा० तारना । उपदेश करना ।

खेहा—सं० स्त्री० [प्रा० खेह] धूल । राख । खाक । मिट्टी । उ० कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा । जा०

खोदाई—दे० खोदाय ।

खोज—सं० स्त्री० [हिं०] पैर आदि का निशान । [हिं० खोजना] तलाश करना । पता लगाना । ढूढ़ना ।

खोजिन—दे० खोजना ।

खोजिया—दे० खोजना ।

खोट—सं० स्त्री० [सं०] दोष । ऐब । बुरा । उ० सूरदास पारस के परसे मिटत लोह की खोट । सूर

खोटा—वि० [सं० क्षुद्र=खोंट=खोंड़ा] जिस में कोई ऐब हो । दूषित । बुरा ।

खोटि—दे० खोटा ।

खोटी—दे० खोटा ।

खोदाय—सं० पु० [फा० खुदा] ईश्वर ।

खोर—सं० स्त्री० [सं०] संकरी गली । कूचा । बस्तियों की तंग गली । चौपायों को चारा देने की नाँद ।

खोरा—सं० पु० [हिं०] कटोरा । बेला । श्रा० बुद्धि ।

खोरि—सं० स्त्री० [सं० खोट या खोर] ऐब । दोष । नुक़्स । उ० कहों पुकारि खोरि मोहि नाहीं । तु०

खोरी—दे० खोरि ।

खोलरी—सं० पु० [सं० खोल] उपरी आवरण ।

खोवा—सं० पु० [हिं०] खोया । मावा । श्रा० सद्उपदेश । ज्ञान ।

गाँठि—सं० स्त्री० [हिं० गाँठ, सं० ग्रन्थि] गांठ

गाँठि जोरि—क्रि०स० [हिं० गाँठ+ जोड़ना] गंठ बंधन करना। विवाह करना।

गाँठी—दे० गाँठि। आ० हृदय।

गांथल—क्रि० स० [सं० ग्रंथन] गूथना। गूधना गांठना। जोड़ना। उ० गुरु के बचन फूल हिय गाथे। जा०

गाँव—सं० पु० [सं० ग्राम] खेड़ा। छोटी बस्ती। आ० शरीर। स्थान। स्थिति स्थान।

गाँस—सं० स्त्री० [हिं०] गाँठ। हथियार वा कांटा की नोक। बैर। द्वेष। मनो मालिन्य। उ० मानीराम अधिक जननी ते जननिहु गंस न गही। तु०

गाइत्री—सं० स्त्री० [सं०] गाइत्री नाम की एक स्त्री। एक पवित्र मंत्र का नाम जिसे सावित्री भी कहते हैं। दे० प० ख

गाइन—दे० गौ। आ० इडा आदि नाडियाँ। संत।

गाई—दे० गौ

गाऊँ—दे० गांव

गाजै—क्रि० अ० [सं० गर्जन] गरजना। शब्द करना। उ० सैन मेघ अस दुहु दिसि गाजा। जा०

गाड़—सं० स्त्री० [सं० गर्त] गड़हा। गड़्ढा। उ० रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ ऊपर धूरि उड़ाइ। तु०

गाड़र—सं० स्त्री० [सं० गड्ठरी वा गड्ठरिका] भेंड़।

गाड़ि सं० पु० गाड़ना। धंसान। मु० जैसे खूँटा गाड़ना।

गाढ़ो—क्रि० वि० [हिं० गाढा] दृढ़ता से। जोर से। भलीभांति।

गात—सं० पु० [सं० गात्र] शरीर। अंग।

गाय—दे० गौ। आ० सतोगुण। सात्विकी वृति। माया।

गायन—सं० पु० [सं० गायक] गीत। राग। [हिं० गाना] गीत गाना।

गारि—सं० स्त्री० [सं० गालि] गाली। दुर्बचन।

गारी—सं० स्त्री० [हिं० गाली] कलंक सूचक आरोप। आ० सम्बन्ध।

गारु—दे० गरुआ

गारुड़ि—सं० पु० [सं० गारुड़ी] मंत्र से सांप का विष उतारने वाला। सांप झाड़ने वाला। उ० चले सब गारुड़ी पछिताय। नेकहू नहिं मंत्र लागत समुझि काहू न जाइ। सूर। आ० गुरू

गाहक—सं० पु० [सं० ग्राहक] लेनेवाला। खरीदने वाला। खरीदार। आ० जिज्ञासु।

खूटी—सं० स्त्री०] हिं० खूँटा] छोटी मेख । [हिं० खूंडा] खूंडी, एक पतली लकड़ी जिसके सिरे पर काँच का एक चुल्ला फोड़ कर बांध देते हैं । इसी चुल्ले में रेशम के महीन तागे डालकर जुलाहे ताना तनते हैं ।

खेड़ा—सं० पु० [सं० खेट] छोटा गांव । आ० शरीर ।

खेतू—सं० पु० [हिं० खेत=समर भूमि] लड़ाई । संग्राम । समर । उ० हति हौं खेत खिलाइ खिलाई । तोहि अबहि का करौं बड़ाई । जा०

खेदे—क्रि० स० [हिं० खेदना] भगाना । खदेरना । खेदना ।

खेवैं—क्रि० स० [हिं० खेना] नाव चलाना । नाव के डाड़ों को चलाना । आ० तारना । उपदेश करना ।

खेहा—सं० स्त्री० [प्रा० खेह] धूल । राख । खाक । मिट्टी । उ० कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा । जा०

खोदाई—दे० खोदाय ।

खोज—सं० स्त्री० [हिं०] पैर आदि का निशान । [हिं० खोजना] तलाश करना । पता लगाना । ढूढ़ना ।

खोजिन—दे० खोजना ।

खोजिया—दे० खोजना ।

खोट—सं० स्त्री० [सं०] दोष । ऐब । बुरा । उ० सूरदास पारस के परसे मिटत लोह की खोट । सूर

खोटा—वि० [सं० क्षुद्र=खोट= खोड़ा] जिस में कोई ऐब हो । दूषित । बुरा ।

खोटि—दे० खोटा ।

खोटी—दे० खोटा ।

खोदाय—सं० पु० [फा० खुदा] ईश्वर ।

खोर—सं० स्त्री० [सं०] संकरी गली । कूचा । बस्तियों की तंग गली । चौपायों को चारा देने की नाँद ।

खोरा—सं० पु० [हिं०] कटोरा । बेला । आ० बुद्धि ।

खोरि—सं० स्त्री० [सं० खोट या खोर] ऐब । दोष । नुक़्स । उ० कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं । तु०

खोरी—दे० खोरि ।

खोलरी—सं० पु० [सं० खोल] ऊपरी आवरण ।

खोवा—सं० पु० [हिं०] खोया । मावा । आ० सद्उपदेश । ज्ञान ।

गाँठि—सं० स्त्री० [हिं० गाँठ, सं० ग्रन्थि] गांठ

गाँठि जोरि—क्रि०स० [हिं० गाँठ+ जोड़ना] गंठ बंधन करना। विवाह करना।

गाँठी—दे० गाँठि। आ० हृदय।

गांथल—क्रि० स० [सं० ग्रंथन] गूथना। गूधना गांठना। जोड़ना। उ० गुरु के बचन फूल हिय गाथे। जा०

गाँव—सं० पु० [सं० ग्राम] खेड़ा। छोटी बस्ती। आ० शरीर। स्थान। स्थिति स्थान।

गाँस—सं० स्त्री० [हिं०] गाँठ। हथियार वा कांटा की नोक। बैर। द्वेष। मनो मालिन्य। उ० मानीराम अधिक जननी ते जननिहु गांस न गही। तु०

गाइत्री—सं० स्त्री० [सं०] गाइत्री नाम की एक स्त्री। एक पवित्र मंत्र का नाम जिसे सावित्री भी कहते हैं। दे० प० ख

गाइन—दे० गौ। आ० इडा आदि नाडियाँ। संत।

गाई—दे० गौ

गाऊँ—दे० गांव

गाजै—क्रि० अ० [सं० गर्जन] गरजना। शब्द करना। उ० सैन मेघ अस दुहु दिसि गाजा। जा०

गाड़—सं० स्त्री० [सं० गर्त] गड़हा। गड़ढ़ा। उ० रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ ऊपर धूरि उड़ाइ। तु०

गाड़र—सं० स्त्री० [सं० गड्डरी वा गड्डरिका] भेंड़।

गाड़ि—सं० पु० गाड़ना। धंसान। मु० जैसे खूँटा गाड़ना।

गाढ़ो—क्रि० वि० [हिं० गाढा] दृढ़ता से। जोर से। भलीभांति।

गात—सं० पु० [सं० गात्र] शरीर। अंग।

गाय—दे० गौ। आ० सतोगुण। सात्विकी वृति। माया।

गायन—सं० पु० [सं० गायक] गीत। राग। [हिं० गाना] गीत गाना।

गारि—सं० स्त्री० [सं० गालि] गाली। दुर्बचन।

गारी—सं० स्त्री० [हिं० गाली] कलंक सूचक आरोप। आ० सम्बन्ध।

गारु—दे० गरुआ

गारुड़ि—सं० पु० [सं० गारुड़ी] मंत्र से सांप का विष उतारने वाला। सांप झाड़ने वाला। उ० चले सब गारुड़ी पछिताय। नेकहू नहिं मंत्र लागत समुझि काहू न जाइ। सूर। आ० गुरू

गाहक—सं० पु० [सं० ग्राहक] लेनेवाला। खरीदने वाला। खरीदार। आ० जिज्ञासु।

गिरदान—सं० पु० [हिं० गिरगिट] गिरगिट।

गिरही—सं० पु० [सं० गृहस्थ] घरबार वाला। बाल बच्चों वाला।

गुजारा— क्रि० स० [फा०] पेश करना। मु० नमाज गुजारना= ईश्वर की प्रार्थना करना।

गुनवंती—वि० [सं० गुणवती] गुणवाली। जिसमें कुछ गुण हों।

गुनातीत—वि० [सं०] गुणों से परे। जो गुणों के प्रभाव से अलग हो। त्रिगुणात्मिका से परे। निर्लित सं० पु० परमेश्वर।

गुनिया—सं० पु० [हिं० गुणी] वह व्यक्ति जिसमें गुण हो। गुणवान। आ० सद्गुणी। विचारवान।

गुनी—वि० [सं० गुणिन] गुण वाला। निपुण। दे० गुनिया

गुने—क्रि० अ० [सं० गुणन] विचार करना। मनन करना। समझाना।

गुप्ता—दे० गुपत

गुपत—वि० [सं० गुप्त] छिपा हुआ। पोशीदा। गोप्य।

गुफा—सं० स्त्री० [सं० गुहा] कंदरा। गुहा। आ० गगन गुफा।

गुमान—सं० पु० [फा०] अनुमान। क्यास। घमंड। अहंकार। गर्व।

गुमाना—दे० गुमान

गुमानी—वि० [हिं० गुमान] घमंडी। अहंकारी। ग़रूर करने वाला।

गुर—सं० पु० [देश०] गुरखा। गुनरखा। मसतूल। नाव का वह मसतूल जिसमें गोन (रस्सी) बांध कर उसे खींचते हैं। आ० मेरु दंड। वि० [सं० गुरु] आचार्य। किसी मंत्र का उपदेष्टा।

गुवारा—सं० पु० [सं० गो+पाल] अहीर। एक जाति विशेष जो गौ पालन का कार्य करती है।

गुष्टि—दे० गोस्टि।

गूंगा—वि० [फा० गुंग] जो बोल न सके। मूक। आ० जीव। मन।

गूदा—सं० पु० [सं० गुप्त] भेजा। मग्ज। खोपड़ी का सार।

गूनागून—वि० [सं० प्रगुप्त] अत्यंत गुप्त। प्रच्छन्न। लापता।

गे—सम्बोधन हे। मिथला प्रान्त में स्त्रियाँ परस्पर वार्तालाप में गे सम्बोधन करती हैं।

गेह—दे० ग्रीह।

गैया—दे० गौ

गोड़—सं० पु० [हिं०] पैरा। पाँव

गोड़ा—सं० पु० [हिं० गोडा=पैर] पाया। घोड़िया।

गोड़े—दे० गोड़ा आ० मन, बुद्धि

वह स्थान जहाँ नाव पर चढ़ कर या पानी में हल कर लोग पार उतरते हैं।

घाटी—सं० स्त्री० [हिं० घाट] पर्वतों के बीच का सकरा मार्ग।

घात—सं० पु० [सं०] दाँव। औसर। समय। मौका।

घाम - सं० पु० [सं० घर्म] धूप। सुर्य्यातप। उ० घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलि पुंज। त्रि०। आ० त्रयताप।

घामे—दे० घाम

घालि—क्रि० स० [हिं० घालना] डालना। रखना। बिगाड़ना। गड़बड़ करना। नाश करना या कर डालना।

घाले—दे० घालि

घालौं—दे० घालि

घाव—सं० पु० [सं० घात] शरीर पर का वह स्थान जो कट या चिर गया हो। क्षत। जख्म। आ० यातना।

घास—सं० स्त्री० [सं०] पृथ्वी पर उगने वाले छोटे छोटे उद्भिज।

घिनाय—क्रि० अ० [हिं० घिन] घिनाना। घृणा करना। नफरत करना।

घीन—सं० पु० [सं घृण्य] जुगुप्सित। निंदित। घृणित। त्याज्य।

घीव—सं० पु० [सं० घृत] दूधका चिकनासार जिस में से जल का अंश तपा कर निकाल दिया गया हो। घृत। आ० जीवात्मा। मोक्ष।

घुँघुची—सं० स्त्री० [सं० गुँजा] गुँजा। एक प्रकार के छोटे छोटे लाल व सफ़ेद बीज। इन का सारा अंग लाल या सफेद होता है केवल मुँह काला होता है। मु० घुँघची भर=थोड़ा।

घुन—सं० पु० [सं० घुण] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो अनाज और लकड़ी में लगता है। सुरचा। मु० घुनलगना=भीतर ही भीतर किसी वस्तु का क्षीण होना। आ० काल। कल्पना। विकार।

घूर—सं० पु० [हिं० कूरा] कूड़े करकट का ढेर। वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता है। कूड़े का ढेर। आ० संसार।

घूरि घूरि—क्रि० वि० [सं० घूर्ण] घूम घूम कर। लौट लौट कर। फेरा दे दे कर।

घेर—क्रि० स० [हिं० घेरना] चारों ओर हो जाना। चारों ओर से छेकना।

घैल—सं० पु० [सं० घट] घड़ा। कलसा। गगरा। आ० तृष्णा।

घौंटि—क्रि० स० छुरा या उस्तरा फेर कर शरीर के बाल दूर करना। मूँडना।

गिरदान—सं० पु० [हिं० गिरगिट] गिरगिट।

गिरही—सं० पु० [सं० गृहस्थ] घरबार वाला। बाल बच्चों वाला।

गुज़ारा— क्रि० स० [फा०] पेश करना। मु० नमाज गुजारना= ईश्वर की प्रार्थना करना।

गुनवंती—वि० [सं० गुणवती] गुणवाली। जिसमें कुछ गुण हों।

गुनातीत—वि० [सं०] गुणों से परे। जो गुणों के प्रभाव से अलग हो। त्रिगुणात्मिका से परे। निर्लित सं० पु० परमेश्वर।

गुनिया—सं० पु० [हिं० गुणी] वह व्यक्ति जिसमें गुण हो। गुणवान। आ० सद्गुणी। विचारवान।

गुनी—वि० [सं० गुणिन] गुण वाला। निपुण। दे० गुनिया

गुने—क्रि० अ० [सं० गुणन] विचार करना। मनन करना। समझाना।

गुप्ता—दे० गुपत

गुपत—वि० [सं० गुप्त] छिपा हुआ। पोशीदा। गोप्य।

गुफा—सं० स्त्री० [सं० गुहा] कंदरा। गुहा। आ० गगन गुफा।

गुमान—सं० पु० [फा०] अनुमान। क्यास। घमंड। अहंकार। गर्व।

गुमाना—दे० गुमान

गुमानी—वि० [हिं० गुमान] घमंडी। अहंकारी। ग़रूर करने वाला।

गुर—सं० पु० [देश०] गुरखा। गुनरखा। मसनूल। नाव का वह मसनूल जिसमें गोन (रस्सी) बांध कर उसे खींचते हैं। आ० मेरु दंड। वि० [सं० गुरु] आचार्य। किसी मंत्र का उपदेष्टा।

गुवारा—सं० पु० [सं० गो+पाल] अहीर। एक जाति विशेष जो गौ पालन का कार्य करती है।

गुष्टि—दे० गोस्टि।

गूंगा—वि० [फा० गुंग] जो बोल न सके। मूक। आ० जीव। मन।

गूदा—सं० पु० [सं० गुप्त] भेजा। मग्ज। खोपड़ी का सार।

गूनागून—वि० [सं० प्रगुप्त] अत्यंत गुप्त। प्रच्छन्न। लापता।

गे—सम्बोधन है। मिथला प्रान्त में स्त्रियाँ परस्पर वार्तालाप में गे सम्बोधन करती हैं।

गेह—दे० ग्रीह।

गैया—दे० गौ

गोड़—सं० पु० [हिं०] पैरा। पाँव

गोड़ा—सं० पु० [हिं० गोडा=पैर] पाया। घोड़िया।

गोड़े—दे० गोड़ा आ० मन, बुद्धि

वह स्थान जहाँ नाव पर चढ़ कर या पानी में हल कर लोग पार उतरते हैं।

घाटी—सं० स्त्री० [हिं० घाट] पर्वतों के बीच का सकरा मार्ग।

घात—सं० पु० [सं०] दाँव। औसर। समय। मौका।

घाम - सं० पु० [सं० घर्म] धूप। सुर्य्यातप। उ० घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलि पुंज। वि०। आ० त्रयताप।

घामे—दे० घाम

घालि—क्रि० स० [हिं० घालना] डालना। रखना। बिगाड़ना। गड़बड़ करना। नाश करना या कर डालना।

घाले—दे० घालि

घालौं—दे० घालि

घाव—सं० पु० [सं० घात] शरीर पर का वह स्थान जो कट या चिर गया हो। क्षत। जख्म। आ० यातना।

घास—सं० स्त्री० [सं०] पृथ्वी पर उगने वाले छोटे छोटे उद्भिज।

घिनाय—क्रि० अ० [हिं० घिन] घिनाना। घृणा करना। नफरत करना।

घीन—सं० पु० [सं घृण्य] जुगुप्सित। निंदित। घृणित। त्याज्य।

घीव—सं० पु० [सं० घृत] दूधका चिकनासार जिस में से जल का अंश तपा कर निकाल दिया गया हो। घृत। आ० जीवात्मा। मोक्ष।

घुँघुची—सं० स्त्री० [सं० गुँजा] गुँजा। एक प्रकार के छोटे छोटे लाल व सफ़ेद बीज। इन का सारा अंग लाल या सफेद होता है केवल मुँह काला होता है। मु० घुँघची भर=थोड़ा।

घुन—सं० पु० [सं० घुण] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो अनाज और लकड़ी में लगता है। मुरचा। मु० घुनलगना=भीतर ही भीतर किसी वस्तु का क्षीण होना। आ० काल। कल्पना। विकार।

घूर—सं० पु० [हिं० कूरा] कूड़े करकट का ढेर। वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता है। कूड़े का ढेर। आ० संसार।

घूरि घूरि—क्रि० वि० [सं० घूर्ण] घूम घूम कर। लौट लौट कर। फेरा दे दे कर।

घेर—क्रि० स० [हिं० घेरना] चारों ओर हो जाना। चारों ओर से छेकना।

घैल—सं० पु० [सं० घट] घड़ा। कलसा। गगरा। आ० तृष्णा।

घोंटि—क्रि० स० छुरा या उस्तरा फेर कर शरीर के बाल दूर करना। मूँडना।

घोर—सं० पु० [हिं० घोड़ा] घोड़ा। उ० घोर मोर घोर। पानी पियें उठि भोर।

घोरा—दे० घोर

घोरि—क्रि० स० [हिं० घोलना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ में किसी वस्तु को हिलाकर मिलाना।

घोरे—दे० घोर [देश० घोल] छांछ। तक्र। मठा। आ० अविवेक। वासना।

च

चंद,चंद्र—सं० पु० [सं० चंद्र] चंद्रमा। आ० इड़ा। जिज्ञासु।

चंदन,चन्दन—सं० पु० [सं०] एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बहुत सुगंधित होती है। आ० जीव। मनुष्य शरीर।

चंद्रबदनि—सं० स्त्री० [सं०] चन्द्रमा जैसी मुख वाली। सुन्दर रूप।

चंदा—सं० पु० [सं० चंद वा चन्द्र] चंद्रमा। उ० ज्यों चकोर चंदा को निरखै इत उत दृष्टि न जाहि। सूर। आ० इड़ा।

चंपा—सं० पु० [सं० चंपक] एक मझोले कद का पेड़ जिसमें हलके पीले रगं के फूल लगते हैं।

चकनाचूर—वि० [हिं० चक=भरपूर+चूर] जिसके टूट फूट कर बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो गये हों। चूर चूर। खंड खंड। चूर्णित।

चकरी—सं० स्त्री० [सं० चक्री] अनाज दलने की एक प्रकार की विशिष्ट चक्की। छोटी चक्की।

चकवै—वि० [सं० चक्रवर्ती] चक्रवर्ती (राजा) असमुद्रांत पृथ्वी का राजा।

चकोर—सं० पु० [सं० चक्रवाक] एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर जो नैपाल, नैनीताल आदि स्थानों में बहुत मिलता है। इसके ऊपर का रंग काला होता है, जिस पर सफेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफेदी लिए होता है, चोंच और आंखें लाल होती हैं। भारत वर्ष में यह प्रसिद्ध है कि यह चन्द्रमा का बड़ा प्रेमी है और उसकी ओर एक टक देखा करता है। यहां तक कि वह आग की चिनगारियों को चंद्रमा की किरनें समझ कर निगल जाता है।

चटाक—क्रि० वि० [सं० चट] चट शब्द करके टूटना। कली का फूट कर खिलना] उ० लगे गुलाब खुशामदी चट चट चुटकी दैन।—विहारी

चढ़त—क्रि० अ० [सं० उच्चलन] नीचे से ऊपर को जाना।

चढ़ावत—क्रि० स० [हिं० चढ़ाना] नीचे से ऊपर ले जाना ।

चतुरा—सं० पु० [हिं० चतुर] चतुर । प्रवीण ।

चतुराई—सं० स्त्री० [सं०] होशियारी । निपुणता । दक्षता ।

चपल—वि० [सं०] चंचल । तेज । फुरतीला । कुछ काल तक एक स्थिति में न रहने वाला ।

चपेरे—क्रि० स० चाँपना । दबाना बसमें करना । आ० शम, दम आदि का प्रयोग करना ।

चबाउ—क्रि० स० [सं० चर्वण] दांतों से कुचलना । उ० बरस पचासक लौं विषय ही में बास कियो तऊ न उदास भयो चबे को चबाइए ।—प्रिय आ० विषय भोगना ।

चमरा गांव—सं० पु० चमड़े का गाँव । आ० शरीर ।

चर—वि० [सं०] आप से आप चलने वाला । जंगम । जैसे चर-जीव, चराचर एक स्थान पर न ठहरने वाला ।

चरई—सं० स्त्री० [सं० चारिका] बड़े तारों के बीच में छोटे पतले तार को बाँधने वाली जगह ।

चरखा—सं० पु० [फा० चर्ख] लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से ऊन, कपास या रेशम आदि को कात कर सूत बनाते हैं । आ० शरीर ।

चरखी—सं० स्त्री० [हिं० चरखा का स्त्री० अल्प०] छोटा चरखा । सूत लपेटने की फिरकी । पतली कमचियों से बना हुआ जुलाहों का एक औजार जिसकी सहायता से कई सूत एक में लपेटे जाते हैं । आ० वेद ।

चरखुला—दे० 'चरखा'

चरचि—क्रि० स० [सं० चर्चन] चरचना । देह में चन्दन आदि लगाना । लेपना ।

चरनन—दे० 'गोड़'

चरा—सं० पु० [फा०] क्यों । वि० चर=अस्थिर] चलायमान ।

चराचित—वि० [सं० चर=चंचल+चित] चंचल चित

चरिंदा—सं० पु० [फा०] चरने-वाला जीव । जैसे गाय, भैंस, बैल आदि पशु । हैवान ।

चरै—क्रि० अ० [सं० चर=चलना] घूमना । फिरना । विचरना उ० जेहि ते विपरीत क्रिया करिये । दुख से सुख मानि सुखी चरिये ।—तु०

चसम—सं० स्त्री० [फा० चश्म] आँख । नेत्र । नयन । लोचन । आ० ज्ञान

चहले—सं० पु० [सं० चिकिल] कीचड़ । पंक । उ० एक भीजे चहले परे बूड़े बहे हजार । —बिहारी । आ० वासना ।

चाँद—दे० चंद

चाँप—क्रि० स० [देश०] चापना। पकड़ना।

चाखुर—सं० स्त्री० [देश०] खेत से घास निकालने की क्रिया। निराई।

चाखें—क्रि० स० [सं० चष] स्वाद लेना। खाना। स्वाद लेते हुए खाना।

चाचर—सं० स्त्री० [सं० चर्चरी] होली में होने वाले खेल तमाशे। होली का स्वांग और हुल्लड़। होली की धमार। हर्ष क्रीड़ा। उ० श्रुति पुरान बुध सम्मत चाचरि चरित मुरारि।—तु०

चाट—क्रि० स० [सं० लेह्य अनु० चट चट=जीभ चलाने का शब्द] किसी चीज को खाने पर स्वाद लेने के लिए जीभ से चाटना।

चाटक—सं० पु० [सं० चेटक] जादू या इन्द्रजाल विद्या। नजर बन्द का तमाशा। कौतुक। उ० कतहू नाद शब्द हो भला। कतहूँ नाटक चेटक कला।— जा०

चात्रिक—सं० पु० [सं० चातक] एक पक्षी जो वर्षा काल में बहुत बोलता है। पपीहा। आ० उपासक।

चारन—सं० पु० [सं० चारण] भाट। वंश की कीर्ति गाने वाले बंदीजन

चारा—सं० पु० [हि०] चिड़ियों, मछलियों या और जीवों के खाने की वस्तु जिसे कटिया में लगाकर मछली फँसाते हैं। आ० विषय।

चाल—दे० 'गौन'

चाव—सं० पु० [हिं० चाह] इच्छा। अभिलाषा। लालसा। अरमान। उ० चित्रकेतु पृथ्वी पतिराव। सुतहित भयो तासु हिय चाव।—जा०

चिऊँटी—सं० स्त्री० [हिं०] [सं० पिपीलिका] एक बहुत छोटा कीड़ा जो मीठा के पास बहुत जाता है। चींटी। आ० मन। वाणी। बुद्धि

चिकनियाँ—वि० [हिं० चिकना] शौकीन। बांका। बनाठना। उ० सूरदास प्रभू वाके बस परि अब हरि भये चिकनियाँ। सूर०। आ० विषयी।

चित—सं० पु० [सं० चित्त] अन्तः करण का एक भेद। अन्तः करण। मन। जी। दिल।

चितेला—सं० पु० [सं० चित्रकार] चितेरा। चित्र बनाने वाला। तसवीर खींचने वाला। मुसौवर। आ० चैतन्य।

चित्र—सं० पु० [सं०] मूर्ति। नकशा। आकार। तसवीर। उ० चित्र लिखित कपि देखि डराती। तु०। आ० शरीर

चित्रकारी—सं० स्त्री० [हिं० चित्र-कार+ई] चित्र विद्या । चित्र बनाने की कला । चित्रकार का काम । कारीगरी ।

चित्रवंत—दे० चितेला आ० आत्मा ।

चित्र बिचत्र—वि० [सं०] रगं बिरंग । कई रंगों का । बेल बूटे दार । नक्काशीदार ।

चिमिक—सं० स्त्री० [सं० चमत्कृत] चमक । प्रकाश । ज्योति । रोशनी ।

चिमिकै—क्रि० अ० [हिं० चमक] चमकना । प्रकाश वा ज्योति से युक्त दिखाई देना । प्रकाशित होना । देदीप्य मान होना । जग मगाना जैसे सूर्य का चमकना ।

चिलकाई—सं० स्त्री० उत्तेजना । उतार चढ़ाव ।

चींथरे—क्रि० स० [सं० चीर्ण] चीथना । टुकड़े टुकड़े होना । फाटना ।

चीता—सं० पु० [सं० चित्रक] बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बड़ा हिंसक पशु । आ० संतोष । विवेक ।

चीर—सं० पु० [सं०] वस्त्र । कपड़ा । उ० लै कै चीर कदंब चढ़े हरि बिनवत हैं वृजनारी ।—सूर

चुंडित—वि० [हिं० चुंडी] चुटिया वाला । जटाधारी ।

चुंबक—सं० पु० [सं० चुंबक] एक प्रकार का पत्थर वा धातु जिसमें लोहा को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है । चुम्बक दो प्रकार का होता है एक प्राकृतिक दूसरा कृत्रिम । आ० गुरू पद । सारशब्द ।

चुकाव—क्रि० अ० [सं० च्युत्क] चुकना । बेबाक होना । अदा होना । आ० मुक्ति ।

चुनते—क्रि० स० [सं० चयन] चुगना । चिड़ियों का चोंच से दाना उठा कर खाना । चोंच से दाना बीनना । उ० उथलहि सीप मोति उतराहीं । चुगहि हंस औ केलि कराहीं ।—जा०

चुनी चुनि—क्रि० स० [सं० चयन] चुनना । बहुतों में से छांट छांट कर अलग करना । आ० सरासार विवेक करना ।

चुभै—क्रि० स० [हिं० चुभना] गड़ना । धंसना । किसी नुकीली वस्तु का दबाव पाकर किसी नरम वस्तु के भीतर घुसना ।

चुवत—क्रि० स० [सं० च्यवन] चूना । टपकना । बूंद बूंद हो कर नीचे गिरना ।

चुवै—दे० चुवत

चुहड़ों—सं० पु० [देश०] चुहड़ा । भंगी या मेहतर । चांडाल । श्वपच । आ० मायासक्त

चूनरी—सं० स्त्री० [हिं०] चुनरी ।

एक प्रकार का लाल रँगा हुआ कपड़ा जिसके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर सफेद बुंदिकियाँ होती हैं। विवाह के अवसर पर कन्या के पहनने की साड़ी। आ० भक्ति।

चूनिया—क्रि० स० [सं० चयन] चुनना। बनाना।

चूर—सं० पु० [सं० चूर्ण] चूर्ण। किसी पदार्थ के बहुत महीन टुकड़े जो उस पदार्थ के कूटने आदि से बनते हैं।

चूल्हा—सं० पु० [सं०] अंगीठी की तरह का मिट्टी या लोहे आदि का बना हुआ पात्र जिसका रूप प्रायः अर्ध चन्द्राकार होता है। जिस पर नीचे आग जलाकर भोजन पकाया जाता है। आ० सकामकर्म।

चूहड़ी—सं० स्त्री० [देश०] भंगी की स्त्री। मेहतरानी। आ० माया।

चेत—सं० पु० [सं० चेतस] चित्त की वृत्ति। चेतना। ज्ञान। बोध। आ० चेतन।

चेतत—दे० 'चेतना'

चेतना क्रि० अ० [सं०] संज्ञा में होना। होश में आना। सावधान होना। परमार्थ में लग जाना। उ० यह तन हरि हर खेत, तरुणी हरनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत यह अध चरा बचाय ले।—तु०

चेतवनि—क्रि० स० [हिं० चित-वना का प्रे०] दिखाना। तकाना।

चेताचा—दे० 'चेतना'

चेतिन—क्रि० अ० [हिं० चेतना] विचार करना।

चेतु—दे० चेति

चेरी सं० स्त्री० [हिं०] दासी।

चोंच—सं० स्त्री० [सं० चंचु] पक्षियों के मुँह का अगला भाग जिसके द्वारा कोई चीज उठाते और खाते हैं। टोंट। आ० मन, वृत्ति।

चोख सं० स्त्री० [हिं० चोखा] तेजी। फुरती। वेग। उ० एक जो मयाने भर माटी जल आने लै चढ़ाए धाम धाम फेंट बाधि ठाढ़े चोख सों।—हनुमान।

चोखा—वि० [सं० चोक्ष] जिसकी धार तेज हो। धारदार। उत्तम

चोट—सं० स्त्री० [सं० चुट=काटना] किसी हिंसक पशु का आक्रमण। किसी जानवर का काटने वा खाने के लिए झपटना। उ० यह जानवर आदमियों पर बहुत कम चोट करता है।

चोरवा—सं० पु० [हिं० चोर] जो छिप कर पराई वस्तु का अपहरण करे। चोर। तस्कर। आ० मन

चोलना—सं० पु० [सं० चोल] एक प्रकार का बहुत लंबा और ढीला ढाला कुरता जो प्रायः साधु फकीर और मुल्ला आदि पहनते हैं। आ० शरीर।

चोला—सं० पु० [सं० चोल] चोला। शरीर। बदन। जिस्म। तन।

चोवा—सं०पु०[हिं०चोआ]एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गंध द्रव्यों को एक साथ मिलाकर गरमी की सहायता से उनका रस टपकाने से तैयार होता है।

चौक—सं० पु० [प्रा० चउक] ब्याह आदि मंगल अवसरों पर आंगन में या और किसी समतल भूमि पर आटे अबीर आदि की रेखाओं से बना हुआ चौखूटा क्षेत्र जिसमें कई प्रकार के खाने और चित्र बने रहते हैं। इस क्षेत्र के ऊपर देवताओं का पूजन होता है।

चौके—दे० चौक

चौगोड़ा—वि० [हिं० चौ+गोड़=पैर] चार पैर वाला सं० पु० खरहा। खरगोश। चौपाया। पशु०। आ० साधन चतुष्टय।

चौधरी—सं० पु० [हिं०] किसी जाति, समाज या मंडली का मुखिया।

चौपरि—क्रि० स० [सं० चतुष्पट] कपड़े आदि की तह लगाना। चौपरतना। सं० स्त्री० चौपड़, चौसर नामक खेल। आ० चार अवस्था। अंतः करण चतुष्टय।

चौमास—सं० पु० [सं० चतुर्मास] वर्षाकाल के चार महीने। असाढ़, सावन, भादौं, कुंवार। आ० चारों युग।

चौरे—वि० [हिं०] चकला। चौड़ा। सं० पु० मैदान।

चौसठि—सं० पु० [देश०] गृध।

छ

छकि—क्रि० अ० [सं० चकन= तृप्तहोना] तृप्त होना।

छठी—सं० स्त्री० [सं० षष्ठी] छठी। छठवीं। आ० चेतन। आत्मा।

छतरिया—सं० स्त्री० [सं० छत्र] छाता। छतरी। आ० शांति प्रद ज्ञान। सतसंग विचार।

छत्र धनी—सं० पु० [सं० छत्र धारिन] राजा। छत्रधारी। छत्र धारण करने वाला। छत्र का अधिपति।

छत्रपति—दे०छत्रधनी आ०आत्म देव।

छप्पर—सं० पु० [हिं०] बांस या लकड़ी की फट्टियों और फूस आदि की बनी हुई छाजन जो मकान के ऊपर छाई जाती है। छान। आ० आत्मा।

छल—सं० पु० [सं०] धोखा। कपट।

छली—वि० [सं० छलिन] छल करने वाला। कपटी। धोखे बाज।

छाँछ—सं० स्त्री० [सं० छच्छिका] मथा हुआ दही। वह पनीला दही या दूध जिसका घी वा मक्खन

निकाल लिया गया हो। मठा। मही। सार हीन तक्र। वह मठ जो घी या मक्खन तपाने पर नीचे बैठ जाता है। उ० ताहि अहीर की छोकरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं। आ० व्यवहारिक ज्ञान।

छाँछरी—सं० स्त्री० [सं० मत्सरी] मछली। आ० चित्त वृत्ति

छांड़ि—दे० छोंड़ि

छाँह—सं० स्त्री० [सं० छाया] छाया। वह स्थान जहां आड़ व रोक के कारण धूप न पड़ती हो। उ० हरखित भये नंदलाल बैठि तरू छांह में।—सूर

छागर—सं० स्त्री० [सं० छागल] बकरा। आ० गुरुवा।

छाजै—क्रि० अ० [हिं० छाजना] छाजना। शोभादेना। अच्छा लगना।

छाया—दे० 'छांह'

छार, छारा—सं० पु० [सं० क्षार] भस्म। राख। खाक। उ० तुरतहि काम भयो जरि छारा।—तु०

छिउलै—सं० पु० [देश०] [सं० पलाश] छिउल। ढाक। टेसू। आ० परलोक

छिछिला—वि० [सं० उच्छल] जो गहरी न हो। उथला।

छिटकाय—क्रि०स० [हिं० छिटकाना] छिटकना। पृथक करना। अलग कर देना। इधर उधर डालना।

छिन—सं० पु० [सं० क्षण] काल या समय का एक बहुत छोटा भाग। क्षण। लमहा।

छिनाय—क्रि० स० [हिं० छीनना] छीनना। हरण करना।

छिपाई—क्रि० स० [सं० क्षिप] छिपाना। आवरण या ओट में करना। ढाकना। गुप्त रखना।

छिपिया—सं० पु० [हिं० छीप] छीट छापने वाला। कपड़े पर बेल बूटे बनाने वाला। आ० भक्त।

छिमा—सं० स्त्री० [सं० क्षमा] सहिष्णुता। सहन शीलता। किसी के द्वारा पहुचाये गए कष्ट को सह लेना उसके प्रतिकार या दंड की इच्छा न करना।

छिरियाई—क्रि० स० [देश०] छिरियाना। छिटकना। फैलना। छितरना।

छिलकत—क्रि० अ० [हिं० छींटा+करना] छिड़कना। पानी या किसी और द्रव पदार्थ को इस प्रकार फेंकना कि उसके महीन महीन छींटे फैल कर इधर उधर पड़ें। न्योछावर करना।

छीजत—दे० 'छीजै'

छीजै—क्रि० अ० [हिं० छीजना] क्षीण होना। घटना। कम होना। उ० पावडिया पग फिसलै अवधू लाहै छीजत काया।—गो०

छीन, छीना—वि० [सं० क्षीण] पतला। कृश। शिथिल। मंद। मलिन।

छीर—सं० पु० [सं० क्षीर] दूध। पय। आ० सत्य।

छुपाई—दे० 'छिपाई'

छूंछा—वि० [सं० तुच्छ] छूछा। खाली। रीता। रिक्त। निष्फल। उ० सो सब कौन बिना तव पूछे। ताते परे मनोरथ छूँछे।—तु०

छूटि—सं० स्त्री० [हिं० छूटना] छुटकारा। मुक्ति। क्रि० स० अलग होना।

छूरी—सं० स्त्री० [हिं०] लोहे का एक धार दार हथियार जिसमें बेंट लगा रहता है।

छेकल—क्रि० स० [सं० छद= ढांकना+करण] स्थान घेरना। जगह लेना।

छेम—सं० पु० [सं० क्षेम] प्राप्त वस्तु की रक्षा। कल्याण। कुशल। सुख। आनंद। मुक्ति।

छेरी—सं० स्त्री० [सं० छेलिका] बकरी। अजा। आ० माया।

छेव—सं० पु० [हिं०] नाश। मृत्यु।

छेवा—सं० पु० [हिं० छेव] प्रहार। बध। नाश।

छोड़ि—क्रि० स० [सं० छोरण] किसी पकड़ी हुई वस्तु को पृथक करना। त्यागना। छोड़ना।

छोर—सं० स्त्री० [हिं०] अंत। किनारा

छोरि, छोरी—क्रि० स० [सं. छोरण= परित्याग] छोरना। बंधन आदि अलग करना। उलझन या फंसाव आदि दूर करना। बंधन से मुक्त करना। छोड़ना। त्याग देना।

छोलना सं० पु० [हिं०] छोलनी। लोहे का एक औजार जिससे सिकलीगर हथियारों का मुरचा खुरचते हैं। आ० सद्उपदेश।

ज

जंगम—सं० पु० [सं०] दाक्षिणात्य लिंगायत शैव संप्रदाय के गुरु। ये दो प्रकार के होते हैं विरक्त और गृहस्थ। विरक्त सिर पर जटा रखते हैं और कौपीन पहनते हैं। गले में शिव लिंग धारण करना इनके लिए आवश्यक होता है।

जंतर—स० पु० [सं० यंत्र] यंत्र। वीणा। बीन नाम का बाजा। विशेष दे० जंत्र

जंत्र—सं० पु० [सं० यंत्र] बाजा। वाद्य। बाजों के द्वारा होने वाला संगीत। बीन। आ० शरीर

जंत्री—सं० पु० [सं० यंत्रिन] बाजा बजाने वाला। उ० सूरदास स्वामी के चलिबे ज्यों यंत्री बिन यंत्र सकात। आ० जीव। चैतन्य।

जंबुक—सं० पु० [सं०] शृंगाल। गीदड़। आ० अज्ञान।

जंमुक—दे० जंबुक

जगदीस—सं० पु० [सं०] परमेश्वर। विष्णु। मालिक।

जगनाथ—दे० जगन्नाथ

जगन्नाथ—सं० पु० [सं०] बंगाल के दक्षिण उड़ीसा के अंतर्गत समुद्र के किनारे का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो हिन्दुओं के चारों धामों के अंतर्गत है। इसे पुरी, जगदीश पुरी और जगन्नाथ पुरी भी कहते हैं।

जगमगै—क्रि० अ० [अनु०] जगमगाना। किसी वस्तु का स्वयं या किसी का प्रकाश पड़ने पर चमकना। झलकना। दमकना।

जग्य—सं० पु० [सं० यज्ञ] प्राचीन भारतीय आर्यों का एक प्रसिद्ध वैदिक कृत्य जिसमें हवन और पूजन हुआ करता था। मख। याग।

जटाधर—सं० पु० [सं०] जटाधारी। शिव। महादेव। एक बुद्ध का नाम। वि० जो जटा रखे हो। जिस के जटा हो।

जठर अगिनि—सं० स्त्री० [सं० जठराग्नि] पेट की वह गरमी या अग्नि जिसमें अन्न पचता है।

जड़—सं० पु० [सं०] जड़ भरत। वि० अनजान। अनभिज्ञ। अज्ञानी। मूरख।

जतइत—सं० पु० [सं० यंत्र] जांता। पत्थर की बड़ी चक्की। आ० पारलौकिक।

जतन—सं० पु० [सं० यत्न] उपाय। कोशिश। तदबीर।

जती—सं० पु० [सं० यती] वह जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करली हो और जो संसार से विरक्त हो कर मोक्ष प्राप्त का उद्योग करता हो। सन्यासी। त्यागी। योगी।

जन—सं० पु० [सं०] लोक। लोग। मनुष्य।

जनक—सं० पु० [सं०] मिथिलाधिप। राजा जनक। जन्म दाता। उत्पादक। पिता।

जननी—सं० स्त्री० [सं०] माता।

जना—सं० पु० [सं०] उत्पति। लोक। लोग। क्रि० स० [सं० जन] पैदा करना। उत्पन्न करना। आ० पुरुष।

जनि—अव्य० मत। नहीं। न। निषेधार्थक शब्द।

जनी—सं० स्त्री० [सं० जन] स्त्री। उत्पन्न करने वाली। माता। आ० माया।

जने—दे० जन

जबह—सं० पु० [अ०] रेत रेत कर गला काटना। हलाल। गलाकाट कर प्राण लेने की क्रिया। हिंसा।

जम—सं० पु० [सं० यम] मृत्यु। यमराज। काल। संयोग होना।

जमरा—दे० जम

जर—सं० पु० [हिं० जड़] वृक्षों

और पौधों का वह भाग जो जमीन के अंदर रहता है और जिस से उनका पालन पोषण होता है। मूल।

जरत—क्रि० अ० [सं० ज्वलन] ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन संतप्त होना। मोह ममता आदि में जलना।

जरद—वि० [फा० जर्द] पीला। जर्द। पीत। आ० रज।

जरल—सं० स्त्री० [हिं० जलना] बहुत अधिक ईर्ष्या।

जरा—सं० स्त्री० [सं०] बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

जरि—क्रि० अ० [सं० ज्वलन] जलना। दग्ध होना। बलना। दे० जर

जरै—दे० जरि

जल—सं० पु० [सं०] पानी। आ० आत्मा। वाणी।

जल कूकुही—सं० स्त्री० [हिं० कूई] जल में होने वाला कमल की तरह का एक पौधा, जो रात में फूलता है। इसके फूल सफेद होते हैं। पर कहीं कहीं लाल और पीले फूल भी होते हैं। आ० शरीर।

जलहल—वि० [हिं० जल+हर] जलमय। जल से भरा हुआ। सं० पु० [हिं० जलधर] जलाशय। आ० निजानंद।

जवन—सं० पु० [सं० यवन] मुसलमान।

जहंडाइया—क्रि० अ० [हिं० जहडाना] जहड़ाना। हानि उठाना। ठगा जाना। धोखे में पड़ना।

जहँड़े—दे० जहंडाइया

जहर—सं० स्त्री० [फा० जह्र] जहर। विष। गरल। आ० विषय, विकार।

जहिया—क्रि० वि० [सं० यद्+हिया] जब। जिस समय। उ० भुज बल विश्व जितब तुम जहिया। धरि हैं विष्णु मनुज तन तहिया।—तु०

जाँचो—क्रि० स० [सं० याचन] जांचना। किसी विषय के सत्यासत्य की परिक्षा करना। मांगना। याचना।

जाग—सं० पु० [सं० याज्ञवल्क्य] याज्ञवल्क्य। दे० प० ख

जागत—दे० जाग्रित

जाग्रित—वि० [सं०] वह अवस्था जिसमें सब बातों का परिज्ञान हो। आ० चैतन्य।

जात—सं० स्त्री० [अ०] शरीर। देह। काया। दे० जाति

जाति—सं० स्त्री० [सं०] कोटि। वर्ग। प्रकार। हिन्दुओं में मनुष्य समाज का वह विभाग जो पहिले पहल कार्यानुसार किया गया था, पर पीछे स्वभावतः जन्मानुसार हो गया।

जाती—दे० जाति

जाद्व—सं० पु० [सं० यादव] यादव । यदुवंशी । एक जाति विशेष । अहीर ।

जादवराय—सं० पु० [सं० यादव-राय] श्री कृष्ण । उ० गई मारन पूतना कुच काल कूट लगाइ । मातु की गति दई ताहि कृपाल जादव राइ ।—तु०

जादो—दे० जादव

जान—वि० [सं० ज्ञान] सुजान । जानकार । ज्ञानवान । चतुर । उ० जान सिरोमनि हौ हनुमान सदा जन के मन बास तिहारो ।—तु०

जाने—दे० जान

जामन—क्रि० अ० [सं० जन्म+ना (प्रत्य०)] उगना । उपजना । उत्पन्न होना । जमना ।

जामनी—सं० स्त्री० [सं० यामिनी] रात । आ० अविद्या ।

जायफर—सं० पु० [सं० जातीफल] जायफल । अखरोट की तरह का, पर उससे छोटा (प्रायः जामुन के बराबर) एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाले में होता है । आ० सद्‌उपदेश ।

जाया—क्रि० स० [सं० जनन] जाना । उत्पन्न करना । जन्म देना । पैदा करना ।

जार—सं० पु० [सं०] वह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहित स्त्री का प्रेम व अनुचित सम्बंध हो । उपपति । पराई स्त्री से प्रेम करने वाला । यार । आ० देवी । देवता ।

जारो—क्रि० स० [हिं० जलाना] जारना । नष्ट करना ।

जाल—सं० पु० [सं०] किसी प्रकार के तार या सूत आदि का बहुत दूर दूर पर बुना हुआ पट जिसका व्यवहार मछलियों और चिड़ियों के पकड़ने के लिए होता है । समूह ।

जिभ्या—दे० जीभि ।

जिमी—सं० स्त्री० [फ०] जमीन । पृथ्वी । आ० अंतः करण ।

जियत—वि० [सं० जीवित] जीता हुआ । जिंदा । चैतन्य ।

जियरा—सं० पु० [हिं० जीव] जीव ।

जियाजंतु—सं० पु० [सं० जीवजन्तु] जानवर । प्राणी । कीड़ा मकोड़ा ।

जीभि—सं० स्त्री० [सं० जिह्वा] जीभ । जबान । रसना ।

जीव—सं० पु० [सं०] प्राणियों का चेतन तत्व । जीवात्मा । आत्मा । प्राण । जीवन तत्व । जान । प्राणी । जीवधारी । इंद्रिय विशिष्ट शरीरी । जानदार ।

जीवो—दे० जीव ।

जुआरि—सं० पु० [हिं० जुआ] जुआरी । जुआ खेलने वाला ।

जुग जुग—सं० पु० [सं० युग] चिरकाल। बहुत दिनों की अवधि अनंत काल। सदैव।

जुगन जुग—दे० जुग जुग।

जुक्ति—सं० स्त्री० [सं० युक्ति] उचित विचार। उपाय। ढंग। तरकीब।

जुड़ाय—क्रि० अ० [हिं० जूड़] जुड़ाना। ठंडा होना। शीतल होना। शांत होना। संतुष्ट होना। प्रसन्न होना।

जुरि—क्रि० स० [हिं० जुटना] जुड़ना। किसी कार्य में योग देने के लिए उपस्थित होना।

जेंवावै—क्रि० स० [हिं० जेवन] जेंवाना। खिलाना। भोजन कराना।

जे—सर्व० [सं० ये] जो का बहु बचन।

जेठ—सं० पु० [सं० ज्येष्ठ] पति का बड़ा भाई। भसुर। वि० अग्रज। बड़ा। आ० मन।

जेठानी—सं० स्त्री० [हिं० जेठ] जेठ की स्त्री। आ० कुमति।

ज़ेर—वि० [फा० ज़ेर] परास्त। पराजित।

जेवरि—सं० स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी। आ० कर्मकाण्ड।

जैनि, जैनी—सं० पु० [हिं० जैन] जैनी। जैन मतावलम्बी। जैन धर्म का अनुयायी।

जो पै—अव्य० [हिं० जो+पर] यदि। अगर। यद्यपि। अगरचे। उ० जो पै रहनि राम से नाहीं।—तु०

जोइया—दे० जोय

जोग—सं० पु० [सं० योग] तप और ध्यान वैराग्य।

जोगिया—वि० [हिं० जोगी + इया (प्रत्य०)] जोगी सम्बधी। योगी का जैसे जोगिया भेस। सं० पु० [सं० योगी] वह जो योग करता हो। योगी। आ० जीवात्मा।

जोति—सं० स्त्री० [सं० ज्योतिस्] ज्योति। प्रकाश। उजाला। द्युति अग्नि शिखा। लपट। लौ। अग्नि। आ० ब्रह्म ज्योति। शब्द।

जोनि—सं० स्त्री० [सं० योनि] आकर। खानि। प्राणियों का विभाग। जाति या वर्ग।

जोबन—सं० पु० [सं० यौवन] युवा होने का भाव। यौवन। उ० धन जोबन अभिमान अल्प जल कहँ कूर आपुनी बोरौ।—सूर। आ० नर तन।

जोय—सं० स्त्री० [सं० जाया] जोरू। स्त्री। पत्नी। आ० माया। क्रि० स० [हिं० जोहना] देखना। अवलोकन करना। खोजना। ढूँढना।

जोर—सं० पु० [फा०] बल। शक्ति। ताकत। मु० जोर करना= बल प्रयोग करना। ताकत लगाना।

जोरिन—क्रि० स० [सं० जुड़= बंधना] जोड़ना, किसी टूटी हुई

वस्तु के टुकड़ों को मिला कर जोड़ना। एकत्र करना। इकट्ठा करना।

जोरी—दे० जोरिन

जोलहा—सं० पु० [फा० जौलाह] जुलाहा। मुसलमान कपड़े बनाने वाला। तन्तुवाय। तंतुकार। आ० जीव। मन।

जोलाहिन—सं० स्त्री० जुलाह की स्त्री। आ० अविद्या।

जोहारि—क्रि० अ० [हिं० जोहारना] प्रणाम या नमस्कार आदि करना। अभिवादन करना। पुकारना।

जोहत—क्रि० स० [सं० जुषण=सेवन] जोहना। देखना। अवलोकन करना। ताकना। खोजना। प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। राह देखना।

जोहै—दे० जोहत

जौंरा—क्रि० वि० [फा० जवार] निकट। समीप। आसपास। सं० पु० यमरा। यमराज।

जौ—अव्य० [सं० यद्] यदि। अगर। उ० जौ लरिका कछु अनुचित करहीं। तु०। क्रि० वि० जब।

झ

झंखत—क्रि० अ० [हिं० खीजना] बहुत दुखी होकर पछताना और कुढ़ना। झीखना।

झक—सं० स्त्री० [अनु०] धुन। सनक। लहर। मौजा।

झकझोरी—सं० पु० [अनु०] झोंका। झटका। धक्का। उ० काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।—सूर

झखमारि—सं० स्त्री० [हिं० झीखना] झीखने का भाव या क्रिया। मु० झखमारना=विवश होना। लाचार होना।

झखमारी—दे० झखमारि

झगरा—सं० पु० [हिं० झकझक से अनु०] झगड़ा। विवाद। लड़ाई बखेड़ा। कलह। हुज्जत। तकरार।

झटका—सं० पु० [अनु०] पशुवध का वह प्रहार जिसमें पशु हथियार के एक ही आघात में काट डाला जाता है।

झपनी—सं० स्त्री० [देश० झंपनी] ढंकना। वह जिसने कोई चीज ढकी जाय। पिटारी। आ० आवरण।

झरी झरि—क्रि० अ० [सं० क्षरण] बूंद बूंद बहना।

झरोखे—सं० पु० [अनु० झर झर=वायु बहने का शब्द + गौख] झरोखा। दीवारों आदि में बनी

हुई झंझरीदार छोटी खिड़की या मोखा। गवाक्ष। गौखा। आ० इन्द्री द्वार।

झाँई—सं० स्त्री० [सं० छाया] झांई। परछाई। प्रतिबिम्ब। छाया। आभा। झलक। उ० कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महँ प्रकट भूमि की झांई।—तु०

झाँकि—सं० स्त्री० [हिं० झांकना] दर्शन। अवलोकन। झांकने या देखने की क्रिया अथवा भाव।

झारि, झारो—वि० [सं० सर्व०] झार। एक मात्र। निपट। केवल। सम्पूर्ण। कुल। सब। समस्त। समूह। झुँड।

झारू—सं० पु० [हिं० झाड़ना] झाड़ना। बोहारी। सोहनी। बढ़नी। मु० झाडू देना=बोहारना। साफ करना।

झालि—सं० स्त्री० [हिं० झड़] पानी की झड़ी। अंधेरा। आ० अज्ञान।

झिझि—वि० [आ० झीण] झीना। सूक्ष्म।

झिलमिल—सं० स्त्री० [अनु०] झिलमिल। कांपती हुई रोशनी। हिलता हुआ प्रकाश। झलमलाता हुआ उजाला। ज्योति। अस्थिरता। रह रह कर प्रकाश के घटने बढ़ने की क्रिया। आ० ज्योति।

झीझी—वि० [प्रा० झीण] मंद। धीमा। झीना।

झीन—दे० झीना

झीना—वि० [सं० क्षीण] बहुत महीन। बारीक। पतला। दुबला दुर्बल।

झूर—वि० [हिं० धूर या चूर] सूखा। खुश्क। शुष्क। क्रि० वि० [हिं०] व्यर्थ। निष्प्रयोजन।

झूरी—दे० झूर

झूल—क्रि० स० [हिं० झूलना] झूलना। किसी शाख या ऊँची वस्तु के सहारे आगे पीछे आना जाना।

झेलिक झेला—क्रि० अ० [देश०] ठेला ठेली। खींचतान।

झोला—सं० पु० [हिं०] धक्का। झटका। आघात। झोंका। बाधा। आ० दुख आपति।

झोली—सं० स्त्री० [सं० ज्वाल या झाला] राख। भस्म।

ट

टकसार—सं० स्त्री० [हिं० टकसाल] ऊँची या प्रमाणिक वस्तु। असली चीज़। निर्दोष वस्तु। आ० आत्म स्वरूप। चैतन्य। निजरूप।

टकसारा—दे० टकसार

टिपके—सं० पु० [हिं० टिपकना] टिपका। बूंद। कतरा। बिंदु आ० अहंकार।

टीका—सं० पु० [सं० तिलक] राज सिंहासन या गद्दी पर बैठने का कृत्य। राज तिलक।

टीड़ी—सं० स्त्री० [सं० टिट्टिभ] एक जाति का टिड्डा या उड़ने वाला कीड़ा जो बड़ा भारी दल या समूह बांध कर चलता है। और मार्ग के पेड़ पौधों तथा फसल को बड़ी हानि पहुँचाता है। आ० मनोरथ।

टेक—सं० स्त्री० [हिं०] चित्त में टिका या बैठा हुआ संकल्प। मन में ठानी हुई बात। दृढ़ संकल्प। अड़। हठ। जिद। उ० सोइ गोसाइ जो बिधि गति छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तु०

टेकहु—क्रि० स० [हिं० टेक] सहारा लेना। आश्रय बनाना।

टेढ़ो—क्रि० वि० [हिं० टेढ़ा] घमंडी। मु० टेढ़े टेढ़े चलना=इतराना। घमंड करना।

टोकरी—सं० स्त्री० [हिं० टोकरा] छोटा टोकरा। छोटा डला। डलिया। झांपी। आ० अन्तःकरण।

टोंटी—सं० स्त्री० [सं० तुंड] पानी आदि ढालने के लिए झारी लोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है। तुलतुली। उ० बदत गोरख सुनौ रे अवधू करवै होय से निकरै टोंटी।—गो०

टोवहु—क्रि० स० [हिं० टोना] हाथ से टटोलना। छूना। छूकर मालूम करना। [हिं० टोह] ढूंढना। खोजना।

ठ

ठग—सं० पु० [हिं०] धोखा देकर लोगों का धन हरण करने वाला। छली। धूर्त। धोखे बाज। आ० बञ्चक गुरू। मन।

ठगत—क्रि० स० [हिं० ठगना] ठगना। धोखा देकर माल लूटना। धोखा देना। छल करना।

ठगौरी—सं० स्त्री० [हिं० ठग+औरी] ठग विद्या। ठगों की माया। मोहिनी। सुधि बुद्धि भुलाने वाली शक्ति।

ठवर—दे० ठाँव

ठहर—दे० ठौर

ठहराय—क्रि० अ० [सं० स्थैर्य+ना (प्रत्य०)] रुकना। टिकना।

ठाँव—सं० पु० [सं० स्थान] स्थान। जगह। ठिकाना। उ० निडर नीच निगुन निर्धन कह जग दूसरो न ठाकुर ठाँव।—तु०

ठाकुर—सं० पु० [हिं०] ईश्वर। परमेश्वर। भगवान। पूज्य व्यक्ति। किसी प्रदेश का अधिकारी।

नायक। सरदार। अधिष्ठाता। मालिक स्वामी। श्रा० मन। जीव। यमराज।

ठाठ—सं० पु० [हिं० ठाट] समूह। झुंड।

ठाना—क्रि० स० [सं० अनुष्ठान] स्थापित करना।

ठानी—दे० ठाना

ठामा—दे० ठाँव

ठिक—वि० [हिं० ठिकाना] ठीक। यथार्थ। सच। उपयुक्त। अच्छा।

ठिकों—सं० पु० [हिं० टुकड़ा] ठीकरा। सिटकी।

ठूंठा—वि० [हिं०] बिना हाथ का जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठैऊ—दे० ठौर

ठोंकत—क्रि० स० [हिं० ठोंकना] प्रहार करना। आघात करना।

ठौर—सं० पु० [हिं०] स्थान। जगह। ठिकाना।

ठौरा—दे० ठौर

ड

डंक—सं० पु० [सं० ढका=दुंदुभि शब्द] डंका। एक प्रकार का बाजा जो नांद के आकार का तांबे या लोहे के बरतनों पर चमड़ा मढ़ कर बनाया जाता है।

डँड—सं० पु० [सं० दंड] घाटा। हानि। भय। बाहु दंड। बांह। दंड। डांड। कर। उ० गोमती करत सनान दान तहाँ ब्राह्मण मांगै। दरवाजै होय अटक छाप लेताँ डंड लागै।—बालकराम

डंकिरा—क्रि० अ० [अनु०] डकारना। चिल्लाना। दहाड़ मारना। जोर से रोना या चिल्लाना।

डसि—क्रि० स० [सं० दंशन] डसना। किसी ऐसे कीड़े का दांत से काटना जिसके दांत में विष हो। सांप आदि जहरीले कीड़ों का काटना। डंक मारना।

डस्यो—दे० डसि

डाँग—सं० पु० [सं० टंक=पहाड़ का किनारा और चोटी] पहाड़ी। बन जंगल। घना बन खंड। उ० चित्रविचित्र विविध मृग डोलत डांगर डांग।—तु०। श्रा० शरीर। सं० पु० [हिं० डागा] मोटे बांस का डंडा। लट्ठ।

डांगर—सं० पु० [देश०] चौपाया। पशु।

डांड—सं० पु० [स० दंड] दंड। कर। जबरदस्ती वसूल किया हुआ धन।

डांडि—सं० पु० [देश०] कमर।

डाँडी—सं० स्त्री० [हिं० डाँड] हिंडोले में लगी हुई वे चार सीधी

लकड़ियाँ या डोरी की लड़ें जिनसे लगी हुई बैठने की पटरी लटकती रहती है।

डांडिया—क्रि० स० [हिं० डांडना] दंडित होना।

डांडे—क्रि० अ० [सं० दंड] दंडित किए।

डांवाडोल—सं० पु० [हिं० डोलना] अस्थिर। एक स्थित पर न रहने वाला। चंचल। विचलित।

डाइनि—सं० पु० [सं० डाकिनी] टोनहाई। वह स्त्री जिसकी दृष्टि आदि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं। आ० माया।

डाजा—क्रि० अ० [देश०] क्रोधित होना। जलना।

डाढ़ा—सं० स्त्री० [प्रा० डड्ढ] आग। उ० राम कृपा कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लागि अति डाढ़ा।-तु०

डाबर—सं० पु० [सं० दभ्र=समुद्र या झील] गड़ही। पोखरी तलैया। गड्ढा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है। उ० सुर सर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंस कुमारी।-तु०। आ० शरीर

डार सं० स्त्री० [हिं०] डाल। शाखा। आ० शरीर के अवयव।

डारि, डारिन—दे० डारे।

डारी—दे० डार। आ० तमोगुण प्रधान माया।

डारे—क्रि०स०[हिं०डारना] डालना। छोड़ना। फेंकना। त्यागना।

डाही—वि० [हिं० दाहना] जली हुई। जलाई हुई।

डाहै—दे० डाहो

डाहो—क्रि० स० [सं० दाहन] डाहना जलाना। दाहना।

डिंगर—सं० पु० [सं०] दास। गुलाम।

डिंभ—सं० पु० [सं० डिम्ब] बच्चा। पाखंड। दंभ। उ० सकल वियापी सुयं सिंभ, सब गुण रहिता नाहि डिंभ।—गरीबदास। आ० जीव।

डिगा—क्रि० स० [हिं० डिगना] हिलना। स्थान छोड़ना।

डेरा—सं० पु० [देश०] टिकान। ठहराव। पड़ाव।

डेरी—वि० [देश०] बायाँ।

डेहरि—सं० स्त्री० [हिं० दह] डेहरि, अन्न रखने के लिए कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन। आ० अन्तः करण। मन।

डोरिया—सं० पु० [हिं० डोरा] सूत। तागा। धागा। डोरा। करधनी।

डोरे—क्रि० वि० [हिं० डोर] साथ पकड़े हुए। बस में करना।

डोलावत—क्रि० स० [हिं० डोलाना] हिलाना। घुमाना।

डोलै—क्रि० स० [सं० दोलन] डोलना। चलना। फिरना।

ढ

ढहि—क्रि० अ० [सं० ध्वंसन] ढहना। गिर पड़ना। ध्वस्त होना नष्ट होना। मिट जाना।

ढाँकनो—क्रि० स० [सं० ढक= छिपाना] ओट में करना। छिपाना।

ढाक—सं० पु० [सं० आसाढक= पलास] पलास का पेड़। छीउल

ढाढ़स—सं० पु० [सं० दृढ़] दृढ़ता। साहस। हिम्मत।

ढारिया, ढारो—क्रि० स० [सं० धार, हिं० ढार+ना] ढारना। गिराना। ऊपर से छोड़ना। डालना। जैसे पासा ढारना।

ढिंगर—दे० डिंगर

ढिग—क्रि० वि० [सं० दिक=ओर] समीप। पास। निकट। सं० स्त्री० तट। किनारा। छोर। उ० सेतु बंध ढिग चढ़ि रघुराई।–तु०।

ढिग ढिग—दे० तीर तीर

ढीठ—वि० [सं० धृष्ट] बिना डर का। निडर। साहसी। हिम्मतवर।

ढील—सं० स्त्री० [हिं० ढीला] ढीला। जो कसा और तना न हो। शिथिल।

ढुकि ढुकि—क्रि०अ० [देश०ढुकना] झुकि झुकि।

ढेंढ़ी—सं० स्त्री० [हिं० ढेंढ़ा] कपास आदि का डोडा।

ढेंकुली—सं० स्त्री० [हिं० ढेकली] ढेंकी। सिंचाई के लिए कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र। उ० तुलसी वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत। मम तन ढारें ढेंकुली, सींचैं आपन खेत। तु०

ढेला—सं० पु० [सं० दल हिं० डला] ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि का टुकड़ा।

ढोटा—सं० पु० [देश०] पुत्र। बेटा। उ० देखत छोट खोट नृप ढोटा।-तु०। आ० इन्द्रियाँ। विषय।

ढोर—सं० पु० [हिं० ढुरना] गाय। बैल, भैंस, आदि पशु। चौपाया। मवेशी। उ० जब हरि मधुबन को जु सिधारे धीरज धरत न ढोर। सूर

ढोल—सं० पु० [सं०] एक प्रकार का बाजा जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है।

ढोला—सं० पु० [हिं० ढोल] पिंड। शरीर। देह।

त

तंग—सं० पु० [देश०] तंगी। बोरा। आ० ज्ञान।

तकत—क्रि० अ० [हिं०] ताकना। देखना। निहारना। अवलोकन करना। उ० कहि हरि दास जान ठाकुर बिहारी तकत न भोर पाट। ह० । सोचना। विचारना।

तकाय—क्रि० स० [हिं० तकना का प्रे०] दिखाना।

तकावत—दे० तकाय

तकि—दे० तकत

तकुला—सं० पु० [देश०] देखने योग्य। आ० परमपद।

तट—सं० पु० [सं०] क्षेत्र। खेत। तीर किनारा। कूल।

ततबीर—सं० स्त्री० [अ०] उपाय। युक्ति। तरकीब। यत्न। उ० कोउ गई जल पैठि तरूनो और ठाढी तीर। तिनहि लई बोलाई राधा करत सुख तदबीर।—सूर।

ततु—दे० तत्तु।

तत्त—दे० तत्तु।

तत्तपल्लौ—सं० पु० [सं० तत्व+पल्लव] पल्लव रूपी तत्व। प्राकृतिक तत्व।

तत्तु—सं० पु० [सं०] पंच महाभूत (पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश) सार वस्तु। सारांश। परमात्मा। ब्रह्म। वास्तविक स्थिति। यथार्थता। वास्तविकता। असलियत। जगत का मूल कारण।

तन—सं० पु० [सं० तनु] शरीर। देह। गात। जिस्म।

तनकी—वि० [सं० तनु = अल्प] छोटी। उ० यहाँ हुती मेरी तनिक मडैया को नृप आइ छरयौ।—सूर।

तपै—क्रि० अ० [सं० तपन्] तपना। तप्त होना। संतप्त होना। उ० निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपई अवाँ इव उर अधिकाई। तु०

तमारि—सं० स्त्री० [हिं०] तंवार। सिर में चक्कर आना। घुमड। आ० अज्ञान।

तमासा—सं० पु० [फ० तमाशा] वह दृश्य जिसके देखने से मनोरंजन प्राप्त हो। अद्भुत व्यापार। अनोखी बात।

तरंग—सं० स्त्री० [सं०] पानी की वह उछाल जो हवा लगने के कारण होती है। लहर। मौज। हिलोर।

तर—क्रि० वि० [सं० तले] तले। नीचे। उ० कौने विरिछ तर भीजत होइहैं रामलषन दूनौ भाई।—गीत

तरकस बंदा—सं० पु० [फा० तरकश बंदा] तरकस बाँधने वाला।

तरन—सं० पु० [सं० तरण] बेड़ा। निस्तार। उद्धार।

तरब—क्रि० स० [सं० तरण] पार

होना। उ० कैसे तरब इम जाय। यारी। क्रि० अ० भवसागर के पार होना। मुक्त होना। सद्गति प्राप्त करना।

तराजू—सं० स्त्री० [फ०] तौलने का यंत्र। तुला। तकड़ी। आ० विवेक

तरासा—दे० त्रास।

तरिया—दे० तरब।

तरिवर—सं० पु० [सं० तरुवर] तरवर। बड़ा पेड़। पेड़। वृक्ष। आ० संसार।

तरु—दे० तरिवर।

तरुनि—सं० स्त्री० [सं० तरुणी] युवती। जवान स्त्री। आ० इन्द्रियाँ।

तलफि—क्रि० अ० [अनु०] तलफना कष्ट या पीड़ा से अङ्ग पटकना। छटपटाना। व्याकुल होना। बेचैन होना। विकल होना।

तवाँई—सं० पु० [सं० ताप, हिं० ताव] जलन। दाह। ताप।

तहँइ—क्रि० वि० [हिं० तहाँ] वहीं। उसी जगह। उसी स्थान पर।

तहिया—क्रि० वि० [सं० तदाहि] तब। उस समय।

तहियो—दे० तैयों।

ताकि—दे० तकत।

तागा—सं० पु० [हिं०] सूत। डोरा। धागा। आ० कर्म।

ताजी—सं० पु० [फ़ा०] अरब का घोड़ा। आ० विवेक।

तात—सं० पु० [सं०] पिता। बाप।

तातपर्ज—सं० पु० [सं० तात्पर्य] अभिप्राय। अर्थ। आशय। मतलब।

ताता—वि० [सं० तप्त] तपा हुआ। गरम। उष्ण। उ० सब जग ताहि अनल ते ताता। तु०

ताना—सं० पु० [हिं०] कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लम्बाई के बल होता है। वह तार या सूत जिसे जोलाहे कपड़े की लम्बाई के अनुसार फैलाते हैं। फैलाव। विस्तार। आ० सकाम कर्म।

तामस—वि० [सं०] तमो गुण युक्त। उ० होय भजन नहि तामस देहा। -तु०। आ० प्रकृति।

तार—सं० पु० [सं०] तागा। तंतु। सूत्र। आ० स्वांस।

तारन—सं० पु० [सं०] दूसरे को पार करने का काम। उद्धार। निस्तार। उद्धार करने वाला। तारने वाला। उ० जग कारण तारन भव, भंजन धरनी भार। तु०

तारा—सं० पु० [सं०] नक्षत्र। तारा। आ० कर्म।

तारागन—सं० पु० [सं० तारागण] तारा मंडल। नक्षत्र।

तारी—सं० स्त्री० [देश०] समाधि। ध्यान। ताली।

ताल—सं० पु० [सं०] ताली। करतल

ध्वनि। मंजीर या झाँझ नाम का बाजा। ताला। कुफुल।

तालाबेली—सं० स्त्री० [सं० व्यग्रता] व्याकुलता। घबराहट। उ० बिन पिया तनु तालाबेली।—बखना।

तिरगुन—सं० स्त्री० [सं० त्रिगुण] सत, रज और तम। तीन गुण।

तिरबिधि—दे० त्रिविधि।

तिरये—वि० [सं० त्रय] तीन। एक संख्या वाचक शब्द। दे० त्रिया।

तिलठी—सं० स्त्री० [हिं० सीठी] तिल के पेड़ का वह डंठल जिस से तिल झाड़ लिया गया हो। आ० निस्सार।

तिलै—सं० पु० [सं० तिल] एक पौधा अथवा उसका बीज जिससे तेल निकलता है। आ० सार।

तिहाई—सं० पु० [सं० त्रि + भाग] तीन भाग त्रितीयांश। तीसरा भाग। आ० त्रयताय।

तिहारी—सर्व [सं० त्वदीय] तुम्हारी। तेरी।

तिहुँलोक—सं० पु० [देश०] तीन फेरी करके सूत को गास देते हैं उसे तिलोक कहते हैं।

तीन दंड—सं० पु० [सं० त्रिदंड] दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। संन्यासियों का दंड। जिस में एक बाँस की लकड़ी में क्रमशः एक, दो वा तीन थैलियाँ एक तागे के सहारे बंधी रहती हैं और ऊपर से सफेद कपड़ा लपेटा रहता है। थैलियों का समूह नारायण का और सफेद कपड़ा लक्ष्मी का प्रतिनिधित्व करता है। तीनों थैलियाँ द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत की प्रतीक हैं।

तीर—सं० पु० [सं०] तट। नदी का किनारा। कूल। पास। समीप। निकट [फ०] बाण। शर। तीर। आ० भ्रम। विषय। सद्उपदेश।

तीर तीर—सं० पु० [सं० तीर+तीर] ठौर ठौर स्थान स्थान पर।

तीरा—सं० पु० [सं० तीर] नदी के किनारे। तट। आ० मुक्तिपद।

तुचा—सं० स्त्री० [सं० त्वक] त्वचा। चर्म। चमड़ा।

तुतुरे—वि० [हिं० तोतला] तुतुरा। अस्पष्ट बोलने वाला।

तुमरिया—सं० स्त्री० [देश०] तूमड़ी। तूबी। कड़वी लौकी के तूंबे की सहायता से दो छोटे छोटे नलों वाली बांसुरी जिस में लकड़ी लगी रहती है विशेषतया संपेरे लोग इसे काम में लाते हैं। आ० नासारंध्र।

तुरिया—वि० [सं० तुरीय] चतुर्थ। चौथा। चतुर्थावस्था।

तुरूक—सं० पु० [फा० तुर्क] मुसलमान। एक जाति विशेष।

तुरूकिनी—सं० स्त्री० [फा० तुर्किन] तुर्क की स्त्री। तुर्क जाति की स्त्री।

तुरुकी—सं० पु० [फा० तुर्की] तुर्किस्तान का घोड़ा । आ० विचार ।

तुलानी—क्रि० अ० [हिं० तुलना] तौल में बराबर आना । पहुँचना । समीप आना । निकट आना । उ० आपनों काल आपु ही बोल्यो इनकी मीचु तुलानी । सूर ।

तूलै—वि० [सं० तुल्य] तुल्य । समान । सादृश ।

तुंबा, तूँबा—सं० पु० [सं० तूँबा] कडुआ गोल कद्दू या लौका जिस को खोखला कर के सितार आदि बाजा में ध्वनि कोश बनाने के लिए लगाते हैं ।

तूमरी—सं० स्त्री० [सं० तुम्बक] कडुआ गोल कद्दू । तितलौकी । आ० माया ।

तूर—सं० पु० [सं० तूर्य] एक प्रकार का बाजा । नगारा । तुरही नाम का बाजा । सिंघा । उ० तोरन तूरन तूर बजै वर भावत भाटिन गावति ठाढ़ी । के०

तृषा—सं०स्त्री०[सं०] प्यास । इच्छा । अभिलाषा । लाभ । लालच ।

तृषावन्त—वि० [सं० तृषावान] प्यासा । उ० तृषावन्त जिमि पाय पियूषा ।-तु० ।

तैयो—अव्य० [हिं० तब+उ (प्रत्य०)] तौ भी । तिस पर भी । तब भी । तथापि ।

तोंदी—सं० स्त्री० [सं० तुंद] नाभी ढोंढ़ी ।

तोपची—सं० पु० [अ० तोप+ची] तोप चलाने वाला । वह जो तोप में गोला भर कर चलाता हो । गोलंदाज ।

तोरि—क्रि० स० [हिं० तोड़ना] आघात या झटके से किसी पदार्थ के दो या अधिक खंड करना । टुकड़े करना । जैसे रस्सी तोड़ना । दूर करना । अलग करना ।

त्रास—सं० स्त्री० [सं०] डर । भय । कष्ट । तकलीफ ।

त्रिकुटी—सं० स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूटी चक्र का स्थान । दोनों भौंहों के कुछ ऊपर का स्थान । उ० पूरक कुंभक रेचक करहू । उलटि ध्यान त्रिकूटी को धरहू । वि० सा०

त्रिगुन—दे० तिरगुन

त्रिविध—वि० [सं० त्रिविध] तीन तरह का । तीन प्रकार का । उ० त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी । तु० । आ० सत, रज, तम ।

त्रिभुवन नाथ—सं० पु० [सं० त्रि+भुवन+नाथ] तीनों भुवनों अर्थात् स्वर्ग,मृत्यु, पाताल का मालिक । आ० मन । निरंजन ।

त्रिया—सं० स्त्री० [सं०] औरत । स्त्री । आ० माया ।

त्रियौ—क्रि० अ० [सं० तरण]

तिरना। तैरना। पैरना। पार-होना। तरना। मुक्त होना।

त्रिषा—दे० तृषा।

त्रिसना—सं० स्त्री० [सं० तृष्णा] प्राप्ति के लिए आकुल करने वाली इच्छा। लोभ। लालच। प्यास।

थ

थभाइ—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] थमना। रुकना। ठहरना।

थंभे—सं० पु० [सं० स्तम्भ] थम। खंभा। स्तम्भ। थूनी। आधार। उ० थम विहूँणी गगन रचीले तेल विहूणी बाती। गो०

थल—सं० पु० [सं० स्थल] स्थान। जगह। ठिकाना। सूखी धरती।

थाके—क्रि० अ० [हिं० थकना] थकना। परिश्रम करते करते परिश्रम के योग न रहना। शिथिल होना। क्लान्त होना। ऊब जाना। हैरान हो जाना।

थान—सं० पु० [सं० स्थान] जगह। ठौर। ठिकाना। रहने या ठहरने की जगह। डेरा। निवास स्थान।

थाना—दे० थान। आ० नरतन।

थापे—क्रि० स० [सं० स्थापन] स्थापित करना। बैठाना। रखना।

थापै—दे० थापे।

थारी—सं० स्त्री० [हिं० थाली] थाली। पीतल या कास का चौड़ा वर्तन जिस में भोजन किया जाता है।

थाहो—क्रि० स० [हिं० थाहना] थाह लेना। गहराई का पता लगाना। अंदाज लेना। पता लगाना।

थित—सं० स्त्री० [सं० स्थिति] थिति। ठहराव। स्थायित्व। स्थिति आ० शांति।

थिति—दे० थिति।

थिर—सं० पु० [देश० सं० स्थिर] अचल। शांत। धीर। स्थाई। दृढ़।

थीरा—दे० थिर।

थून—सं० स्त्री० [सं० स्थूण] थून। थूनी। चांड। खंभा। उ० प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि। जनु हिरदय गुन ग्राम थून थिर रोपहि। तु०

थूनी—सं० स्त्री० [सं० स्थूण] लकड़ी आदि का गडा हुआ खड़ा बल्ला।

थूल—वि० [सं०] स्थूल। सहज में दिखाई देने या समझ में आने योग्य। सूक्ष्म का उलटा।

थोथी, थोथे—वि० [देश० थोथा] जिसके भीतर सार न हो। खोखला। खाली। पोला। जिस की धार तेज न हो। कुंठित। गुठला। भद्दा। उ० थोथी कथनी काम न आवै। थोथा फटकै उड़ि उड़ि जावे।—सुकदेव।

थोर—वि० [देश०] थोड़ा। अल्प।

थोरा—वि० [हिं०] न्यून। अल्प। कम। तनिक। जरासा।

द

दंड—सं० पु० [सं०] दंड। कर। कष्ट। डंडा। राज दंड।

दत्त, दत्ता दत्तै—सं० पु० [सं०] दत्तात्रेय।

दधि—सं० पु० [सं०] दही। जमाया हुआ दूध। [सं० उदधि] समुद्र। सागर। आ० अंतःकरण।

दम-दम—सं० पु० [देश०] क्षण क्षण।

दर—सं० पु० [फा०] जगह। स्थान। प्रमाण। ठीक ठेकाना।

दरजी— ० पु० [फा० दर्जी] कपड़ा सीने वाला। वह जो कपड़ा सीने का व्यवसाय करे। आ० सद्गुरू।

दरन—सं० स्त्री० [हिं०] दलने वाली वस्तु। वह वस्तु जो दली जाय।

दरपन—सं० पु० [सं० दर्पण] आइना। आरसी। मुँह देखने का शीशा। आ० हृदय पटल।

दरबदर्ब—सं० पु० [सं० द्रव्य] धन। दौलत।

दरबी—सं० स्त्री० [सं० दर्वी] करछी। चमचा। डौवा। आ० वाचक ज्ञानी।

दरबेसा—सं० पु० [फा० दरवेस] साधु। फकीर। उ० दरवेस सोई जो दर की जाणों। गो०

दरर—दे० दरन।

दरिआ—सं० स्त्री० [फा०] नदी। सिन्धु। उ० तजि आस भो दास रघुपति को दसरथ के दानि दया दरिया। तु०. आ० माया।

दव—सं० स्त्री० [सं०] दवाग्नि। वह आग जो बन में आप से आप लग जाती है। दवारि। दावा। आग अग्नि। उ० गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा। तु०। आ० चिंता। संसार।

दवन—सं० पु० [सं० दमन] दवाने या रोकने की क्रिया। दंड जो किसी को दबाने के लिए दिया जाता है। इन्द्रियों की चंचलता को रोकना। निग्रह। दम।

दवा—सं० स्त्री० [सं० दव] अग्नि। आग। उ० विरह दवा को जरत

बुझावा, जेहि लागे सो सौंहैं धावा। जा०

दसन—सं० पु० [सं० दशन] दांत। उ० दसन गहहु तृण कंठ कुठारी। तु०

दसरथ नाथ—सं० पु० [हिं०] राजा दसरथ। रामचन्द्र।

दहुँ—दे० धौं।

दहुँदिसि—सं० स्त्री० [सं० दश+दिस] दसों दिशायें जैसे पूरब, आग्नेय, दक्षिण, नैऋतय, पश्चिम, वायव्य उत्तर, ईशान, आकाश और पाताल। दोनो ओर।

दाँव—सं० पु० [सं०] समय। अवसर। मौका। संयोग। घात।

दाता—सं० पु० [सं०] वह जो दान दे। दानशील। देने वाला।

दाद—सं० स्त्री० [फा०] इंसाफ। न्याय। निर्णय। आ० बोध। गुरुपद।

दादुल—सं० पु० [हिं० दादुर] मेढक। मंडूक। उ० दादुर धुनि चहु ओर सुहाई। तु०। आ० मन। भ्रम। अज्ञानी।

दाम—सं० पु० [सं०] धन। रुपया पैसा। मूल्य। तत्व। उ० कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। तु०। आ० विवेक। विचार।

दामिनि—सं० स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत। उ० दामिनि दमकि रही घन माहीं। तु०।

दारा—सं० स्त्री० [सं० दार] स्त्री। पत्नी। भार्य्या।

दारी—सं० स्त्री० [सं० दारिका] दासी। लौंड़ी। आ० माया।

दारुन—वि० [सं० दारुण] भयंकर। घोर। कठिन। प्रचंड। विकट। उ० जाकह विधि दारुन दुख देहीं। तु०

दालिद—सं० पु० [सं० दारिद्रय] दरिद्रता। निर्धनता। गरीबी। आ० अज्ञान।

दासा—सं० पु० [सं० दास] शूद्र। एक उपाधि जो शूद्रों के नाम के पीछे लगाई जाती है। सेवक।

दिगंबर—सं० पु० [सं०] शिव। महादेव। नंगा रहने वाला जैन साधु। दिगम्बर यती। क्षपणक। वि० दिशाएँ ही जिसका वस्त्र हो अर्थात् नंगा।

दिगंतर—दे० देसंतर।

दिगमग—सं० पु० [सं० दिग्मण्डल] दिशाओं का समूह। सम्पूर्ण दिशाएँ।

दिच्छा—सं० स्त्री० [सं० दीक्षा] उपदेश। गायत्री मंत्र। गुरु मंत्र।

दिठियार—वि० [हिं० दीठ+इयार (प्रत्य०)] देखने वाला। आँख वाला। जिसे दिखाई देता हो। आ० ज्ञानी।

दिढ़ाई—क्रि० स० [सं० दृढ़+ना (प्रत्य०) दृढ़ाना। दृढ़ करना।

पक्का करना। निश्चय करना। मजबूत करना। उ० चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेश भलि भक्ति दिढ़ाई। तु०

दिढ़ाय—दे० दिढ़ाई।

दिदार—सं० पु० [फा० दीदार] दर्शन। साक्षात्कार।

दिन—सं० पु० [हिं०] दिन। दिवस। आ० शरीर। तरुणावस्था।

दिना—दे० दिन।

दिनकार—सं० पु० [सं० दिनकर] सूर्य।

दियन—सं० पु० [सं० दीपक] दीपक। चिराग। दिआ। मु० दिआ बुझना=किसी के मरने से कुल में अंधकार छा जाना। आ० जीवन ज्योति।

द्रिग—दे० दिसा।

दिल—सं० पु० [फा०] मन। चित। हृदय।

दिवस—दे० दिन। आ० नर तन।

दिवाना—वि० [फा० दीवाना] पागल। विक्षिप्त।

दिसा—सं० स्त्री० [सं० दिशा] दिशा। ओर। तरफ। दिशाएँ दस होती हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, वायव्य, ईशान, नैऋत, आग्नेय तथा ऊपर नीचे।

दिसि—दे० दिसा।

दिस्टि—सं० स्त्री० [सं० दृष्टि] नजर। निगाह। देखने की शक्ति।

दीठा—क्रि० सं० [हिं० देखना] देखना।

दीन—सं० पु० [अ०] मत। मजहब। धर्म। विश्वास।

दीसै—क्रि० स० [सं० दृश=देखना। दीसना। दिखाई देना। दिखाई पड़ना। दृष्टि गोचर होना। झलकना।

दुंद, दुंदि—सं० पु० [सं० युद्ध] युग्म। दो वस्तुएँ एक साथ हों। जन्म मरण, हर्ष शोक, सुख दुख, स्वर्ग नरक,। झगड़ा। कलह।

दुंदुर—सं० पु० [स० दादुर] मेढ़क। उ० अवगुन दुंदर मेटउ मोरे रछया करि राखा रछपाल। गरीबदास। आ० विकार (काम क्रोध, लोभ, मोह और मद आदि)।

दुंद्रा—दे० दुंद।

दुकाल—सं० पु० [सं० दुष्काल] अकाल। दुर्भिक्ष।

दुतिया—वि० [सं० द्वितीय] दूसरा। सं० स्त्री० [सं० द्वितीया] दूज पक्ष की दूसरी तिथि।

दुनियाई—सं० स्त्री० [अ० दुनिया+ हिं० ई (प्रत्य०)] संसार। जगत उ० ते विष बान लिखौं कहँताईं। रकत जो चुवा भीज दुनियाई। जा०

दुनी—सं० स्त्री० [अ० दुनिया] खलक। संसार। जगत। उ० सातो द्वीप दुनी सब नये। जा०

दुविधा—सं० स्त्री० [सं० द्विधा] अनिश्चय। चित्त की अस्थिरता। उ० दुविधा में दोऊ गए माया मिली न राम। अज्ञात।

दुरंतरी—वि० [सं० दुरंत] दुर्गम। दुस्तर। कठिन। जिसका अंत या पार पाना कठिन हो।

दुर्मति—सं० स्त्री० [सं०] बुरी बुद्धि। नासमझी। अज्ञान।

दुलहाई—दे० दूलहा।

दुलहिन—सं० स्त्री० [हिं० दुलहा+इन (प्रत्य०)] स्त्री। पत्नी। भार्य्या। आ० आत्मा।

दुहेलरा—दे० दुहेला।

दुहेला—वि०, [दुहेल=कठिन खेल] दुःखदायी। दुस्साध्य। कठिन।

दुहेली—सं० स्त्री० दे० दुहेला।

दूध—सं० पु० [सं० दुग्ध] दूध। पय। सफेद रंग का द्रव पदार्थ जो स्तनमयी जीवों की मादा के स्तन में होता है, इससे उनके बच्चों का पोषण होता है।

दूनी—दे० दुनी।

दूबरी—वि० [सं० दुर्बल] दुबली। क्षीण। कमजोर। दीन।

दूरि—क्रि० वि० [फा० दूर] दूर। बहुत फासले पर।

दूलहा—सं० पु० [प्रा० दुल्लह] वह मनुष्य जिसका विवाह अभी हाल में हुआ हो अथवा शीघ्र ही होने वाला हो। वर। दुलहा। नौशा। पति। खाविन्द। स्वामी सूफी साधुओं के मत में ईश्वर को भी दूलह कह कर सम्बोधित करते हैं। आ० जीव। विवेक।

देव—सं० पु० [सं०] स्वर्ग में रहने या क्रीड़ा करने वाला अमर प्राणी। दिव्य शरीरधारी। देवता। सुर।

देवघर—सं० पु० [सं० देव गृह] मंदिर। जैन मंदिर।

देवघरा—सं० पु० [सं० देव गृह] मंदिर। देवतायन। आ० शरीर।

देव लोक—सं० पु० [सं०] स्वर्ग।

देसंतर—सं० पु० [सं० देशांतर] अन्य देश। परदेश। आ० अन्य शरीर।

देहरि—सं० स्त्री० [सं० देहली] देहरी। द्वार की चौखट। उ० राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।—तु०

दोजख—सं० पु० [फा०] मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के अनुसार नरक जिस के सात विभाग हैं और जिसमें दुष्ट तथा पापी मनुष्य मरने के उपरांत रखे जाते हैं।

दोष—सं० पु० [सं० द्वेष] द्वेष। विरोध। शत्रुता। उ० सो जन जगत जहाज है जाके राग न दोष। —तु०

दोस—सं० पु० [सं० दोष] अपराध। कसूर।

दोहरा—सं० पु० [हिं० दो + हरा (प्रत्य०) दोहा नाम का छंद।

दौ—सं० पु० [सं० दव] बन। जंगल। दे० दवा। आ० संसार।

दौना—सं० पु० [हिं०] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ गुलदाऊदी की तरह कटावदार होती हैं और जिनमें तेज परन्तु कुछ कड़ुई सुगंध आती है।

दौरि—सं० स्त्री० [देश०] रस्सी। रज्जु। उ० ले दवरि बांधन लगी जसुदा है बे पीर। —व्यास। आ० वृति।

ध

धंधा—सं० पु० [हिं०] उद्यम। व्यवसाय। धन या जीविका के लिये उद्यम। काम काज। आ० गोरख धंधा=बहुत झगड़े या उलझन वाला काम। झगड़ा। उलझन। पेंच।

धंधे—दे० धंधा।

धंसि—क्रि० स० [हिं० धंसना] पैठना। जल आदि में प्रवेश करना। डुबकी लगाना। गोता मारना। उ० जो पथ मिलै महेश हिसेई। गये समुद्र ओही धंस लेई। जा०

धइल—क्रि० स० [सं० धारना] धरना। पकड़ना। सम्बन्ध करना।

धका—सं० पु० [हिं० धमक] धक्का। अघात या प्रतिघात। टक्कर। झोंका। आ० सांसारिक झगड़े।

धजा—सं० स्त्री० [सं० ध्वज] ध्वजा। पताका। धजा। रूपरंग। डील डौल। आ० मेरूदंड। शरीर।

धन—सं० पु० [हिं०] रूपया पैसा। दौलत। सम्पति।

धनवा—सं० पु० [हिं० धान] धान। भूसी लगा हुआ चावल। आ० लौकिक कार्य।

धना—दे० दारा

धनि—दे० दारा। आ० जीवात्मा। माया।

धनिक—वि० [सं०] धनी। जिस के पास धन हो। रुपये पैसे वाला। सं० पु० धनी मनुष्य। महाजन।

धनुस—सं० पु० [सं० धनुष] फलदार तीर फेकने का वह अस्त्र जो बाँस या लोहे के लचीले डंडे को झुका कर और उनके दोनों छोरों के बीच डोरी या तांत बांध कर बनाया जाता है। कमान।

धमार—सं० स्त्री० [अनु०] उछल कूद। उपद्रव। उत्पात। धमा चौकड़ी। होली में गाने का एक गीत।

धर—वि० [सं०] संभालने वाला। थामने वाला। सं० पु० पर्वत। कच्छप जो पृथ्वी को ऊपर लिये है।

धरती—सं० स्त्री० [सं० धरित्री] पृथ्वी। जमीन। संसार। दुनिया। जगत। आ० बुद्धि। अन्तः करण।

धरनि, धरनी—सं० स्त्री० [सं० धरणी] दे० धरती।

धरम—सं० पु० [सं० धर्म] धर्म शास्त्र। किसी मान्य ग्रन्थ, आचार्य वा ऋषि द्वारा निर्दिष्ट कर्म, जो पारलौकिक सुख के लिए किया जाय।

धाप—सं० पु० [देश०] दौड़।

धाय—क्रि० अ० [सं० धावन] धाना। दौड़ना। तेजी से चलना।

धार—सं० पु० [हिं०] किसी प्रकार का डाका। आक्रमण।

धारा—सं० स्त्री० [सं०] धारा नगरी। मालव की राजधानी जो राजा भोज के समय प्रसिद्ध थी।

धरमी—वि० [सं० धार्म्मिन] धार्मिक। पुण्यात्मा। मत या धर्म को मानने वाला।

धिया—सं० स्त्री० [सं० दुहिता] कन्या। बेटी। लड़की। बालिका। उ० शमी गरभ में अनल ज्यौं त्यौं तेरी धिय संत। ल० सिंह। आ० बुद्धि।

धींगा धींगी—सं० स्त्री० [हिं० धींग] शरारत। बदमाशी। उपद्रव। पाजीपन। जबरदस्ती। बल प्रयोग।

धीमर—सं० पु० [सं० धीवर] एक जाति विशेष जो प्रायः मछली पकड़ने और बेचने का काम करती है। मछुवा। मल्लाह। केवट। आ० काल। मन।

धुंधवाय—क्रि० अ० [हिं० धुंधवाना] धुँआ दे देकर जलना। उ० चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुंआ नहि देखिए उर अंतर धुंधवाय। —गिरधर।

धुंधा—सं० पु० [सं० द्वंद] झगड़ा। कलह।

धुर—अव्य० [सं० धुर] बिलकुल ठीक। वि० [सं० ध्रुव] पक्का।

धूत—वि० [सं० धूर्त] धूर्त। दगाबाज।

धृग—अव्य० [सं० धिक] लानत। धिक्कार। उ० धिक धर्मध्वज धंधक धोरी।—तु०

धेनु—सं० स्त्री० [सं०] वह गाय जिसे बच्चा जने बहुत दिन न हुए हों सवत्सा गो। आ० मनोवृत्ति।

धौं—अव्य० [सं० अथवा हिं० दव, दहु] एक अव्यय जो ऐसे

प्रश्नों के पहिले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का अधिक होता है। न जाने। मालूम नहीं। कहा नहीं जा सकता। उ० सीय स्वयंबर देखिय जाई। ईस काहि धौं देहि बड़ाई।—तु०

धौंकी—सं० स्त्री० [हिं० धौंकना] भाथी। भट्ठी। आ० गर्भवास।

ध्यान—सं० पु० [सं०] बाह्य इंद्रियों के प्रयोग के बिना केवल मन में लाने की क्रिया या भाव। सोच विचार। चिंतन। मनन। उ० बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू।—तु०

न

नकल—सं० स्त्री० [अ०] वह जो सच्चा, खरा या असल न हो, बल्कि असल को देख कर रूपरंग आकृति आदि में उसी के अनुसार बनाया गया हो। अनुकृति। बनावटी। कृत्रिम।

नख—सं० पु० [सं०] हाथ या पैर का नाखून। उ० श्री गुरुपद नख मनि गन जोती। तु०

नख सिख—सं० पु० [सं०] पैर के नख से लेकर शिखा तक के सब अंग। सिर से पैर तक। ऊपर से नीचे तक। संपूर्ण शरीर।

नग—वि० [सं० न+ग] न गमन करने वाला। अचल। स्थिर। आ० चैतन्य। सं० पु० [फा० नगीना] नग। अंगूठी और आभूषणों में जड़ा जाने वाला मूल्यवान पत्थर। जैसे पन्ना, पुखराज, हीरा, मणी आदि।

नगर—सं० पु० [सं०] मनुष्यों की वह बड़ी बस्ती जो गांव या कस्बे आदि से बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियों तथा पेशों के लोग रहते हों। शहर। उ० जायस नगर धर्म स्थानू। जा०। आ० शरीर। संसार।

नचनिया—सं० पु० [हिं० नाचना+इया (प्रत्य०) नाचने वाला। करघे की दोनो लकड़ियाँ जो बेसर के कुलवांसे से लटकती होती हैं। इन्हीं के नीचे चकडोर से दोनों राछें (कंघियाँ) बँधी रहती हैं। इन्ही की सहायता से राछें (कंघियाँ) ऊपर नीचे आती जाती रहती हैं। आ० इन्द्री।

नटत—क्रि० अ० [देश०] नाचना। नृत्य करना।

नटवत—सं० पु० [सं० नट+वत] नट की भाँति नाट्य या अभिनय करना। स्वांग भरना। नट की तरह। उ० एक ग्वालि नटवति

बहु लीला एक कर्म गुण गावंत। सूर

ननद—सं० स्त्री० [सं०] पति की बहिन। आ० अविद्या। माया। कुमति।

ननदी—दे० ननद

नपाकै—वि० [फा० नापक] अपवित्र। अशुद्ध। अस्पृश्य।

नफर—सं० पु० [फा०] दास। सेवक। गुलाम। उ० दादू नफर कबीर का। दादू

नबी—सं० पु० [अ०] ईश्वर का दूत। खुदा का भेजा हुआ पैगम्बर।

नर—सं० पु० [सं०] पुरुष। आदमी। मनुष्य।

नरलोई—सं० पु० [सं० नर+लोई] नर लोगो। मनुष्यों।

नरायन—सं० पु० [सं० नारायण] विष्णु। भगवान। ईश्वर। [सं० नर+अयन] मनुष्य का शरीर। आ० नर जीवों का भोग स्थान। जड़ शरीर। चैतन्य का अधिष्ठान जड़।

नरी—सं० स्त्री० [फा०] नलिका। ढरकी के भीतर की नली जिस पर तार लपेटा रहता है।

नल—दे० नर

नष्ट—वि० [सं०] जिसका नाश हो गया हो। जो बरबाद हो गया हो। जो अदृश्य हो। जो दिखाई न दे। अलक्षित। अधम। नीच। आ० मन।

नसाई—क्रि० स० [हिं० नसाना] अनुचित कार्य करना। नष्ट करना। खराब करना। बरबाद करना।

नसानी—क्रि० अ० [सं० नाश] न रह जाना। नष्ट होना।

नसौना—दे० नसाई

नस्ट—दे० नष्ट

नांई—सं० स्त्री० [सं० न्याय] समान दशा। एक सी गति। वि० [देश०] समान। तुल्य। उ० समरथ को नहि दोष गुसाई। रवि पावक, सुरसरि की नाई। तु०

नाई—दे० नांई

नाऊँ—ं० पु० [हिं० नाम] वह शब्द जिससे किसी व्यक्ति या समूह का बोध हो। नाम।

नाखै—क्रि० स० [सं० नष्ट] नाखना। देखना। विचार करना। नाश करना। [हिं० नाकना] नाकना। उल्लंघन करना। उ० जो हरि चरित्र ध्यान उर राखै। आनन्द सदा दुरित दुख नाखै। सूर

नाग—सं० पु० [सं०] सर्प। सांप। नाग बंस। शेष नाग।

नाग फांस—सं० स्त्री० [सं० नाग पाश] वरुण के एक अस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बांध लेते थे। शत्रु बांधने के लिये एक प्रकार का बंधन। आ० त्रिगुण का फंदा। (काम, तृष्णादि)।

नाचै—क्रि० स० [हिं० नाचना]

संगीत के मेल में ताल स्वर के अनुसार हाव भाव पूर्वक उछलना, कूदना तथा थिरकना। नृत्य करना। आनंद में मग्न होना।

नाता—सं० पु० [हिं० नात] दो या कई मनुष्यों के बीच वह लगाव जो एक ही कुल में उत्पन होने या विवाह आदि के कारण होता है। कुटुम्ब की घनिष्ठता। जाति सम्बन्ध। रिश्ता। उ० कह रघुवर सुनु भामिनि बाता। मानहु एक भक्ति कर नाता। तु०।

नाथ–सं० पु० [सं०] गोरख पंथी साधुओं की एक पदवी जो उनके नामों के साथ लगी रहती है। एक सम्प्रदाय जिसके प्रवर्तक महादेव (आदि नाथ) कहे जाते हैं।

नाद—सं० पु० [सं०] शब्द। अकाश। अव्यक्त शब्द जिसका ठीक विवेचन न किया जा सके। अनाहत नाद। भेरी आदिक शब्द। हठ योगियों का एक पारिभाषिक शब्द। उ० नाद विंदु जाके घट जरै। गो०

नादे—दे० नाद

नादाना—वि० [फा० नदान] ना समझ। अनजान। मूर्ख।

नाधे—क्रि० स० [हिं० नधना] [सं० नद्ध=न (प्रत्य०)] रस्सी या तस्मे के द्वारा बैल घोड़े आदि का उस वस्तु के साथ जुड़ना या बंधना जिसे उन्हें खीच कर ले जाना हो। जुतना। किसी कार्य में लगे रहना। उ० वहत बृषभ वहलन मह नाधे।—रघुराज। आ० सांसारिक माया जाल में पड़े रहना। भोग विलास में फंसे रहना। सकाम कर्म में जुते रहना।

नाना—वि० [सं०] अनेक प्रकार के। बहुत तरह के। विविध। अनेक। बहुत।

नारि—सं० स्त्री० [हिं० नार] जुलाहों की ढरकी। जुलाहों की नली जिस में वे सूत लपेट कर रखते हैं। आ० इडा, पिंलगा आदि नाडियाँ। [सं० नारी] स्त्री। औरत। आ० लेखनी। वाणी। माया।

नारी—सं० स्त्री० [सं०] स्त्री। औरत। आ० माया। प्रकृति। सुरति। ब्रह्मरंध। कुंडलनी।

नाल—सं० स्त्री० [सं०] पौधे का डंठल। कांड। डांड़ी। आ० मेरूदंड।

नाव—दे० नौका। आ० शरीर।

नावरी—सं० स्त्री० [हिं० नावर] नाव। नौका। आ० शरीर।

नाह—सं० पु० [सं० नाथ]। नाथ। स्वामी। मालिक। पति। आ० चेतन। आत्मा।

नाहर—सं० पु० [सं० नरहरि] सिंह। शेर। बाघ। आ० जीव।

निकंदिया—क्रि० स० [सं० नि+कंदन=निकंदन, नाश, बध] नाश करना। भंग करना। उखाड़ डालना।

निकरै—क्रि० अ० [हिं० निकलना] निकलना। बाहेर होना। भीतर से बाहेर आना।

निकुंज—सं० पु० [सं०] लता-गृह। ऐसा स्थान जो घनी लताओं से घिरा हो।

निगम—सं० पु० [सं०] वेद।

निग्रह—सं० पु० [सं०] रोक। अवरोध। इन्द्रियों का संयम।

निगले—क्रि० स० [सं० निगरण, निगलन] निगलना। लील जाना। खा जाना।

निचींत—वि० [सं० निश्चिंत] चिंता रहित। बेफिक्र।

निछत्र—वि० [सं० निःक्षात्र] क्षत्रियों से हीन। बिना छत्रिय का। उ० मारयो मुनि बिन ही अपराधहि कामधेनु लै आऊ। इकइस बार निक्षत्र तब कीन्हीं तहाँ न देखे हाऊ।—सूर

निज—वि० [सं०] खास। मुख्य। प्रधान। स्वयं। विशेष रूपसे। उ० देखु विचारि सार का सांचो कहा निगम निजु गायो।—तु०

निजु—दे० निज

निझरू—सं० पु० [सं० निर्झर] निर्झर। झरना। सोता।

निठुर—वि० [सं० निष्ठुर] कठोर हृदय। जिसे दूसरे की पीड़ा का अनुभव न हो। निर्दय। क्रूर।

निधि—सं० स्त्री० [सं०] गड़ा हुआ धन। खजाना। धन। नौ प्रकार के रत्न (पद्म, महा पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और वर्च्च)। साधना की सम्पत्ति। भजन के प्रताप से प्राप्त सिद्धि।

निनार—दे० निनारा।

निनारा—वि० [सं० निः+निकट] अलग। जुदा। भिन्न। न्यारा। दूर। उ० दूध पानि सब करै निनारा। जा०

निनारी—दे० निनारा।

निपात—सं० पु० [सं०] पतन। गिराव। अधः पतन। नाश। मृत्यु। विनाश। उ० कंस निपात करहु गे तुमही हम जानी यह बात सही पर। सूर

निपातिया—वि० [सं० निपतित] नष्ट हुआ। मरा हुआ। गीरा हुआ। अधः पतित।

निपुन—वि० [सं० निपुण] दक्ष। कुशल। प्रवीण। चतुर। कार्य करने में पटु।

निबेरा—सं० पु० [हिं० निबेरना] निबटारा। फैसला। निर्णय।

निबेरे—क्रि० स० [हिं० निबेड़ना] निबटाना। फैसला करना। दूर करना। हटाना। निवारण करना।

निबेरिये—क्रि० अ० [हिं० निबेड़ना] निर्णय करना। सुलझाना।

निमाज—सं० पु० [फा० नमाज] मुसलमानों की ईश्वर प्रार्थना जो नित्य पांच बार होती है इसके अतिरिक्त सूर्य चन्द्र ग्रहण के समय अनावृष्टि के समय, ईद के दिन, किसी के मरने पर तथा इसी प्रकार के अन्य अवसरों पर भी नमाज पढ़ी जाती है।

निमिखै—सं० पु० [सं० निमिष] उतना काल जितना पलक गिराने में लगता है। पलक मारने भर का समय।

नियरानी—क्रि० अ० [हिं० नियर+आनी (प्रत्य०)] समीप आना।

नियरायल—क्रि० अ० [हिं० नियर+आना (प्रत्य०)] निकट पहुँचना। पास आना। नजदीक आना।

नियरे—अव्य० [सं० निकट] नियर। समीप। पास। नजदीक।

नियारो—दे० निनारा।

निरंतर—वि० [सं०] अंतर रहित। लगातार। जिसमें या जिसके बीच अंतर या फासला न हो।

निर—अव्य०[सं० निः] नहीं। बिना।

निरखत—क्रि० स० [सं० निरीक्षण] देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ० बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन विमान। तु०

निरगुन—सं० पु० [सं० निर्गुण] सत, रज और तम इन तीनों गुणों से परे। परमेश्वर। बिना गुण वाला।

निरजिव—वि० [सं० निर्जीव] जीव रहित। बेजान। मृतक। प्राणहीन।

निरन्तर—दे० निरंतर।

निरबक—वि० [अ०] खालिश। निरा। केवल। एक मात्र।

निरबान—सं० पु० [सं० निर्वाण] मुक्ति। मोक्ष। शांति।

निरबैर—वि० [सं० निः+बैर] बिना बैर के। बैर रहित। शत्रुता हीन।

निरभै—वि० [सं०] जिसे कोई डर न हो। बेखौफ। निडर।

निराट—वि० [हिं० निराल] जिसके साथ और कुछ न हो। अकेला। एक मात्र। बिल्कुल। निपट। उ० साधत देह न नेह निराट कहै मति कोई कहूँ अटकी सी।—देव

निराधार—वि० [सं०] अवलंब वा आश्रय रहित। जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो। बिना आलंब या सहारे का। आ० चेतन।

निरापन—वि० [सं० निः + हिं० अपना] जो अपना न हो। पराया। बेगाना।

निरालप—वि० [देश०] अपवित्र। अशुद्ध। नापाक। मलिन दूषित।

निरालंब—दे० निराधार।

निरासल—वि० [हिं० निः+आश्रय]

आशा हीन। ना उम्मीद। निराश।

निरूवारिये—दे० निरुवारै।

निरुवारी—दे० निरुवारै।

निरुवारै—क्रि० स० [सं० निवारण] सुलझाना। उलझन मिटाना निबटाना। निर्णय करना। गांठ आदि छुड़ाना। उ० तब सोइ बुद्धि पाय उजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुवारा।—तु०

निर्वही—क्रि० अ० [सं० निर्वहन] निभना। निर्वाह होना।

निवारहु—क्रि० स० [सं० निवारण] रोकना। दूर करना। हटाना।

निसतरई—क्रि० स० [सं० निस्तार] निस्तार पाना। मुक्त होना। छुटकारा पाना। छुट्टी पाना।

निसाने—सं० पु० [फा० निशाना] लक्ष्य। वह जिस पर ताक कर किसी अस्त्र या शस्त्र आदि का वार किया जाय।

निसाफ—सं० पु० [अ० इन्साफ] न्याय। इनसाफ।

निसासा—वि० [सं० निः श्वास, हिं० नि (प्रत्य०) सांस] विगत श्वास। बेदम।

निसुदिन—दे० निसुबासर।

निसुबासर—सं० पु० [सं० निशि बासर] रात दिन। सदा। सर्वदा। हमेशा।

निस्चै—सं० पु० [सं० निश्चय] यकीन। विश्वास। पक्का विचार।

निहकरमी—वि० [सं० निष्कर्म्मिन] जो कर्मों में लिप्त न हो। अकर्मी।

निहाल—वि० [फा०] जो सब प्रकार से सन्तुष्ट और प्रसन्न हो गया हो। पूर्ण कार्म। उ० गए जो शरण आरत के लीन्हें। निरखि निहाल निमिष माँ कीन्हें।—तु०

निहुरि—क्रि० अ० [हिं० नि + होड़न] झुकना। नवना। झुककर।

निहोरा—सं० पु० [हिं०] अनुग्रह। एहसान, कृतज्ञता, उपकार। उ० जो कछु देवन मोहि निहोरा।—तु०

नींद—सं० स्त्री० [सं० निद्रा] निद्रा। जीवन की एक नित्य प्रति होने वाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं तथा शरीर और अंतःकरण दोनों विश्राम करते हैं। सोने की अवस्था। उ० जोकरि कष्ट जाय पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई।—तु० आ० अज्ञान।

नींदरी—दे० नींद। उ० हौ जभात अलसात तात तेरी बानि जानि मैं पाई। गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई।—तु०

नीको—वि० [सं० निक्त = साफ] नीका। अच्छा। उत्तम। भला। उ० प्रभू पद प्रीति न सामुझि नीकी।—तु०

नीठि—क्रि० वि०। कठिनता से।

मुश्किल से। ज्यों त्यों करके किसी प्रकार।

नीर—सं० पु० [सं०] पानी। जल।

नीरू—दे० नीर।

नीलाज—वि० [सं० निर्लज्ज] लज्जा हीन। बेहया। बेशर्म।

नुंचित—वि० [सं० लुंचित] उखाड़ा हुआ। जैन जतियों की एक क्रिया जिसमें उनके शिर के बाल नोचे जाते हैं।

नूतन—वि० [सं०] नया। नवीन। विलक्षण।

नूर—सं० पु०[अ०] ज्योति। प्रकाश। आभा। श्री। कांति। शोभा।

नेकु—वि० [हिं० न+एक] थोड़ा। तनिक। जरा सा। किंञ्चित।

नेम—सं० पु० [सं०] धर्म की दृष्टि से कुछ क्रियायों का पालन जैसे व्रत उपवास।

नेमी—वि० [सं० नियम] नियम का पालन करने वाला। धर्म की दृष्टि से पूजा, पाठ, व्रत, उपवास आदि करने वाला।

नेरा—अव्य० [सं० निकट] नियर। समीप। पास। नजदीक।

वि० [हिं० विन्यास] अलग। जुदा। पृथक।

नेव—सं० स्त्री० [हिं० नींव] नींव। घर बनाने में गहरी नाली के रूप में खुदा हुआ गडढा। दीवार उठाने के लिए गहरा किया हुआ स्थान। जड़। मूल। आधार।

नेवाज—वि० [फा० निवाज] कृपा करने वाला। अनुग्रह करने वाला। ईश्वर।

नेह—सं० पु० [सं० स्नेह] प्रेम। प्रीत। प्यार। आ० आशक्ति।

नेहरा—दे० नेह।

नैन—सं० पु० [सं० नयन] चक्षु। नेत्र। आखें।

नौका—सं० स्त्री० [सं०] लकड़ी की बनी हुई जल के ऊपर तैरने या चलने वाली सवारी। जलयान। नाव। किश्ती। जहाज। आ० शरीर।

नौवा—सं० पु० [सं० नाविक] मल्लाह। आ० जीवात्मा।

न्याव—सं० पु० [सं० न्याय] इंसाफ। वाद विवाद वा झगड़े का निबटारा। निर्णय।

प

पँखुरी—सं० स्त्री० [सं० पक्ष्म] फूलों का वह रंगीन पटल जिसके खिलने या छितराने से फूल रूप बनता है पुष्प दल। पंखुड़ी।

पंखै—सं० पु० [पक्ष, प्रा० पक्ख] पंख। पर। डैना। वह अवयव जिससे चिड़िया, पतिंगे आदि उड़ते हैं। उ० काटेसि पंख परा खग धरनी।—तु०

पंगा—वि० [सं० पंगु] जिसके पैर काम न करते हों। लंगड़ा। बेकाम।

पंचासन—दे० पीठासन।

पंछी—सं० पु० [सं० पक्षी] पखेरू। चिड़िया। आ० प्राण

पंजर—सं० पु० [सं०] हड्डियों का ठठर। शरीर। देह। पिंजड़ा कंकाल। ठठरी।

पंडित—वि० [सं०] विद्वान। शास्त्रज्ञ। ज्ञानी। चतुर। सं० पु० ब्राह्मण। आ० ब्रह्म।

पंडौ—सं० पु० [सं० पाण्डव] कुंती और माद्री के गर्भ से उत्पन्न राजा पांडु के युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पांचौ पुत्र।

पंथ—सं० पु० [सं० पथ] मार्ग। रास्ता। राह। धर्म मार्ग। संप्रदाय। मत। उ० सैयद असरफ पीर पियारा। जिन मोहि दीन पंथ उजियारा।—जा०। आ० कल्याण-मार्ग, सतसंग, परमपद प्राप्ति का मार्ग।

पंथी—सं० पु० [सं० पथिन] राही। बटोही। पथिक। उ० क रहि पयान भोर उठि नितही कोश दस जाहि। पंथी पंथा जो चलहि ते कित रहै ओटाहि।—जा०। आ० जिज्ञासु। साधक।

पँवारै—क्रि० स० [सं० प्रवारण] रोकना। हटाना। फेंकना। प्रवाह करना। त्यागना

पग, पगु—सं० पु० [सं० पदक] पैर। पांव।

पचहु—क्रि० अ० [सं० पचन] क्षय होना। समाप्त होना। खपना। बहुत हैरान होना। दुःख सहना।

पचि—दे० पचहु

पछ—सं० पु० [सं० पक्ष] अनुकूल मत या प्रवृति। तरफदारी।

पछारिन्हि—क्रि० स० [देश०] मारना। बध करना। मु० सिंह जानवरों को पछाड़ता है।

पछोरि—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] सूप आदि में रख कर (अन्न आदि के दानों को) साफ करना। फटकना। उ० कहौ कौन पै कढ़ै कनूका भुस की राशि पछोरे। सूर। आ० सत्यासत्य विवेक।

पट—सं० पु० [सं०] वस्त्र। कपड़ा चक्की का पाट। आ० नर शरीर।

पटरिया—सं० स्त्री० [हिं० पटरा] पटरी। काठ का पतला और लम्बा तख्ता। आ० शरीर।

पटवारी—सं० पु० [सं० पट्ट+हिं० वार] पटवारी का कार्य। वह कार्य जो पटवारी करता है। पटवार गिरी। आ० निस्सार उपदेश।

पटिया—सं० स्त्री० [सं० पट्टिका] खाट या पलंग की पाटी। मांग। पट्टी।

पटोरा—सं० पु० [सं० पटोल] पटोर। रेशमी कपड़ा।

पतंग—सं० पु० [सं०] पतंग। उड़ने वाला कीड़ा। शलभ। परवाना। पक्षी।

पतंगा—दे० पतंग।

पतारा—दे० पताल।

पताल—सं० पु० [सं० पताल] पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में से सातवाँ अधोलोक। नाग लोक। पाताल।

पति—सं० पु० [सं०] मालिक। स्वामी। प्रभू। आ० ईश्वर। मन। सं०स्त्री० मर्यादा। प्रतिष्ठा। लज्जा। इज्जत। साख। उ० अब पति राखि लेहु भगवान।—सूर

पतियाई—दे० पतियाना।

पतियाना—क्रि० स० [हिं०] विश्वास करना। सच मानना। प्रतीत करना।

पतियाय—दे० पतियाना।

पतियारा—वि० [हिं० पतियाना] पतियाने के योग्य। काबिल एत-बार। विश्वास करने योग्य।

पतिजे—क्रि० अ० [हिं० पतीजना] पतीजना। पतिआना। एतबार करना। विश्वास करना। प्रतीत करना। भरोसा करना। उ० तब देवकी दीन ह्वै भाष्यो नृप को नहीं पतीजै।—सूर

पत्तन—दे० नगर। आ० संसार।

पत्र—सं० पु० [सं०] किसी वृक्ष का पत्ता। पत्ती। दल [सं० पात्र] बर्तन। आधार। आ० भिक्षा-पात्र। शरीर।

पत्री—सं० पु० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

पदुमिनि—सं० स्त्री० [सं० पद्मिनी] कोक शास्त्र के अनुसार स्त्रियों की चार जातियों में से सर्वोत्तम जाति। कहते हैं इस जाति की स्त्री अत्यन्त कोमलांगी, सुशीला, रूपवती और पतिव्रता होती है। दे० प० ख

पथिक—दे० पंथी

पनिया—सं० पु० [सं० पानीय] पानी। जल।

पयाना—सं० पु० [सं० प्रयाण] गमन। यात्रा। रवानगी।

पयार—सं० पु० [सं० पलाल] पुआल। धान या कोदों आदि के सूखे डन्ठल जिनके दाने झाड़ लिये गये हों। धान का गांव पयार ते जानौ ज्ञान विषय रस भोरे।—सूर। आ० माया। शरीर

पर—वि० [सं०] दूसरा। अन्य। अपने को छोड़ कर शेष गैर। उ० पर उपदेश कुशल बहुतेरे।—तुलसी

परक्ख—क्रि० स० [सं० परीक्षण] परीक्षा करना। जांच करना।

परखत—दे० परक्ख

परखावत—क्रि० स० [हिं० प्रखना

का प्रे०] परिक्षा कराना। जंच-वाना।

परगासा—क्रि० स० [हिं० प्रकटना] प्रकट होना। दिखाई पड़ना। प्रकाशित होना।

परचै—सं० पु० [सं० परिचय] जानकारी। ज्ञान। जान पहिचान।

परजरे—दे० प्रजाली

परजारि—दे० प्रजाली

परतछै—वि० [सं० प्रत्यक्ष] जो देखा जा सके। जो आँखों के सामने हो। जिसका ज्ञान इंद्रियों के द्वारा हो सके जो किसी इन्द्रिय की सहायता से जाना जा सके।

परदा—सं० पु० [फा०] आड़। आवरण। ओट।

परपंच—दे० प्रपंच।

परपंची—दे० प्रपंच।

परवत—सं० पु० [सं० पर्वत] जमीन के ऊपर का बहुत अधिक उठा हुआ प्राकृतिक भाग जो आस पास की जमीन से बहुत अधिक ऊँचा होता है। और प्राय: पत्थर ही पत्थर होता है। पहाड़। आ० मन।

परबस—वि० [सं० परवश] जो दूसरे के वश में हो। पराधीन।

परम तत्तु—सं० पु० [सं० परमतत्व] मूल तत्व जिससे संपूर्ण विश्व का विकास है। मूल सत्ता। ब्रह्म। ईश्वर सम्बंधी ज्ञान। ब्रह्म विद्या। आ० गुरुपद।

परम निधाना—वि० [हिं० परम-निधान] उत्तम धन। मुख्य आधार। अमूल्य वस्तु।

परमाना—सं० पु० [सं० प्रमाण] प्रमाण।

परलै—सं० स्त्री० [सं० प्रलय] सृष्टि का नाश वा अन्त।

परवाना—सं० पु० [सं० उपाख्यान] कथा। कहावत। मसला। उ० बालापन से रहत निकट ही सुन्यो न एक परवानो। सूर। दे० परमाना।

परस—सं० पु० [सं० स्पर्श] स्पर्श। छूना। उ० दरस परस मंजन अरु पाना। —तुलसी

परसादे—सं० पु० [सं० प्रसाद] अनुग्रह। कृपा। मेहरबानी।

परसाही—सं० स्त्री० [सं० प्रतिच्छाया] परछांई। छाया।

परसै—क्रि० सं० [सं० स्पर्शन] छूना। स्पर्श करना।

परसोतिम—सं० पु० [सं० पुरुषोत्तम] पुरुष श्रेष्ठ। श्रेष्ठ पुरुष।

परस्पर—क्रि० वि० [सं०] एक दूसरे के साथ। आपस में।

पराई—क्रि० अ० [सं० पलायन] पराना। भाजना। उ० देखि विकट भट अति विकटाई। जच्छ जीव लइ गयउ पराई। —तु०

परावा—सं० पु० [सं० प्राण] जीवन। जान। शरीर की वह वायु जिससे मनुष्य जीवित रहता है। प्राण वायु। उ० प्राण पवन हृदय महँ वासा। जेहिते निस दिन निकसत सांसा। वि० सा०

पराय—क्रि० अ० [प्रा० पड़न] पड़ना। गिरना। पतित होना।

परारी—सं० स्त्री० [हिं० परार] दूसरे की। परायी। बिरानी।

परिचै—दे० परचै।

परिमल—सं० पु० [सं०] सुवास। उत्तम गंध। चंदन की खुशबू।

परिहरि—क्रि० स० [सं० परिहरण] त्यागना। छोड़ना। तज देना। उ० परिहरि सोच रहो तुम सोई। बिनु औषधिहिं व्याध बिधि खोई। –तुलसी

परिहरु—दे० परिहरि।

परोसिन—सं० स्त्री० [हिं०] पड़ोस में रहने वाली।

परोहन—सं० पु० [सं० प्ररोहण] वह जिस पर सवार होकर यात्रा की जाय। या कोई वस्तु लादी जाय। घोड़ा। बैल आदि। आ० विवेक।

पर्ग—दे० पैग।

पल—सं० पु० [सं०] क्षण।

पला—सं० पु० [हिं० पल्ला] पल्ला। आँचल।

पलथि—सं० स्त्री० [प्रा० पल्लत्थ] पालथी। हठ योग का एक आसन। जिसमें दाहिने पैर का पंजा बाँए और बाँए पैर का पंजा दाहिने पट्ठे के नीचे दबा कर बैठते हैं। स्वस्तिकासन।

पलटाया—क्रि० स० [हिं० पलटना] बदलना।

पलास—सं० पु० [सं०] ढाक। टेसू।

पलुहावन—क्रि० स० [हिं० पलुहना] पलुहाना। पल्लवित करना। हरा भरा करना। उ० कबहुक कपि राघव आवहिंगे। विरह अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपा दृष्टि जल पलुहावहिं गे। –तु०

पलौ—सं० पु० [सं० पल्लव] नए निकले हुए कोमल पत्तों का समूह या गुच्छा। कोपल। कल्ला। उ० नव पल्लव भये विटप अनेका। –तु०। आ० बासना।

पवन—सं० पु० [सं०] वायु। हवा। आ० प्राण। स्वांसा।

पवना—दे० पवन।

पषान—सं० पु० [सं० पषाण] पत्थर। प्रस्तर। शिला। आ० जड़।

पसार—सं० पु० [सं० प्रसार] फैलाव। विस्तार।

पसारिन—क्रि० स० [सं० प्रसारण] फैलाना।

पसीजहु—क्रि० स० [प्रा० पसि-

रुजई] दयार्द्र होना। पिघलना। नर्म होना। कोमल चित्त होना।

पसेरी—सं० स्त्री० [हिं० पांच+सेर +ई [प्रत्य०)] पसेरी पांच सेर का बांट। तोल की एक माप। आ० पांच तत्व। कर्म इन्द्रियाँ।

पहरिया—दे० पहरू

पहरुआ—दे० पहरू।

पहरू—सं० पु० [हिं० पहरा+ऊ (प्रत्य०)] पहरा देने वाला। चौकीदार। रक्षक। प्रहरी। संतरी।

पहिरा—क्रि० स० [हिं० पहनना] धारण करना।

पहिरि—दे० पहिरा

पहुँना—दे० पाहुना।

पहेलि—क्रि० स० [सं० प्रहीन] अवहेलना करना। छोड़ना।

पांखि—सं० पु० [सं० पक्ष] पंख। पर। पक्षी का डैना। आ० विचार।

पांजी—सं० स्त्री० [सं० पदाति, हिं० पांजी=पैदल] मार्ग। रास्ता। किसी नदी का इतना सूख जाना कि लोग उसे हल कर पार कर सकें। आ० रूढ़ि।

पांडुर—सं० पु० [देश०] एक प्रकार का सांप। सर्प। आ० अज्ञान।

पाँड़े—सं० पु० [सं० पंडित] पंडित। विद्वान। ब्राह्मण।

पाई—सं० स्त्री० पतली छड़ियों वा बेंत का बना हुआ जोलाहों का एक ढांचा जिस पर ताने के सूत को फैलाकर उसे खूब मांजते हैं।

पाक—वि० [फा०] पवित्र। शुद्ध। परिमार्जित।

पाखंड—सं० पु० [सं० पाषंड] असत्य धर्म। धर्म का ढोंग। लोक में पूजा पाने के लिए धर्म का ढोंग रचने वाला। ढोंग। आडम्बर। धर्म।

पाखर—सं० स्त्री० [प्रक्षर, प्रक्खर] लोहे की वह झूल जो लड़ाई के समय रक्षा के लिये हाथी व घोड़ों पर डाली जाती है। राल चढ़ाया हुआ टाट या उस से बनी हुई पोशाक। आ० जड़।

पाखान—दे० पषान।

पाट—सं० पु० [सं० पट्ट, पाट] पाठ। शबक। वस्त्र। कपड़ा। रेशमी वस्त्र। चौड़ाई। फैलाव। पीढ़ा। तख्ता। गद्दी। पटिया। पाटी। पट्टी। आ० ज्ञान।

पाटन—दे० नगर। आ० शरीर।

पात—दे० पत्र।

पाती—सं० स्त्री० [प्रा० पत्ती] पत्ती। पत्र। बेल अथवा तुलसी की पत्ती।

पातरी—वि० [हिं० पातर] पतला। सूक्ष्म। क्षीण। बारीक। आ० झीनी माया।

पाथर—दे० पषान। आ० शालिग्राम।

पादसाह—सं० पु० [सं० पाट शाशक] तख्त का मालिक। राज सिंहासन पर बैठने वाला। बाद-

शाह। राजा। शाशक। आ० ईश्वर। अल्लाह।

पान—सं० पु० [सं० पर्ण] पत्ता। एक प्रसिद्ध लता जिसके पत्तों का बीड़ा बना कर खाते हैं। तांबूल। आ० ज्ञान।

पानही—सं०स्त्री० [सं० उपानह] जूता। पदत्राण। आ० विवेक, विचार।

पानिप—सं० पु० [हिं० पानी+प (प्रत्य०)] ओप। द्युति। कांति चमक। आब। इज्जत। मर्यादा।

पानी—सं० पु० [सं० पानीय] जल। नीर। आ० वाणी। आनंद। प्रपंच। वीर्य।

पानी ग्रहन—सं० पु० [सं० पाणि ग्रहण] विवाह की एक रीति जिसमें कन्या का पिता उस का हाथ वर के हाथ में देता है। विवाह। व्याह।

पाप—सं० पु० [सं०] वह कर्म जिस का फल इस लोक और परलोक में अशुभ हो। बुरा काम। निंदित कार्य। अनाचार। गुनाह। अकल्याणकर कर्म।

पार—सं० पु० [सं०] परम।

पारख—सं० स्त्री० [सं० परीक्षा] परीक्षा। पहिचान। आ० गुरुपद। पारख पद।

पारखी—सं० पु० [हिं० पारिख+ई (प्रत्य०)] परखने वाला। परीक्षक। आ० सारासार विवेकी।

पारथ—सं० पु० [स०] अर्जुन। [सं० परिधान=आच्छादन] पारधी। व्याध। आ० जीव।

पारथि—सं० पु० [सं० परिधान=आच्छादन] पारधी। टट्टी आदि की ओट से पशु पक्षियों को पकड़ने या मारने वाला। बहेलिया। व्याध। शिकारी। अहेरी। हत्यारा। बधिक। आ० मन

पारन—सं० पु० [सं० पारण] किसी व्रत या उपवास के दूसरे दिन किया जाने वाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य। उ० अबलौं उपासी अब पारन करूँ गी मैं। अनूप।

पारब्रह्म—सं० पु० [सं०] ब्रह्म जो जगत से परे है। निर्गुन निरुपाधि ब्रह्म।

पारस—सं० पु० [हिं० परस] एक कल्पित पत्थर जिस के विषय में प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उस से छुलाया जाय तो सोना हो जाता है। स्पर्श मणि। आ० गुरुज्ञान।

पारा—क्रि० स० [हिं० पाना] समर्थ होना। सकना। [सं० पार] अंत। छोर। किनारा। हद। अव्य० परे।

पावक—दे० आगि। आ० त्रयताप। विरहाग्नि। ज्ञान।

पांस—दे० पासा।

पासंग—सं० पु० [फा०] तराजू की डंडी बराबर न होने पर उसे

बराबर करने के लिए उठे हुए पलरे पर रखा हुआ पत्थर या और कोई बोझ। पसंघा। आ० इच्छा। वासना।

पासा—सं० पु० [सं० पाशक] हाथी दांत या किसी हड्डी के उंगुली के बराबर छः पहलदार टुकड़े जिन के पहलों पर बिंदियाँ बनी होती हैं। और जिन्हे चौसर खेलने वाले खेलारी बारी बारी से फेंकते हैं, जिस बल ये पड़ते हैं उसी के अनुसार बिसात पर गोटियाँ चली जाती हैं और अंत में हार जीत होती है। उ० कौरव पांसा कपट बनाये। धर्म पुत्र को जुवा खेलाये। सूर।

पाहन—दे० पषान। आ० जड़

पाहुना—सं० पु० [हिं०] अतिथि। अभ्यागत। मेहमान।

पिंजरा—सं० पु० [सं० पंजर] पिंजड़ा। लोहे बांस आदि की तीलियों का बना हुआ झाबा जिनमें पक्षी पाले जाते हैं। आ० शरीर।

पिंड—सं० पु० [सं०] शरीर। देह। लोकपिंड।

पिंडै—दे० पिंड

पिउरिया—सं० स्त्री० [सं० पिंजिका] धुनी हुई रुई की वह बत्ती जो चरखे पर सूत कातने के लिये तय्यार की जाती है।

पिछौरा—सं० पु० [हिं० पेछवड़ा] दुपट्टा। चादरा। आ० प्रकृति।

पिछवारै—सं० पु० [हिं० पीछ+वाड़ा (प्रत्य०)] पीछे। आ० आंड। आश्रय।

पिता—सं० पु० [सं० पितृ] जन्म देकर पालन पोषण करने वाला बाप। जनक। आ० ईश्वर।

पिपराही—सं० पु० [हिं० पिपर+आही (प्रत्य०)] पीपल का बन। पीपल का जंगल। आ० कामना

पिपील—सं० स्त्री० [सं० पिपीलका] चिऊँटी। चींटी। कीड़ी। आ० बुद्धि।

पिय—सं० पु० [सं० प्रिय] पति। स्वामी। आ० ईश्वर। सच्चा गुरु।

पियरा—वि० [सं० पीत] पीला। हलदी, सोनो या केशर के रंग का। पीत वर्ण। जर्द।

पियाओं—क्रि० स० [हिं० पीना] पिलाना। पान कराना।

पियारि—वि० [सं० प्रिय] प्रिय। जो अच्छा लगे।

पियाला—सं० पु० [फा०] छोटा कटोरा। बेला। जाम।।

पिराना—क्रि० स० [सं० पीड़न] पीड़ित होना। दर्द करना। दुखना। उ० चलत चलत मग पांय पिराने। सूर।

पिरानी—दे० पिराना

पीठासन—सं० पु० [सं० पीठासन]

पीठासन। आसन विशेष। विशिष्ट आसन। किसी विशेष व्यक्ति या अतिथि के आने पर उसके बैठने के लिये दिया गया एक प्रकार का पीढ़ा।

पीतर—सं० पु० [सं० पित्तल] एक प्रसिद्ध धातु जो तांबे और जस्ते के संयोग से बनती है। आ० पीतल की मूर्ति। ठाकुर जी।

पीपरि—सं०पु० [सं० पिप्पल] पिपल का पेड़। अश्वत्थ। आ० माया।

पीर—सं० पु० [फा० पीर=गुरु] गुरु। उस्ताद।

पीव—दे० पिय। आ० सद्गुरु।

पुत्र—सं० पु० [सं०] लड़का। बेटा। पुन्नाम नर्क से रक्षा करने वाला। आ० जीव।

पुनीत—वि० [सं०] पवित्र। पाक।

पुन्न—वि० [सं०] पवित्र। शुभ। अच्छा। भला। धर्म विहित। सं० पु० सुकृत। भलाकाम।

पुरइन—सं० स्त्री० [हिं० पुरइनि] कमल। कमल का पत्ता। उ० पुरइनि सघन ओट जल वेगि न पाइय मर्म। माया छन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म। तु०।

पुर—सं० पु० [सं०] नगर। लोक। शरीर।

पुरन्दर—दे० सुरपति।

पुरान—वि० [सं० पुराण] पुरातन। प्राचीन। सं० पु० प्राचीन आख्यान। पुरानी कथा। हिन्दुओं के धर्म सम्बंधी आख्यान ग्रंथ जिन की संख्या अठारह है। दे० प० ग।

पुरिया—सं०स्त्री० [हिं०पूरना] पुरिया वह नरी जिस पर जुलाहे बाने को बुनने के पहिले फैलाते हैं। तानी। सं० पु० घर। भंडार। आ० शरीर।

पुरुष—सं० पु० [सं०] पति। स्वामी। आत्मा। जीव। शिव। मनुष्य। आदमी। नर। मनुष्य का शरीर वा आत्मा। आ० ईश्वर।

पुहमी, पुहुमी—सं० स्त्री० [सं० भुमि, प्रा० पुहुमी] पृथ्वी। पार्थिव। भूमि। उ० परै गाज पुहुमी तपि कूटै। जा०। आ० पार्थिव शरीर।

पूंछ—सं० स्त्री० [सं० पुच्छ] पुच्छ। लांगूल। दुम। आ० अंत।

पूंजी—सं० स्त्री० [सं० पुंज] पूंजी। मूलधन। संचित धन। संपति। जमा। आ० ज्ञान।

पूजि—क्रि० अ० [सं० पूर्यते, प्रा० पूज्जति] पूजना। पूरा होना।

पूत—सं० पु० [सं० पुत्र, प्रा० पुत्त] बेटा। लड़का। पुत्र। आ० जीव।

पूतरा—सं० पु० [सं० पुत्तल] मूर्ति आ० शरीर।

पूता—दे० पूत।

पूर—वि० [सं० पूर्ण] भरपूर।

पूरब—सं० पु० [सं० पूर्व] वह दिशा जिस ओर सूरज निकलता दिखाई दे। वि० [सं० पूर्व] पहिले का।

आगे का। अगला। पुराना। प्राचीन। पिछला। क्रि० वि० पहिले।

पूरिन—क्रि० स० [सं० पूरण] भरना। पूर्ति करना।

पूरी—वि० [सं० पूर्ण] भरा। परिपूर्ण। भरपूर। यथेच्छ। काफी। बहुत।

पूरब दिसा—सं० पु० [सं० पूर्व दिशा] पहिली अवस्था। पूर्व अवस्था। आ० हृदय कमल।

पृथिमी—प्रिथिमी।

पेखना—क्रि० स० [सं० प्रेक्षण, प्रा० पेक्खण] देखना। अवलोकन करना।

पेट—सं० पु० [सं० पेट=थैला] उदर। शरीर में थैले के आकार का वह भाग जिस में पहुँच कर भोजन पकता है।

पेड़—सं० पु० [सं० पिंड] वृक्ष। दरख्त। आ० मूल प्रकृति।

पेलना—सं० पु० [सं०] नाव खेने की छोटी चौड़ी लकड़ी जिस से छोटी नाव खेई जाती है। आ० तरुणावस्था।

पेलि—क्रि० स० [सं० प्रेरणा] कर चलना। काम पूरा करना।

पैंड़े—सं० पु० [हिं० पैंड़] रास्ता। पथ। मार्ग।

पैगंमर—सं० पु० [फा० पैगम्बर] मनुष्यों के पास ईश्वर का संदेश लेकर आने वाला धर्म प्रवर्तक। जैसे मूसा, ईसा, मुहम्मद।

पैठा, पैठी—दे० पैठे।

पैठे—क्रि० अ० [हिं० पैठ+ना (प्रत्य०)] घुसना। प्रविष्ट होना। प्रवेश करना। उ० चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा। तु०

पोंगरा—सं० पु० [सं० पौगण्ड] बालावस्था। बालक। वि० [देश० पोंगा] मूर्ख। बुद्धिहीन।

पोखरि—सं० पु० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्खर] पोखर। तलाव। पोखरा

पोच—वि० [फा०] तुच्छ। क्षुद्र। बुरा। निकृष्ट। नीच। उ० भलो पोच जग विधि उपजाये। तु०।

पौ—सं० स्त्री० [सं० पाद] जड़।

पौवा—सं० पु० [हिं० पाव] तोलने की एक माप। एक सेर का चौथाई भाग। दे० प० ग, तिन पौवा।

प्रगासे—दे० प्रगासिन।

प्रजाली—क्रि० स० [सं० (उप०) पर+हिं० जारना] प्रज्वलित करना। अच्छी तरह जलाना। जारना। जलाना। उ० बाजहि ढोल देहिं सब गारी। नगर फेरि पुनि पूंछ प्रजारी। तु०

प्रतिग्रह—सं० पु० [सं० प्रतिग्रह] स्वीकार। ग्रहण। उस दान का लेना जो ब्राह्मण को विधि पूर्वक दिया जाय।

प्रतिपाला—सं० पु० [सं० प्रतिपालन] रक्षण। पालन। पोषण।

प्रतिबिंब—सं० पु० [सं०] परछांई।

छाया। मूर्ति। प्रतिमा। चित्र। झलक।

प्रतिमा—सं० स्त्री० [सं०] प्रतिबिंब। छाया। किसी की वास्तविक अथवा कल्पित आकृति के अनुसार बनाई हुई मूर्ति या चित्र आदि। अनुकृति। देवमूर्ति।

प्रपंच—सं० पु० [सं० प्रपञ्च] संसार। सृष्टि। भवजाल। सांसारिक व्यवहारों का विस्तार। दुनिया का जंजाल। बखेड़ा। झंझट। आडम्बर। ढोंग।

प्रलै—परलै।

प्रसूती—सं० स्त्री० [सं० प्रसूति] प्रसव। जनना। उद्भव। पैदा होना। प्रगट होना।

प्रहारी—वि० [सं० प्रहारिन्] नष्ट करने वाला।

प्रिथिमी—दे० पुहुमी। आ० पृथ्वी वाले। संसारी।

प्रेत—सं० पु० [सं०] मरा हुआ मनुष्य। मृतक आदमी। पुराणानुसार वह कल्पित शरीर जो मनुष्य को मरने के उपरांत प्राप्त होता है। भूत।

प्रेत कनक—सं० पु० [सं०] प्रेत के उद्देश्य से सुवर्णादि दान वाली क्रिया। कहते हैं कि प्राण निकलते समय मुख में सोना डालने पर फिर जीव प्रेत नहीं होता है।

प्रेत का जूठ—सं० पु० [सं० प्रेत+जूठ] प्रेत के उद्देश्य से दिया गया अन्न। भूत, प्रेत, भैरव, भवानी का प्रसाद।

फ

फंद—सं० पु० [सं० बंध, हिं० फंदा] बंध। बंधन। जाल। फांस। छल। धोखा।

फगुआ—सं० पु० [हिं०] वह वस्तु जो किसी को फाग के उपलक्ष्य में दी जाय। फागुआ खेलने के उपलक्ष में दिया जाने वाला उपहार।

फटकि—क्रि० स० [सं० स्फोटन, स्फुट=जुदा जुदा करना] सूप पर अन्न आदि को हिलाकर साफ करना। अन्न आदि का कूड़ा कर्कट निकालना। अच्छी तरह जाँच पड़ताल करना। ठोकना बजाना। जाँचना। परखना। आ० सत्यासत्य विवेक।

फनिंद—सं० पु० [सं० फणीन्द्र] शेष।

फरमाया—क्रि० स० [फा० फरमाना] आज्ञा देना। कहना।

फरिया—क्रि० अ० [सं० फल] फलना। फल देना। फल लगना।

फल—सं० पु० [सं०] बनस्पति में होने वाला वह बीज अथवा पोषक द्रव्य या गूदे से परिपूर्ण बीज कोश जो किसी विशिष्ट ऋतु में फूलों के आने के बाद उत्पन्न होता है। आ० अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ।

फहम—सं० स्त्री० [अ०] ज्ञान। समझ। विवेक। उ० जल चाहत पावक लहों विष होत अमी को। कलि कुचालि संतन कही सोइ सही मोंहि कुछु फहम न तरनि तमी को। तु०।

फाँटि—सं० पु० [सं० पट्ट] वस्त्र। कपड़ा। थान।

फाँस—सं० स्त्री० [सं० पाश] पाश। बंधन। फंदा। उ० माया मोह लोभ अरु मान। ए सब त्रयगुण फांस समान। सूर। सं० स्त्री० [सं० पनस] बाँस या सूखी लकड़ी या काठ का कड़ा रेशा जिसकी नोक काँटे की तरह हो जाती है। और जो शरीर में चुभ जाती है। महीन काँटा।

फाल—सं० पु० [सं० प्लव] डग। फलाँग। कदम भर का फासला। पैंड। उ० तीन फाल वसुधा सब कीनी सोइ वामन भगवान। सूर

फिटकी—सं० स्त्री० [अनु०] सूत के छोटे छोटे फुचड़े जो कपड़े की बुनावट में निकले रहते हैं। फुचरा। फिटकरी।

फुर—वि० [हिं० फुरना] सत्य। सच्चा। उ० सुदिन सुमंगल दायक सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई। तु०।

फुलवा—दे० फूल। आ० शरीर।

फूंक—सं० स्त्री० [अनु० फू फू] मुहँ को बटोर कर वेग के साथ छोड़ी हुई हवा। सांस। आ० उपदेश।

फूटल—क्रि० अ० [सं० स्फुटन, प्रा० फुडन] अकुँर शाखा आदि का निकलना। उत्पन्न होना। अँखुआ फूटना।

फूल—सं० पु० [हिं०] पुष्प। आ० सहस्र दल कमल।

फूलल—क्रि० अ० [हिं० फूल+ना (प्रत्य०)] फूलों से युक्त होना। खिलना। पुष्पित होना। उ० फूलै फरै न वेत जदपि सुधा बरसहिं जलद। तु०

फूले—क्रि० अ० [सं० स्फुटन] गर्व करना। घमंड करना। इतराना। मु० फूले फिरना=गर्व करते हुये घूमना। घमंड में रहना।

फोरि—क्रि० स० [स्फोटन, प्रा० फोडना] केवल आघात या दबाव से भेदन करना। धक्के से दरार डालकर उस पार निकल जाना। जैसे :—पानी बाँध फोड़कर निकल गया। तोड़ना। फोड़ना। विदीर्ण करना। दरकाना।

ब

बंग—दे० बाँग ।
बंझा—दे० बाँझ ।
बंद—सं० पु० [सं०] बंधन । कैद । गाँठ । गिरह ।
बंदि—सं० स्त्री० [सं० बंदिन] क़ैद । कारा निवास । उ० सिर पर कंस कबहु सुनिपाई । सकल तुमहि बंदि मांहि डराई । रघुनाथदास
बंधवत—सं० पु० [सं० बंध+वत] बंधन की भान्ति । बंधन में ।
बंधा—क्रि० अ० [सं० बंधन] बंधन में आना । बद्ध होना । फंसना ।
बंधू—सं० पु० [सं० बन्धु] भाई । भ्राता । मित्र । दोस्त । सहायक ।
बंब—सं० पु० [अनु०] नगारा । दुदंभी । डंका । बं बं शब्द ।
बंस—दे० बांस ।
बंसी—सं० स्त्री० [सं० वंशी] मछली पकड़ने का एक औजार । इस में एक लम्बी पतली छड़ी के एक सिरे पर डोरी बंधी होती है । और डोरी के दूसरे सिरे पर अंकुस के आकार की लोहे की एक कटिया बंधी रहती है । इसी कटिया में चारा लपेट कर रस्सी को जल में फेंकते हैं । जब मछली वह चारा खाने लगती है तब फंस जाती है और वह खींचकर निकाली जाती है ।
बकल्ला—सं० पु० [सं० वकल्ल] पेड़ की छाल । फल के ऊपर का छिलका । ग्रा० असार ।
बखत—सं० पु० [फा० वक्त] समय । काल ।
बखतरी—सं० पु० [फा० बकतर] बखतर । एक प्रकार की जिरह या कवच जिसे योद्धा लड़ाई में पहनते हैं । लोहे की मजबूत जाली का बना हुआ कोट जिसे लड़ाई के समय योद्धा लोग, सामने से वार बचाने के लिए पहनते हैं ।]
बग—सं० पु० [सं० बक] बगुला सफेद रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी । उ० बगउलूक झगरत गये अवध जहाँ रघुराउ । तु०
बगुजाल—सं० पु० [ग्रा०] रस्सी का जाल । जिस का उपयोग पानी में किया जाता है, उसके ऊपरी भाग में लौकियाँ बंधी रहती हैं ।
बगुला—दे० बग । ग्रा० वंचक । बक ध्यानी ।
बछ—सं० पु० [सं० वच्छ] बछड़ा । गाय का बच्चा ।
बजाय—क्रि० स० [हिं० बाजना] डंके की चोट करना ।

बजारै—सं० पु० [फा० बजार] वह स्थान जहाँ बिक्री के लिये दुकानों में पदार्थ रक्खे हों। हाट। पैंठ। उ० चारू बजार विचित्र अबारी।तु०

बटिया—सं० स्त्री० [सं० वाट= मार्ग] बाट। मार्ग। रास्ता।

बटेर—सं० स्त्री० [सं० वर्त्तक, प्रा० वट्टा] तीतर वा लवा की तरह की छोटी चिड़िया। आ० मन। अविवेक।

बटोरा—क्रि० स० [हिं० बटोरना। इकट्ठा करना। एकत्र करना। जुटाना।

बड़पने—सं० पु० [हिं० बड़+पन] बड़प्पन। बड़ाई। श्रेष्ठ या बड़ा होने का भाव। महत्व। गौरव।

बढ़वत—क्रि० स० [हिं० बढ़ाना] बढ़ाना। विस्तृत करना। फैलाना। पद, मर्यादा, अधिकार, विद्या, बुद्धि, सुख संपति आदि में आधिकार करना। दौलत या रुतबे वगैरह का ज्यादा करना।

बढ़ैया—सं० पु० [प्रा० बढ़ढई] बढ़ई काठ को छील और गढ़ कर अनेक प्रकार के सामान बनाने वाला। लकड़ी का काम करने वाला। आ० मन। बासना।

बतास—सं० स्त्री० [सं० बातास] वायु। हवा। आ० प्राणवायु।

बदकरमी—सं० पु० [फा० बद + हिं० करमी] बुरे काम करने वाला। कुकर्मी।

बदन—सं० पु० [फा०] शरीर। देह। मुँह।

बदनी—दे० बदि।

बदरिया—सं० स्त्री० [सं० बदली] फैल कर छाया हुआ बादल। घन। बादल। आ० मोह। अविद्या।

बदि—क्रि० स० [सं० कथन] बदना। निश्चित करना। ठहराना।

बध—सं० पु० [सं०] हनन। हत्या। क्रि० स० मार डालना।

बधावा—सं० पु० [हिं० बधाई] आनंद मंगल के अवसर का गाना बजाना। मंगलाचार।

बधिक—सं० पु० [सं० बधक] बध करने वाला। मारने वाला। हत्यारा। जल्लाद। व्याध। बहेलिया। आ० अज्ञान।

बन—सं० पु० [सं० वन] कपास का पौधा। उ० सुजन सुतरू बन, ऊख सम खल टंकिका रूखान। तु०। जगंल। कानन। आरण्य। जल। पानी। घर। आलय। उ० स्वामी बन षडि जांउ तो षुध्या व्यापै नग्री जांउ त माया।—गोरख। आ० संसार। शरीर।

बनकुकुही—सं० स्त्री० [सं० कुक्कुभ] बन मुर्गी।

बनवारी—सं० पु० [सं० बनमाली] श्रीकृष्ण । आ० ब्रह्म । जीवात्मा ।

बनसपती—सं० स्त्री० [सं० बनस्पति] जड़ी बूटी, पत्र पुष्प आदि ।

बन सीकसी—सं० पु० [सं० वन + सीकस] ऊसर प्रदेश ।

बनिज—सं० पु० [सं० वाणिज्य] व्यापार । रोजगार । सौदा ।

बनिजारा—सं० पु० [सं० वनिज + हारा] वह व्यक्ति जो बैलों पर अन्न लाद कर बेंचने के लिए एक देश से दूसरे देश को जाता है बनिया । व्यापारी । सौदागर । उ० चितउर गढ़ कर एक वन-जारा । सिंहल दीप चला बैपारा । जा० ।

बनिजिया—दे० बनिज ।

बनिया—सं० पु० [सं० वणिक] व्यापार करने वाला व्यक्ति। व्यापारी । वैश्य । आटा, चावल, दाल आदि बेंचने वाला । मोदी । आ० सद्गुरु ।

बनौरी—सं० पु० [हिं० बन्ना] बनरा । विवाह के समय का एक प्रकार का मंगल गीत । वि० [हिं० बनावटी] बनावटी ।

बपु—सं० पु० [सं० वपु] शरीर । देह । रूप । अवतार ।

बपुरा—वि० [सं० वराक] बेचारा । अशक्त । गरीब । अनाथ । उ० शिव विरंचि कह मोहे को है बपुरा आन ।–तु०

बपुरे—दे० बपुरा ।

बयाई—सं० स्त्री० [हिं० वया+ आई (प्रत्य०)]अन्न आदि तौलने की मजदूरी । तौलाई । हिसाब । किताब ।

बर—सं० पु० [सं० वर] वह जिसका विवाह होता हो । दूल्हा । पति । उ० जद्यपि वर अनेक जग माहीं । एहि कह सिव तजि दूसर नाहीं ।–तु०

बरजौं—क्रि० अ० [सं० वर्जन] मना करना । रोकना । निवारण करना । निषेध करना ।

बरतौं—क्रि० अ० [सं० वर्तन] बरतना । बरताव करना । व्यवहार करना ।

बरन—सं० पु० [सं० वर्ण] जन समुदाय के चार विभाग, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र । भेद । प्रकारा । किस्म ।

बरना—वि० [सं० वर्णनीय, वर्णय, वर्णित] किसी बात को सविस्तार कहना । कथन । बयान । उ० सो चौबीस रूप निज कहियत वर्णन करत विचार ।–सूर

बरमन—सं० पु० [सं० वर्म्मन्] क्षत्रियों की उपाधि जो उनके नाम के अंत में लगाई जाती है ।

बरबर—सं० स्त्री० [अनु०] व्यर्थ की बातें। बक बक। उ० मुनि भृगु पति के बैन मन ही मन मुसक्यात मुनि। अवै ज्ञान यह है न वृथा बकत, बर बर करत।—रघुराज।

बरबस—क्रि० वि० [सं० बल+बस] बल पूर्वक। जबरदस्ती। हठात। उ० खेलत में को काको गुसैयाँ। हरि हारे जीते श्री दामा बरबस ही कत करत रिसैयाँ।—सूर।

बरस—सं० पु० [सं० वर्ष] वर्ष। साल। उ० तापस भेष विशेष उदासी। चौदह बरस राम बन-बासी।—तु०

बरही—सं० स्त्री० [देश०] ईंधन का बोझ। आ० मानव शरीर।

बरात—सं० स्त्री० [हिं०] वरपक्ष के लोग जो विवाह के समय वर के साथ कन्या वालों के यहाँ जाते हैं। जनेत।

बराते—दे० बरात।

बरियाई—क्रि० वि० [सं० बलात] बलात। जबरदस्ती। उ० मंत्रिन पुर देखा बिन सांई। मों कह राज दीन बरियाई।—तु०।

बरी—क्रि० स० [सं० वट=वटना] बरना। बटना। कई तंतुओं, तागों या तारों को एक साथ मिला कर इस प्रकार ऐंठना या घुमाना कि वे सब मिलकर एक हो जाएँ। आ० रचना।

बरै—क्रि० स० [सं० वरण] बर या बधू के रूप में ग्रहण करना। पति या पत्नी के रूप में अंगीकार करना। व्याहना। उ० जो एहि बरै अमर सो होई। तु०

बरोह—सं० स्त्री० [सं० वट+रोह=उगने वाला] बरगद के पेड़ के ऊपर की डालियों में निकली हुई सूत या रस्सी के रूप की वह शाखायें जो क्रमशः नीचे की ओर बढ़ती हुई जमीन पर जाकर जड़ पकड़ लेती हैं। बरगद की जड़। आ० कामना।

बर्मन—दे० बरमन।

बलकवा—दे० बालक। आ० अज्ञान।

बलकहिं—क्रि० अ० [अनु०] बलकना। उबलना। उमड़ना। आवेश में होकर और का और बकना। उ० राज काज कुपथ कुसाज भोग रोग को है वेद बुधि विद्या जाय विवस बलकही। तु०

बसंत—सं० पु० [सं०] वर्ष की छः ऋतुओं में से प्रधान और प्रथम ऋतु जिसके अंतर्गत चैत्र और बैशाख के महीने माने गए हैं। नई पत्ती लगने और बहुत से फूल फूलने की सुन्दर ऋतु। बहार का मौसिम। छः रागों में दूसरा राग।

बसंदर—सं० पु० [सं० वैश्वानर] आग। उ० कथा कहानी सुनि शठ जरा। मानो घीव बसंदर परा। जा०। आ० त्रितापाग्नि।

बसाय—क्रि० अ० [हिं० बश] बश चलना। जोर चलना। उ० काटिय तासु जीभि जो बसाई। स्रवन मूंदि नतु चलिय पराई। तु०। क्रि० अ० [सं० वास] बसाना। सुगंध आना। बदबू आना।

बसावल—क्रि० स० [हिं० बसाना] बसाना। अबाद करना। जैसे गाँव बसाना।

बसती—सं० स्त्री० [सं० बसति] आबादी। बहुत घरों का समूह जिस में लोग बसते हैं। जनपद। खेड़ा। गाँव। कस्बा। नगर।

बसुधा—सं० स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

बसेरवा—दे० बसेरा

बसेरा—वि० [हिं० बसना] बास। नेवास। डेरा। बासा। रहना। बसना। आबाद होना।

बसेरी—क्रि० स० [हिं० बसना] रहना।

बहनी—सं० पु० [सं० वह्नि] अग्नि। आग। उ० अमृत मग तजि सुभाऊ बरषत कत बहनी। सूर।

बहनोई—सं० पु० [सं० भगनी पति] बहन का पति।

बहा—क्रि० अ० [सं० बहन] सन्मार्ग से दूर हो जाना। कुमार्गी होना। मारा मारा फिरना। भटकना।

बहिया—सं० पु० [सं० वाहक] बाहक। बैल लादने वाले व्यापारी

बही—दे० बहा।

बहीर—सं० स्त्री० [हिं० भीड़] भीड़। जन समुदाय। उ० ऐसे रघुवीर छीर नीर के विवेक कवि भीर की बहीर को समय के निकारिहौं। हनुमान।

बहुतक—वि० [हिं० बहुत+एक, अथवा स्वार्थे 'क'] बहुत से। बहुतेरे। उ० बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहि गगन बिमान। तु०

बहुतेरा—वि० [हिं० बहुत+एरा (प्रत्य०)] बहुत सा। अधिक।

बहुरि—क्रि० स० [हिं० बहुरना] [बहुरि=फिर कर] पुनः। फिर। इस के उपरांत। पीछे। अनंतर। उ० आगे चले बहुरि रघुराई। तु०

बहुरिया—सं० स्त्री० [सं० बधूटी, प्रा० बहूडिया] नई बहू। स्त्री।

बहुरे—क्रि० अ० [सं० प्रघूर्णन, प्रा० पहोलन] लौटना। बहुरना। फिर कर आना। वापस आना।

बहे—क्रि० अ० [सं० वहन] चलना।

बहोरी—दे० बहुरि।

बाँको—वि० [सं० बंक] बांका। टेढ़ा। तिरछा। उ० होय न बांको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै।

बाँग—सं० स्त्री० [फा०] अवाज। शब्द। पुकार। चिल्लाहट। वह ऊँचा शब्द जो नमाज का समय बताने के लिए कोई मुल्ला मसजिद में करता है। अजान।

बांछे—सं० स्त्री० [सं०] इच्छा। कामना। अभिलाषा। आकांक्षा।

बांझ—सं० स्त्री० [सं० बंध्या] वह स्त्री जिसे संतान होती ही न हो। बन्ध्या। आ० मिथ्या कल्पना।

बांस—सं० पु० [स० वंश] बांस। एक प्रकार का बनस्पति जो बहुत लम्बी होती है। लोग इससे छप्पर तथा टट्टर आदि बनाने के काम में लाते हैं। इसमें बहुत सी गांठे होती हैं, जिनके बीच का स्थान लम्बा और पोला होता है। प्रायः इसी से बंशी बनाई जाती है। आ० शून्य हृदय।

बाउर—वि० [सं० बातुल] बावला। पागल। मूर्ख। अज्ञान।

बाए—दे० बाये।

बाखरि—सं० स्त्री० [हिं० बखार] [स्त्री०अल्प० बखरी] मकान। गृह। गाँव। उ० जानत हौ गोरस को लेबो वाही बाखरि मांझ। सूर आ० बैखरी बाणी।

बागुलि—सं० पु० [देश०] बागुर। पक्षी या मृग आदि फंसाने का जाल, जिसे बागौर भी कहते हैं। आ० मायाजाल।

बाघ—सं० पु० [सं० व्याघ्र] शेर नाम का एक प्रसिद्ध हिंसक जन्तु आ० जीव। ज्ञान।

बाछ—सं० स्त्री० [ग्रा०] वस्त्र का किनारा जो कपड़ा बुनते समय फालतू पड़ा रहता है।

बाज—सं० पु० [अ० बाज] एक प्रसिद्ध शिकारी पक्षी जो प्रायः सारे संसार में पाया जाता है। उ० बाज पराये पानि पर तू पंछीनु न मारि। बिहारी। आ० चेतन। विवेक। ज्ञान।

बाजन—सं० पु० [हिं०] ऐसे यंत्र जो स्वर ताल उत्पन्न करने के लिए बजाये जाते हैं। बजाने के यंत्र। आ० अनहद बाजा।

बाजंतरी—दे० जंत्री

बाजी—सं० स्त्री० [फा०] खेल। तमाशा। दांव। आ० माया प्रपंच। मायिक पदार्थ।

बाजीगर—सं० पु० [फा०] जादू के खेल दिखाने वाला। जादूगर। ऐन्द्रजालिक। उ० कै कहूँ रंक कहूँ ईश्वरता नट बाजीगर जैसे। सूर। आ० चैतन्य।

बाजु—सं० पु० [फा० बाजू] भुजा। बाहु। बांह।

बाझी—क्रि० अ० [हिं० बझना] बंधना। फंसना। बंधन में पड़ना।
बाट—सं० पु० [सं० वाट=मार्ग।
बाटी—दे० बाट
बाटे—दे० बाट
बाढलि—क्रि० अ० [सं० वर्द्धन] बाढ़ना। अधिक होना। उन्नत होना।
बाढ़ि—सं० स्त्री० [हिं० बाढु] वृद्धि। तेजी। जोर।
बाढु—क्रि० स० [देश०] बहारना। सफाई करना। सं० स्त्री० [हिं० बढ़ना] बढ़ाव। वृद्धि।
बाद—अव्य० [सं० वाद, हिं० वादि= वाद करके, हठ करके व्यर्थ] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। बिना मतलब। सं० पु० [सं० वाद] विवाद। झगड़ा। हुज्जत। नाना प्रकार के तर्क वितर्क द्वारा बात का विस्तार। प्रतिज्ञा। शर्त। बाजी।
बादर—सं० पु० [सं० वारिद, विपर्य्य द्वारा वादरि] बादल। मेघ। उ० देति पांवडे अरघ चली लै सादर। उमगि चल्यो आनंद भुवन भुइँ बादर। तु०। आ० अज्ञानी जीव।
बादी—सं० पु० [सं० वादिन, वादी] मुद्दई। प्रतिद्वन्दी। वक्ता। बोलने वाला। आ० दुराग्राही।
बान—सं० स्त्री० [हिं० बनना] टेव। आदत। स्वभाव। अभ्यास। सं० पु० [सं० बाण] वाण तीर। लक्ष्य। आ० ज्ञान।
बाना—स० पु० [हिं० बनाना वा सं० वर्ण=रूप] वेशविन्यास।
बानि—दे० बान। उ० श्री रघुवीर की यह बानि। तु०। सं० स्त्री० [सं० वाणी] वाणी। वचन। उ० कटु बानि निपट निलज बैन बिलख हूँ। सूर
बानिज—दे० बनिज।
बानिया—दे० बनिया।
बानी—सं० पु० [सं० वणिक] बनिया। दे० बान। सं० स्त्री० [सं० वर्ण] वर्ण। रंग। आभा। दमक। सं० स्त्री० [सं० वाणी] बचन। शब्द। सरस्वती।
बाप—दे० जनक। आ० ईश्वर।
बापुरा—दे० बपुरा।
बाबा—स० पु० [तु०] पिता। पितामह। दादा। साधु सन्यासियों के लिये आदर सूचक शब्द। आ० गुरू।
बाबुल—स० पु० [हिं० बाबू] बाबू। आदर सूचक शब्द। भला मानुस। आ० जीव।
बाबू—दे० बाबुल।
बाम—वि० [सं०] प्रतिकूल। अहित में तत्पर। उ० विधि बाम की करनी कठिन जिन मातु कीन्ही बावरी। तु०। दुष्ट। नीच। सं० स्त्री० [सं० वाम] स्त्री। टेढ़ा। कुटिल। खोटा।

बायु—सं० स्त्री० [सं० वायु] वायु हवा । बात ।

बायें—वि० [हिं० बायाँ] बाईं ओर । विपरीत । आ० बाममार्ग ।

बाये—क्रि० स० [सं० व्यापन] बाना । फैलाना । जैसे मुँह बाना । मु० (किसी वस्तु के लिये) मुहँ बाना=लेने की इच्छा करना ।

बार—सं० पु० [सं० बाल] केश । रोम । होय न बाँको बार भक्त को जो कोउ कोटि उपाय करे । तु० । सं० स्त्री० [सं० वार] काल । समय । देर । बिलम्ब । बेर । उ० देखि रूप मुनि बिरति बिसारी । बड़ी बार लगि रहे निहारी । तु० । सं० पु० [सं० बाल] बाल । बालक । लड़का ।

बारहबाट—वि० [हिं० बारह+बाट] तितर बितर । छिन्न भिन्न । नष्ट भ्रष्ट । उ० रावन सहित समाज अब जाइहि बारह बाट । तु० ।

बारा—दे० बार ।

बारि—सं० स्त्री० [सं० अवार] किनारा । छोर पर का भाग । हाशिया । [सं० वारी=छोटी] लड़की । कन्य । नव यौवना । युवती । सं० पु० [सं०] जल । पानी ।

बारी—सं० स्त्री० [सं० बाटी, बाटिका=बगीचा, घेरा घर] बाग । बागीचा । उ० उत्तंग जमीर होय रखवारी । छुई को सकै राजा की बारी । जा० ।

बारेव—क्रि० स० [हिं० वारना] त्यागना । छोड़ना । दे० बारै ।

बारै—क्रि० स० [हिं० वारना] बालना । जलाना । प्रज्वलित करना ।

बारो—दे० बार

बालक—सं० पु० [सं०] लड़का । पुत्र । थोड़ी उमर का बच्चा । अबोध व्यक्ति । आ० अज्ञानी ।

बालन—सं० स्त्री० [देश०] बाला का बहुबचन । स्त्रियाँ । औरतें । आ० अज्ञानी ।

बाला—सं० पु० [सं० बाल] लड़का । बालक । [हिं० बाल] जो बालकों के समान अज्ञान हो । बहुत सीधा सादा । सरल । निरछल । आ० अज्ञान

बावरा—दे० बाउर

बास—सं० पु० [सं० वास] बू । गंध । महक ।

बासन—सं० पु० [देश०] बर्तन । भांडा । आ० शरीर

बासा—सं० पु० [सं० बास] निवास । रहने का स्थान । निवास स्थान ।

बासी—वि० [हिं०] बहुत देर का बना हुआ खाद्य पदार्थ

बाहन—सं० पु० [सं०] सवारी ।

बाहनहारा—सं० पु० [सं० वहन] चलाने वाला । फेकने वाला । आ० सद्‌गुरु

बाहनो—दे० बाहन

बाहर—वि० [सं० बाह्य] स्थान, पद अवस्था या सम्बंध आदि के विचार से किसी निश्चित अथवा कल्पित सीमा (या मर्य्याद) से हटकर अलग या निकला हुआ । भीतर या अन्दर का उलटा ।

बिंदा—सं० पु०[सं० बिंदु] वीर्य । विंदु । उ० जो कामी नर कृपण कहि करे आपनी रिंद । तदपि अकार्थ न दीजिये विद्या विंद रु जिंद । वि० सा०

बिंदु—दे० बिंदा

बिंदै—दे० विंदा

बिंधा—क्रि० स० [सं० बेधन] विधना । फंसना । उलझना ।

बिंब—सं० पु० [सं० विंव] प्रतिबिंब । छाया । अकस । झलक । अभास ।

बिआय—क्रि० स० [हिं० विया+ना (प्रत्य०)] वियाना । जनना । उत्पन्न करना । पैदा करना । गर्भ से निकलना ।

बिकट—वि० [सं० विकट] दुर्गम । कठिन । मुश्किल । भयंकर । भीषण । बक्र । टेढ़ा । उ० विकट भृकुटि कच घूंघरवारे । तु०

बिकल—वि० [सं० विकल] व्याकुल । घबराया हुआ । बेचैन ।

बिकार—सं० पु० [सं० विकार] खराब । बुरा । मनो वेग या प्रवृति । वासना । आ० विषय वासना । क्रोधादि । उ० सकल प्रकार विकार बिहाई । तु० ।

बिकाय—क्रि० अ० [सं० विक्रय] विकाना । विकना । विक्री होना ।

बिगसित—क्रि० अ० [सं० विकसना] खिलना । उदय होना । फूलना ।

बिगरायल—बि० [हिं० विगड़ना+ऐल (प्रत्य०) या विगड़े दिल] जो बिगड़ा हुआ हो । कुमार्ग पर चलनेवाला । बुरे रास्ते पर चलने वाला । उ० हौं तो बिगरायल और को बिगरो न बिगारिए । तु० ।

बिगारैं—क्रि० स० [हिं० बिगाड़ना] किसी वस्तु के स्वाभाविक गुण या रूप को नष्ट कर देना ।

बिगरो—क्रि० अ० [सं० विकृत] दुरवस्था को प्राप्त होना । खराब दशा में आना ।

बिगारो—क्रि० स० [सं० विकार] बिगाड़ना । कल्याण मार्ग से बिमुख करना । कुमार्ग में लगाना ।

बिगुरचा—सं० स्त्री०[सं० विकुचन अथवा विवेचन] विगूचना । वह अवस्था जिसमें मनुष्य किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है । असमंजस ।

अड़चन। कठिनता। दिक्कत। बंधन। उ० सूरदास अब होत बिगूचन भजिलै सारंग पान। सूर।

बिगुरचन, बिगुरचनि—दे० बिगुरचा।

बिगुरचे—दे० बिगुरचा।

बिगूचा—क्रि० अ० [सं० विकुंचन] विगूचना। संकोच में पड़ना। दिक्कत में पड़ना। अड़चन या असमंजस में पड़ना। उल्झन।

बिगोई—क्रि० स० [सं० विगोपन] बिगोना। नष्ट होना। नष्ट करना। विनाश करना। बिगाड़ना। उ० जिन्ह एहिं बारि न मानस धोये। ते कायर कलिकाल विगोये। तु०।

बिगूता—दे० बिगूचा।

बिगोय—दे० बिगोई।

बिचच्छन—सं० पु० [सं० विचक्षण] चतुर। निपुन। पारदर्शी। पंडित। विद्वान। बहुत बड़ा चतुर या बुद्धिमान। उ० परम साधु सब बात विचक्षण।—रघुराज।

बिछुरे—क्रि० अ० [सं० विच्छेद] बिछुड़ना। जुदा होना। अलग होना। वियुक्त होना।

बिछोहा—सं० पु० [हिं० बिछुड़न] बिछोह। जुदाई। बियोग। अलग।

बिछौलन—क्रि० स० [सं० विस्तरण] बिछाना। जैसे विछौना बिछाना।

बिटमाया—क्रि० अ० [सं० विरचन] विटमाना। रचना करना। निर्माण करना।

बिटिया—दे० धिय। आ० अविद्या।

बिड़ारत—क्रि० स० [हिं० बिडरना] बिडराना। इधर उधर करना। तितर वितर करना। नोचना।

बिढ़ै—क्रि० स० [हिं० बढ़ाना] कमाना। संचय करना। इकठ्ठा करना।

बित—सं० पु० [सं० वित्त] धन। द्रव्य। सामर्थ्य। शक्ति।

बिदारे—क्रि० स० [सं० विदारण] विदारना। चीरना। फाड़ना। नष्ट करना।

बिदेह—सं० पु० [सं०] वह जो शरीर रहित हो। राजा जनक का एक नाम।

बिदेही थान—सं० पु० [सं० विदेह+थान] विदेह मुक्ति। वह मुक्ति या मोक्ष जो जीवन मुक्त को मरने पर मिलती है।

बिद्ध—सं० पु० [सं० विद्ध] आबद्ध। बंधा हुआ।

बिधाता—दे० ब्रह्मा।

बिधि—सं० स्त्री० [सं० विधि] प्रकार। तरह। भाँति। ब्रह्मा। कोई कार्य करने की रीति। कार्यक्रम। प्रणाली। ढंग। नियम। कायदा। जैसे पूँजा की विधि। यज्ञ की विधि। व्यवस्था।

बिन जोग—सं० पु० [सं० बिन (उप०) + योग] बिना संयोग के। संयोग रहित। वियोग।

बिनसत—क्रि० अ० [सं० विनष्ट] विनशना। विनष्ट होना। नाश होना।

बिनस्टी—सं० पु० [सं० विनष्टि] नाश। पतन। लुप्त।

बिना—अव्य० [सं० विना] बगैर। जैसे आपके बिना यहाँ कोई काम न होगा।

बिनावन—क्रि०स० [देश०] बुनाना। वस्त्र बनवाना।

बिनु—दे० बिना।

बिनै—क्रि० स० [सं० वयन] जुलाहों की वह क्रिया जिस से वे सूतों या तारों की सहायता से कपड़ा तैयार करते हैं। बुनना।

बिनौरा—सं० पु० [विनौला] कपास का बीज। बनौर। कुकटी।

बिपरीत—वि० [सं० विपरीत] उलटा। विरुद्ध। प्रतिकूल।

बिबर्जित—वि० [सं० विवर्जित] मना किया हुआ। वर्जित। निषिद्ध। उपेक्षित। अनादरित। वंचित। रहित। उ० पेट की अग्नि बिबरजित। गो०

बिबि—वि० [सं० द्वि] दो। उ० बिबि रसना तन स्याम है, वक्र चलनि विष खानि। तु०

बिवेक–सं० पु० [सं०] सत असत का ज्ञान। समझ। विचार। बुद्धि। सत्य ज्ञान।

बिवेका—दे० बिवेक।

बिभिचारी—सं० पु० [सं० व्यभिचारिन] वह जो अपने मार्ग से गिर गया हो। मार्ग भ्रष्ट।

बिभूती—सं० स्त्री० [सं० विभूति] भभूत। वह भस्म जो शिव जी लगाया करते थे। शिव की मूर्ति के आगे जलने वाली अग्नि की भस्म जिसे शैव लोग मस्तक और भुजाओं आदि में लगाते हैं।

बिमलख—वि० [सं० विमलाक्ष] दिव्य दृष्टि। अंजन लगाये हुए नेत्र।

बिमूखा—वि० [सं० विमुख] मुहँ फेर लेना। अलग हो जाना। विरत। अतत्पर। निवृत। उदासीन।

बियान—क्रि० स० [हिं० वियाना] ब्याना। जनना। उत्पन्न करना। पैदाकरना। आ० अनेक रूप धारण करना।

बियाले—दे० बिआय।

बियापै—क्रि० अ० [सं० व्यापन] व्यापना। फैलना। ओत प्रोत होना। भरजाना।

बियाह—सं० पु० [सं० विवाह] शादी। व्याह।

बियाहल—क्रि० स० [सं० विवाह+ना (प्रत्य०)] विवाहना। देश

काल के अनुसार किसी स्त्री को अपनी पत्नी या स्त्री का किसी पुरुष को अपना पति बनाना। व्याहना।
बियाही—दे० बियाहल।
बिरंगी—वि० [हिं०बि (उप०)+ रंग] बिरंग। कई रंगों का।
बिरंचि—दे० ब्रह्मा।
बिरक्त—वि० [सं० विरक्त] जो अनुरक्त न हो। जिसे चाह न हो। उदासीन। साधु। सन्यासी।
बिरध—दे० वृद्ध।
बिरवा—सं० पु० [हिं०] वृक्ष। पौधा। वनस्पति। द्रुम। विटप। पेड़। श्रा० संसार। शरीर।
बिराजी—क्रि० अ० [सं० बि+ रंजन] विराजना। शोभित होना। स्थापित होना। शोभा देना। बैठना।
बिराने—वि० [फा० बेगाना] बिराना। पराया। जो अपने से अलग हो। दूसरे का। जो अपना न हो।
बिरुँ—दे० बिरवा।
ब्रिषभ—सं० पु० [सं० बृष] बैल।
बिलग—वि० [हिं० वि (उप०) +लगना] अलग। पृथक। जुदा। उ० बिलग बिलग है चलहु सब निज निज सहित समाज। तु०
बिलगाना—क्रि० स० [हिं० बिलग+ आना (प्रत्य०)] अलग करना। पृथक करना। दूर करना।
बिलंबे—क्रि० अ० [सं० विलंब] बिलमना। ठहर जाना। रुकना। किसी के प्रेम पाश में फंस कर कहीं रुक रहना।
बिललात—क्रि० अ० [सं० विलाप अथवा अनु०] बिललाना। बिलख बिलख कर रोना। विलाप करना। उ० औघाई सीसी सुलखि बिरह बरी बिललात। बिहारी।
ब्रिलसहु—क्रि० स० [सं० विलसन] बिलसना। भोग विलास करना। भोगना। उ० इन्द्रासन बैठे सुख बिलसत दूर किये भुवभार। सूर
बिलाई—सं० स्त्री० [हिं० बिल्ली] बिल्ली। बिलारी। मंजार। उ० नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई। तु०। श्रा० माया। वञ्चक गुरू।
बिलार—दे० बिलाई।
बिलैया—दे० बिलाई।
बिल्ली—दे० बिलाई। श्रा० कामना
बिष—सं० पु० [सं०] गरल। जहर जिस के खाने से मनुष्य मर जाता है। श्रा० अज्ञान। अविवेक। विषय।
बिषई—वि० [सं० विषयन] विलासी दे० बिषम।
बिषम—वि० [सं० विषम] भीषण। विकट। बेढब। जो सम या समान न हो।

बिषया—सं॰ स्त्री॰ [सं॰ विषय] भोग बिलास।

बिषहर—सं॰ पु॰ [सं॰ विषधर, प्रा॰ विसहर] सर्प। सांप। उ॰ भंवर केस वह मालति रानी। विसहर लरहि लेइ अरघानी। जा॰ [सं॰ विषहर] वह औषध या मंत्र आदि जिस से विष का प्रभाव दूर होता है। आ॰ मन। गुरु।

बिसमिल—सं॰ पु॰ [अ॰ बिस-मिल्लाह] श्री गनेश। आरंभ। आदि। क्रि॰ स॰ [अ॰ बिस-मिल] जबह करना।

बिसाहन—क्रि॰ स॰ [हिं॰ बिसाह] विसहना। मोल लेना। खरीदना। उ॰ कोई करै बिसाहनी काहू केर बिकाय। जा॰।

बिसुवा—सं॰ स्त्री॰ [सं॰ वेश्या] रंडी। वारंगना। कसबी।

बिसूरी—सं॰ स्त्री॰ [सं॰ विसूरण] फिक्र। सोच।

बिसेषा—सं॰ पु॰ [सं॰ विशेष] सार। मर्म। सं॰ स्त्री॰ विशेषता। खासपन।

बिहँगम—सं॰ पु॰ [सं॰ विहंगम] पक्षी। चिड़िया। सूर्य। आ॰ विहंगमार्ग।

बिहंडे—वि॰ [सं॰ विकट, प्रा॰-विहड़] विषम। कठिन। विशाल। ऊबड़ खाबड़। जैसे बीहड़ जंगल। वह भूमि जो पहाड़ी घाटी से कटी हुई और टूटी फूटी हो।

बिहान—सं॰ पु॰ [प्रा॰ विहाण] सबेरा। प्रातः काल। उ॰ परयो मनहु सुरसरि सलिल रवि प्रति बिंब विहान? वि॰। आ॰ जन्म।

बिहाना—दे॰ बिहान।

बिहानी—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बीतना] व्यतीत होना। गुजरना। उ॰ गई बीन मकु रैनि बिहाई। जा॰

बिहाय—दे॰ बिहानी। उ॰ बड़ी बिरह की रैनि यह क्यौ हूँ कै न बिहाय। रस निधि।

बिहाल—वि॰ [फा॰ बे + अ॰ हाल] व्याकुल। विकल। बेचैन। उ॰ लागत कुटिल कटाक्ष सर क्यों न होत बेहाल। वि॰।

बिहुरै—क्रि॰ स॰ [अप॰] उप-भोग करना। विहार करना।

बिहूना—वि॰ [हिं॰ विहीन] बिना। रहित।

बीगर—सं॰ पु॰ [सं॰ वृक] बीग। भेड़िया। आ॰ जीव।

बीज—सं॰ पु॰ [सं॰] बीया। तुख्म। दाना। प्रधान कारण। मूल प्रकृति। जड़। मूल। आ॰ वासना।

बीजक—सं॰ पु॰ [सं॰] कबीर साहेब का मुख्य ग्रन्थ। वह सूची जिस में गड़े हुए धन का संकेत होता है।

बीते—क्रि॰ अ॰ [सं॰ व्यातीत]

बीतना। समय का विगत होना। उ० कछु दिन पत्र भच्छकर बीते कछु दिन लीन्हो पानी।—सूर

बीबी—सं० स्त्री० [फा०] पत्नी। स्त्री। आ० सुमति। बुद्धि। विद्या

बीरज—सं० पु० [सं० वीर्य्य] शुक्र। रेत। बीज।

बीरा—सं० पु० [सं० वीर] शूर। बहादुर। वीर।

बीरू—दे० बीरा।

बीहर—वि० [देश०] बेहर। अचर स्थावर। आ० जड़।

बुँद, बुंद—दे० विंद। आ० वीर्य।

बुंदका—सं० पु० [सं० विंदु + का (प्रत्य०)] बिंदी। गोल टीका। आ० राग। विषयानुराग।

बुढ़िया—सं० स्त्री० [सं० वृद्धा] जिस की अवस्था अधिक हो गई हो। ५०, ६० वर्ष से ऊपर की अवस्था। बुड्ढी। आ० माया।

बुध—सं० पु० [सं०] बुद्धिमान अथवा विद्वान पुरुष।

बुधि—सं० स्त्री० [सं० बुद्धि] अकल। समझ। ज्ञान। विवेक या निश्चय करने की शक्ति।

बुरो—वि० [सं० विरुप [बुरा। जो अच्छा या उत्तम न हो। खराब। निकृष्ट। मंदा।

बूँद—दे० बिंदा। आ० वीर्य। शुक्र।

बूझ—दे० बूझा।

बूझा—क्रि० स० [हिं० बूझ (बुधि)] बूझना। समझना। जानना। पूछना। प्रश्न करना।

बूझि—दे० बूझा।

बूड़े—क्रि० स० [हिं० डूबना] डूबना। उ० बूड़े सकल समाज चढ़े जो प्रथमहि मोह बस। तु०

बूता—सं० पु० [हिं० वित्त] बल। पराक्रम। शक्ति। क्रि० स० वस्त्र धारण करना।

बृच्छ—दे० बिरवा

बृद्ध—वि० [सं०] बुड्ढा। चौथी अवस्था। बुढ़ापा।

बे—अव्य० [हिं० हे] छोटे के लिये एक सम्बोधन शब्द जो प्रायः अशिष्टता सूचक माना जाता है।

बेगर बेगर—अव्य० [देश०] अलग अलग। जुदा जुदा। भिन्न भिन्न।

बेगि—क्रि० वि० [सं० वेग] जल्दी से। शीघ्रता पूर्वक। चट-पट। फौरन। तुरंत।

बेचून—सं० पु० [फा०] उपमा रहित।

बेझा—सं० पु० [सं० वेध] निशान। लक्ष्य।

बेठ—सं० पु० [देश०] बेगार करना। अगाऊ प्राप्त किये हुए धन को चुकाना।

बेड़ा—सं० पु० [सं० वेष्ट] नदी

पार करने के लिये टट्टर आदि का बांध कर बनाया हुआ ढाँचा। तिरना। नाव। सं० पु० [हिं० वेढ़ना=घेरना] घेरा। रूँधना। बाढ़। खेत की रक्षा के लिये। चारों ओर से टट्टी बाँधकर कांटे बिछा कर या और किसी प्रकार से घेरना।

बेड़ी—सं० स्त्री० [सं० वलय] बेड़ी। लोहे के कड़ों की जंजीर जो कैदियों को पहिनाई जाती है जिससे वे स्वतंत्रा पूर्वक घूम फिर न सकें। आ० बंधन।

बेढ़ो—दे० बेढ़ा

बेता—दे० बैता

बेतूल—वि० [देश०] अव्यवस्थित।

बेद्—सं० पु० [सं० वेद] ज्ञान। श्रुति। हिन्दुओं का पवित्र धार्मिक ग्रन्थ जिनकी संख्या चार है। ऋग, यजुर, साम अथर्व आदि इन में प्रत्येक की कई संहितायें हैं।

बेदन—सं० पु० [सं०] दुःख या कष्ट आदि का होने वाला अनुभव। पीड़ा। व्यथा। तकलीफ।

बेदमुख—सं० पु० [सं० वेद+मुख] वेदोक्ति। श्रेष्ठ मुख। चार प्रकार।

बेदुवा—सं० पु० [सं०] वेदवाह। वेदों का ज्ञाता। वेदपाठी। श्रोत्रिय

बेधि—क्रि० स० [सं० बेधन] बेधना। छेदना। भेदना। प्रवेश करना। व्यापना।

बेधे, बेधै—दे० बेधि।

बेधो—दे० बेधि।

बेना—सं० पु० [सं० वेणु] बांस। आ० शून्य हृदय। वञ्चक।

बेर—सं० पु० [हिं०] एक प्रसिद्ध कंटीला वृक्ष जिस में एक प्रकार के लंबोतरे फल लगते हैं। आ० विषय। कुसंग। दुर्जन। स० स्त्री० [हिं० वार] बार। दफा। नदी या समुद्र का किनारा।

बेरइ—सं० स्त्री० [देश०] औषधियों के छोटे छोटे पौधे।

बेरुई—सं० स्त्री० [हिं० वेढना = घेरना] वह रोटी या पूरी जिस के बीच में दाल या पीठी भरी हो। आ० विषय।

बेरा—सं० पु० [देश०] नाव। आ० नरतन।

बेरी—दे० बेड़ी। आ० बंधन।

बेलि—सं० स्त्री० [सं० बल्लरी] बल्ली। लता। आ० माया।

बेलरी—दे० बेलि।

बेवहारा—सं० पु० [सं० व्यवहार] क्रिया। कार्य। काम। बर्ताव। इष्ट मित्रों का सम्बंध।

बेस—सं० पु० [सं० वेष] बाहरी रूप रंग और पहिनाव आदि। वेष।

बेसवा—दे० विसुवा। आ० इच्छा। जीवात्मा।

बेहद—वि० [फा०] जिस की कोई सीमा न हो । असीम ।

बै—सं० स्त्री० [सं० वय] बैसर । कंघी । जुलाहों के करघे में सूत का एक जाल ।

बैठावन—क्रि० अ० [हिं०] लकड़ी का एक औजार जिस से बाना बैठाया जाता है । स्थित होना । आसीम होना । आसन जमाना ।

बैतल—वि० [सं० वात्यायी] बातुल । विषधर । विकार फैलाने वाला ।

बैता—सं० स्त्री० [अ० बेत] पद्य । एक छंद का नाम । दो लाइन की गजल ।

बैन—सं० पु० [सं० बचन, प्रा० वयन] बचन । बात । उ० विप्र आइ माला दये कहै कुशल के बैन । –सूर

बैपार—दे० बनिज । आ० सांसारिक धन्धे ।

बैल—सं० पु० [सं० वलद] एक चौपाया जो हल में जोता जाता है । बृषभ । मूर्ख मनुष्य । आ० अज्ञान ।

बैलाना—क्रि० अ० [हिं० बौरा+ना] अस्थिर मति होना । विवेक या बुद्धि से रहित हो जाना ।

बैली—वि० [हिं० बैल] मूर्खता से युक्त

बैस—सं० स्त्री० [सं० वयस] अवस्था । उम्र ।

बैसा—क्रि० अ० [सं० वेसन] बैठना ।

बोइनि—क्रि० स० [सं० बपन] बोना । बीज को जमने के लिये जुते खेत या भुरभुरी की हुई जमीन में छितराना ।

बोइन्हि—दे० बोइनि

बोइया—दे० बोइनि

बोझै—क्रि० स० [सिं० बोझ] बोझना । लादना । नैया मेरी तनक सी पाथर बोझी भार । गिरधर

बोय—सं० स्त्री० [फा० बू] गंध । बास । सुगंध । उ० कल करील की कुंज ते उठत अतर की बोय । पद्माकर । आ० बासना ।

बोरै—क्रि० स० [हिं० बूड़ना] बोरना । डुबा देना । बोर देना । निमग्न कर देना । आ० व्यर्थ गंवा देना

बोलना—क्रि० अ० [हिं० बचन] बोलना । मुहँ से शब्द उच्चारण करना । बात चीत करना ।

बोहित—सं० पु० [सं० बोहित्थ] नाव । जहाज । उ० बंदौं चारिउ बेद भव वारिध बोहित सरिस । तु०

बौध—सं० पु० [सं० बौद्ध] बौध अवतार ।

बौधा—क्रि० वि० [सं० बहुधा] बहुत प्रकार से । अनेक ढंग से । प्रायः

बौरा—दे० बाउर

बौराई—दे० बौराना

बौराना—क्रि० अ० [हिं० बौर+ना (प्रत्य०)] पागल हो जाना। उन्मत्त हो जाना। विवेक या बुद्धि से रहित हो जाना।

ब्रह्म—सं० पु० [सं० ब्रह्मा] सृष्टि करता। बिधाता। ईश्वर। सत, चित, आनंद स्वरूप तत्व।

ब्रह्मंडा—सं० पु० [सं० चौदह भुवनों का समूह। सम्पूर्ण विश्व।

ब्यास—सं० पु० [सं० व्यास] वक्ता।

ब्योंतत—क्रि० स० [हिं० ब्योंत] नापना।

भ

भंजै—सं० पु० [सं० भंजन] भंग। ध्वंस। नाश। क्रि० स० तोड़ना। नाश करना।

भँड़हर—सं० पु० [हिं०] मिट्टी के बर्तन। आ० पिंड। शरीर।

भँवर—सं० पु० [सं० भ्रमर प्रा० भँवर] भौंरा। आ० मन। जीव। युवा।

भँवर जाल—सं० पु० [हिं० भंवर+जाल] संसार और संसारिक झगड़े बखेड़े। भ्रमजाल।

भँवरा—सं० पु० [सं० भ्रमर] हिंडोले की एक लकड़ी जो मयारी में लगी रहती है और जिस में डोरी व डंडी बंधी रहती है। उ० हिंडोरना माई झूलत गोपाल। संग राधा परम सुन्दरी चहूंधा ब्रजबाल। सुभग यमुना पुलिन मनोहर रच्यो रुचिर हिंडोर। लाल डांडी स्फटिक पटुली मणिन मरुआ घोर। भौंरा मयारिन नील मरकत खंचे पतित अपार। सरल कंचन खंभ सुंदर रच्यो काम श्रुति सार।—सूर

भईया—क्रि० अ० [सं० भव] होना। या होने का भाव। हुआ।

भक्तन—वि० [सं० भक्त] [स्त्री० भगतिन] सेवक। उपासक। भक्त लोग।

भखै—क्रि० स० [सं० भक्षण] भखना। खाना। भोजन करना। भोग करना। उ० नीलकंठ क्रीड़ा भखै मुख वाके है राम।

भग—सं० पु० [सं०] योनि। ऐश्वर्य। इच्छा। यत्न।

भच्छन—दे० भखै।

भजाऊ—क्रि० स० [सं० भजन] भजना। आश्रय लेना। आश्रित होना। पहुँचना। प्राप्त होना।

भजि—सं० स्त्री० [सं० भजन] खंड। भाग।

भटकि—क्रि० अ० [सं० भ्रमन] भटकना। व्यर्थ इधर उधर घूमते फिरना। भ्रम में पड़ना।

भतार—सं० पु० [सं० भर्तार] पति खाविंद । खसम । आ० ईश्वर ।

भनीजे—क्रि० स० [सं० भगन] भनना । कहना ।

भभरि—क्रि० अ० [हिं० भय] भभरना । भयभीत होना । डरना । उ० सभय लोक सब लोक पति चाहत भभरि भगान ।—तु०

भभरे—भभरि ।

भभूका—सं० पु० [हिं० भभक] ज्वाला । लपट । आ० विकार ।

भयल—दे० भया ।

भया—क्रि० अ० [सं० भव] हुआ

भयावनि—वि० [हिं० भय+आवन (प्रत्य०)] भयावन । डरावनी । भयानक । भयंकर ।

भरना—क्रि० स० [सं० भरण] पूर्ण करना । जुलाहों का नली में सूत भरना । सं० स्त्री० [हिं० भरना] करघे में की ढरकी । नार । भरनी ।

भरमित—वि० [हिं० भरमना] घूमना । चलना । भटकना ।

भरिया—वि० [हिं० भरना] भरना पर्ण करना ।

भरिष्ट—वि० [सं० भ्रष्ट] पतित । दूषित । जो खराब हो गया हो ।

भर्म—सं० पु० [सं० भ्रम] भ्रांति । संदेह । धोखा । भेद । रहस्य । किसी पदर्थ को और का और समझना । मिथ्या ज्ञान । संशय । शक ।

भल—वि० [सं० भद्र] भला । बढ़िया । अच्छा । उ० हृदय हेरि हारेउ सब ओरा । एकहिं भांति भलेहि भल मोरा । तु०

भलुइया—सं० स्त्री [सं० भल्लुकी] भालू । आ० लालची गुरु ।

भव—सं० पु० [सं०] उत्पति । जन्म । संसार । जगत । संसार का दुख । जन्म मरण का दुःख । [सं० भय] डर । उ० भव भय विभव पराभव कारिणी । तु०

भव चक्र—सं० पु० [सं०] संसार चक्र । जन्म मरण चक्र ।

भवन—सं० पु० [सं०] घर । मकान । प्रासाद । आ० शरीर । हृदय ।

भवसागर—सं० पु० [सं०] संसार सागर ।

भसम—सं० पु० [सं० भस्म] राख ।

भसुर—सं० पु० [हिं० ससुर का अनु०] पति का बड़ा भाई । जेठ

भाँटा—सं० पु० [सं० वंगण] एक वार्षिक पौधा जिस के फल की तरकारी बनाई जाती है । बैंगन । आ० तमोगुण । मोह ।

भाँडे—सं० पु० [सं० भाराड] भांडा । बरतन । बासन । पात्र । उ० काचै भांडे रहे न पारी । गो० आ० शरीर ।

भाँवरि—सं० स्त्री० [सं० भ्रमण]

अग्नि की वह परिक्रमा जो विवाह के समय वर और वधू मिलकर करते हैं, चारों ओर घूमना। आ० भ्रम गांठ।

भाई—सं० पु० [सं० भ्रातृ] बन्धु। सहोदर। भ्राता।

भाजिया—क्रि० अ० [हिं० भजना] भाजना। भागना। भाग जाना। भागा।

भाजै—दे० भाजिया।

भाठी—सं० स्त्री० [सं० भस्त्री] वह स्थान जहाँ मद्य चुवाया जाता है। भट्ठी।

भात—सं० पु० [प्रा० भत्त] पकाया हुआ चावल। विवाह की एक रसम। यह विवाह के दूसरे दिन होती है, इसमें बरातियों को भात खिलाया जाता है।

भान—सं० पु० [सं० भानु] सूर्य्य दिनकर। जगत को प्रकाशित करने वाला। आ० ब्रह्म-ज्योति।

भामिनि—सं० स्त्री० [सं० भामिनी] स्त्री। औरत। उ० कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। तु०। आ० माया।

भार—सं० पु० [सं०] बोझ। एक परिमाण जो बीस पसेरी का होता है।

भारती—सं० स्त्री० [सं०] सन्यासियों के दस भेदों में से एक।

भारी—वि० [हिं० भार] बोझिल। वजनी। गुरु। गरुवा। उ० लपटहि कोप पटहि तरवारी। औ गोला ओला जस भारी। जा०।

भाल—सं० पु० [सं० फाल] तीर का फल। तीर की नोक। भाला। बरछा। आ० वासना।

भितियन—सं० स्त्री० [सं० भित्ति] चित्र खींचने का आधार। वह पदार्थ जिस पर चित्र बनाया जाता है। दीवार। भीति।

भिन्न—वि० [सं०] अलग। पृथक। जुदा। इतर। दूसरा। अन्य।

भिस्त—सं० स्त्री० [फा० बहिश्त] बैकुंठ। स्वर्ग।

भीजे, भीजै—क्रि० स० [हिं० भीगना] भीजना। तर होना। भीगना। समा जाना। उ० एक भीजे चहले पड़े बूड़े बहे हजार। वि०।

भीट—सं० पु० [देश०] भीटा। ढूहे वाली जमीन। टीलेदार भूमि आ० हृदय।

भीगी—वि० [हिं०] तर। गीली। आर्द्र। आ० असमर्थ।

भीति—सं० स्त्री० [सं० भित्ति] भित्तिका। दीवार।

भीनिया—क्रि० अ० [हिं० भीगना] भीनना। भरजाना। समा जाना। उ० कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रंग भीनी। रसखान।

भुइ—सं० स्त्री० [सं० भूमि] पृथ्वी। भूमि। उ० विपत बीज बर्षा रितु चेरी। भुँइ भइ कुमति कैकई केरी। तु०

भुकान—क्रि० अ० [अनु० भूकना] भूँ भूँ या भौं भौं शब्द करना। आ० व्यर्थ बकना।

भुगुति—दे० भुगुती। उ० सुख बैकुंठ भुगुति औ भोगू। जा०

भुगुती—सं० स्त्री० [सं० भुक्ति] भोजन। अहार। विषयोपभोग। लौकिक सुख।

भुजा—सं० स्त्री० [सं०] बांह। हाथ।

भुतवा—सं० पु० [सं० भूत] प्रेत भूत। जिन। पिशाच।

भुलान—क्रि० अ० [हिं० भूलना] भ्रम में पड़ना। भूल जाना।

भुलाय—क्रि० अ० [हिं० भूलना] भटकना। भरमना। राह भूलना।

भुलाव—क्रि० अ० [हिं० भूलना] आसक्त होना। लुभाना। चूकना। गलती होना। धोखे में पड़ना।

भुवंग, भुवंगा—स० पु० [सं० भुजंग, प्रा० भुअंग] सांप। आ० अभिमान।

भुवंगम—दे० भुवंग। दे० माई री मोहि डस्यो भुवंगम कारो। —सूर

भूँकि—दे० भुकान।

भूँभुरि—सं० स्त्री० [सं० भू+भुर्ज] भूभल। गर्म रेत। गर्म राख व धूल। उ० जायहु बितै दुपहरी मैं बलि जाँऊ। भुँइ भूभुरि कस धरि हौ कोमल पांउ। प्रताप नारायण। आ० मानसिक ताप।

भूमि—दे० भुई। आ० हृदय।

भूमी—दे० भुइ।

भूला—क्रि० स० दे० भुलान।

भूलि—क्रि० अ० [भूलना] घमंड में होना। इतराना।

भेख—दे० बेस।

भेदा—सं० पु० [सं० भेद] मर्म। रहस्य। तात्पर्य।

भेली—सं० स्त्री० [देश० भैली] होना।

भेव, भेवा—दे० भेदा।

भैं—क्रि० अ० [सं० भ्रमि] घूमना घामना। चक्कर काटना।

भैंसा—सं० पु० [हिं०] भैंस नामक पशु का नर। भैंसा।

भैंसिन्हि—सं० स्त्री० [सं० महिष] गाय की जाति और आकार प्रकार का पर उस से बड़ा मादा चौपाया जिसे लोग दूध के लिए पालते हैं। आ० इन्द्रियाँ।

भोग—सं० पु० [सं०] सुख या दुख आदि का अनुभव करना या अपने शरीर पर सहना। सुख। बिलास। दुख। स्त्री संभोग। विषय। धन। गृह। अहार करना प्रारब्ध। देवता के आगे रखे जाने वाले पदार्थ। नैवेद्य।

भोगौ—क्रि० अ० [सं० भोग] भोगना। सुख दुख या शुभाशुभ कर्म फलों का अनुभव करना। आनंद या कष्ट आदि को अपने ऊपर सहन करना। भुगतना। सहना।

भोती—वि० [सं० भौतिक] शरीर सम्बंधी। शरीर का। भूत योनि से सम्बंध रखने वाला। [सं० बहुतर] बहुत। अनेक।

भोरा—वि० [देश०] भोला। सीधा। सरल। [हिं० भोली] मूर्ख। बेवकूफ।

भोरी—वि० [देश०] सीधी सादी भोली। मूर्ख।

भौंर—सं० पु० [हिं० भंवर] तेज पानी के बहाव में वह स्थान जहाँ पानी की लहर एक स्थान पर चक्राकार घूमा करती है। आवर्त्त।

भौ—वि० [सं० भव] उत्पन्न। जन्म। हुआ।

भौसागर—दे० भव सागर।

भ्रिंगी—सं० पु० [सं० भृंगी] एक प्रकार का गुंजार करने वाला पतिंगा। बिलनी नामक कीड़ा जो और कीड़ों को भी अपने समान बना लेता है।

म

मंगल—सं० पु० [सं०] एक प्रकार का गीत जो किसी शुभ अवसर पर गाया जाता है। मंगलाचरण।

मंजन—सं० पु० [सं० मज्जन] स्नान। नहान। उ० मज्जन करि सर सखिन समेता। तु०

मँजार—सं० पु० [सं० मर्जार] बिलार। बिल्ली। आ० वञ्चकगुरु। निर्भय।

मँजारी—वि० [सं० मर्जार + ई (प्र०)] बिल्ली जैसी क्रिया या भाव।

मंजूसा—सं० पु० [सं० मंजूषा] पिटारी। पत्थर। आ० गुफा।

मंझरिया—दे० मांझ।

मंड—सं० पु० [सं० मंडल] गोल फैलाव। वृत्ताकार या अंडाकार विस्तार। गोला। जैसे भूमंडल।

मंडवा—दे० माँडौ। आ० हृदय।

मंडा—क्रि० अ० [सं० मंडल] फैला।

मंडान—सं० पु० [सं० मंडल] घेरा।

मंत्र—सं० पु० [सं०] तंत्र के अनुसार वे शब्द वा वाक्य जिनके जप भिन्न भिन्न देवताओं की प्रसन्नता वा भिन्न भिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिये करने का विधान है। वेदों का वह भाग जिस में मंत्रों का संग्रह है। सत्य शिक्षा। हित की बात।

मंतर—दे० मंत्र।

मंदर—सं० पु० [सं० मंद्र] गंभीर-ध्वनि। मृदंग।

मंदिल—सं० पु० [सं० मंदिर] घर। देवालय। आ० शरीर।

मकरन्द—सं० पु० [सं०] फूलों का रस। फूलों की केसर। पराग। आ० विषय रस।

मकसूद—सं० पु० [अ०] अभिप्राय। मतलब। मनोरथ।

मचो—क्रि० अ० [मचना अनु०] प्रचलित होना। जाना।

मच्छ—सं० पु० [सं० मत्स्य] विष्णु के दस अवतारों में से पहला अवतार। मछली। आ० मन।

मटिया—सं० स्त्री० [सं० मृत्तिका] मिट्टी। आ० पंचभूत।

मड़राई—क्रि० अ० [सं० मंडल] मंडल बांध कर उड़ना। मँडराना।

मतंग—सं० पु० [सं०] हाथी।

मत—सं० पु० [सं०] निश्चित सिद्धांत। सम्मति। राय। भाव। आशय। मतलब। ज्ञाना।

मतवाली—सं० स्त्री० [सं० मत्त+वाली (प्रत्य०)] मस्ती। अभिमान। अहंकार। घमंड।

मतवाल—वि० [सं० मत्त+वाला] मतवाला। नशे आदि के कारण-मस्त। मद मस्त। नशे में चूर। आ० आत्म विभोर।

मति—सं० स्त्री० [सं०] बुद्धि। समझ। अक्ल। क्रि० वि० [सं० मा] निषेध वाचक शब्द। न। नहीं।

मते—दे० मत।

मद—सं० पु० [०] गर्व। अहंकार। घमंड। नशा करने वाली वस्तु।

मदन—सं० पु० [सं०] कामदेव। मन्मथ।

मदपी—वि० [सं०] मद पीने वाला। सुरापी। शराबी।

मद्दति—सं० भा० [अ० मदह] प्रसंशा। तारीफ।

मद्हति—दे० मद्दति।

मद्धे—अव्य० [सं० मध्ये] बीच में। में।

मधिम—वि० [सं० मद्धिम] अधम। नीच।

मध्य—सं० पु० [सं०] बीच में।

मन—सं० पु० [सं० मनस] प्राणियों में वह शक्ति व कारण जिससे उन में वेदना, संकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, बोध और विचार आदि होते हैं। अंतःकरण। चित्त। अंतःकरण की चार वृत्तियों में से एक जिससे संकल्प विकल्प होता है। उ० ऊधो मन न होय दस बीस। सूर।

मनमथ—दे० मदन।

मनसा—सं० स्त्री० [सं० मनस् व० अ० मनशा] कामना। इच्छा। उ० छिन न रहै नंदलाल इहाँ बिन जो कोउ कोटि सिखावै।

सूरदास ज्यों तन ते मनस अंत कहूं नहिं जावे। सूर।

मनुसा—सं० पु० [सं० मनुष्य] मनुष्य। आदमी। पति। खाविंद।

मरकट—सं० पु० [सं० मर्कट] बंदर। बानर। उ० डरइ जहाँ मरकट भट भारी। तु०। आ० जीव।

मरजीव—सं० पु० [हिं० मरना+जीन] मरजिया। पानी में डूब कर उसके भीतर से चीजों को निकालने वाला। समुद्र में डूब कर उसके भीतर से मोती आदि निकालने वाला। गोता खोर। उ० जस मरजिया समुर धँसि मारे हाथ आव तव सीप। जा०। आ० जीवात्मा।

मरन—सं० पु० [सं० मरण] मृत्यु। मौत।

मरम—सं० पु० [सं० मर्म] रहस्य। भेद। तत्व। स्वरूप। मासदिवस का दिवस भा मरम न जाने कोय। तु०

मरजादा—सं० स्त्री० [सं० मर्य्याद] मान। प्रतिष्ठा। गौरव।

मरिया—क्रि० अ० [सं० मरण] मरना। मृत्यु को प्राप्त होना।

मरोरे—क्रि० स० [हिं० मोड़ना] मरोड़ना। ऐंठना। छोड़ाना।

मरुआ—सं० पु० [सं० मरुव] एक प्रकार का फूल वाला पौधा इस की पत्ती भी फूल के समान सुगंधित होती हैं, जिसका आकार तुलसी के समान होता है, इसके फूल देवताओं पर चढ़ते हैं।

मरुवा—सं० पु० [सं० मंड या मेरु वा अन०] हिंडोले में वह ऊपर की लकड़ी जिस में हिंडोला लटकाया जाता है वा हिंडोले को लटकाने की लकड़ी जड़ी व लगाई जाती है। उ० कंचन के खंभ मयारि मरुआ डांडी खचित हीरा बिच लाल प्रवाल। रेशम बुनाई नव रतन लाई पालनो लटकन बहुत पिरोजा लाल। —सूर

मल—सं० पु० [सं०] शरीर से निकलने वाली मैल व विकार। ये मल बारह प्रकार के माने गए हैं। वासा (चर्बी) शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कर्णमल (खूँट) नख, श्लेष्मा (कफ) आँसू, शरीर के ऊपर जमी हुई मैल। पसीना।

मलयागिर—सं० पु० [सं० मलय गिरि] माल्यवान। मलय नामक पर्वत जो दक्षिण में है। वहाँ चन्दन अधिक और उत्तम उत्पन्न होता है मलयगिरि में उत्पन्न चंदन। उ० बेधी जानि मलय-गिरि बासा। सीस चढ़ी लोटहि चहुँ पासा। जा०। आ० सतसंग।

मलिन—वि० [सं०] मलयुक्त। मैला। सं० पु० पाप। दोष।

मवासी—सं० स्त्री० [हिं० मवास] कोट जिसके चारों ओर शत्रु से बचाव के लिए गहरी खाई होती है उसमें पानी भरा रहता है, बाहेर निकलने के लिए एक या दो फाटक रहते हैं। छोटा गढ़। गढ़ी। उ० कोट किरीट किये मतिराम करै चढ़ि मोर पखानि मवासी। मतिराम।

मसकीन—वि० [अ० मिसकीन] साधु। संत। फकीर। गरीब। दीन।

मसखरी—सं० स्त्री० [फा० मसखरा+पन (प्रत्य०)] दिल्लगी। हंसी। मजाक। उ० जो बहु झूठ मसखरी जाना। कलयुग सोइ गुनवंत बखाना। तु०

मसले—सं० पु० [अ०] सवाह। वह बात जो पूछने के योग हो। भेद।

मसि—सं० स्त्री० [सं०] लिखने की स्याही। काजल। कालिख। उ० जनु मुँह लाई गेरु मसि भए खरनि असवार। तु०

मसीद—सं० स्त्री० [अ० मस्जिद] मस्जिद। उ० मांगि के खैबो मसीद को सोइबो लेने हैं एक न देने हैं दोऊ। –तु०। मुसलमानों के एकत्र होकर निमाज पढ़ने तथा ईश्वर बन्दना करने के लिये विशिष्ट रूप में बना हुआ स्थान।

मसकल—सं० पु० [अ०] सिकली गरों का एक औजार जो हंसिया के आकार का होता है और जिसमें काठ का एक दस्ता लगा रहता है। इससे रगड़ने से धातुओं पर चमक आ जाती है। प्रायः तलवारें आदि इसी से साफ की जाती हैं। सैकल वा सिकली करने की क्रिया। आ० साधन।

महँ—अव्य० [प्रा० मँझ, सं० मध्य] में

महंगे—वि० [सं० महार्घ] महंगा। जिसका मूल्य साधारण या उचित की अपेक्षा अधिक हो। अधिक मूल्य पर बिकने वाला। उ० कारण अगर रहत है संगा। कारज अगर बिकत सो महंगा। वि० सा०

महंतो—सं० पु० [सं० महत=बड़ा] साधु मंडली या मठका अधिष्ठाता। साधुओं का मुख्या।

महजिद—दे० मसीद।

महतारी—सं० स्त्री० [सं० माता] माँ। माता। जननी। उ० कौशल्या आदिक महतारी आरति करत बनाई। तु०। आ० माया।

महतो—सं० पु० [सं० महतर] महतो। गाँव का मुखिया। सरदार। बड़ाई गुरुता वाला। श्रेष्ठ। उत्तम

महरम—सं० पु० [अ०] भेद का जानने वाला। रहस्य से परिचित।

महरा—वि० [हिं० महता] प्रधान। श्रेष्ठ। बड़ा। आ० गुरुपाद।

महल—सं० पु० [अ०] बहुत बड़ा और बढ़िया मकान। रनिवास। अंतः पुर। आ० अंतःकरण।

महा—वि० [सं०] अत्यंत। बहुत अधिक। बहुत बड़ा। भारी। उ० महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर। –तु०

महारस—सं० पु० [सं० महा+रस] सर्वश्रेष्ठ स्वाद। आ० योगानंद।

महि—दे० भुइ।

मांचा—क्रि० अ० [हिं० मचना] आरंभ होना। जारी होना।

मांजन—क्रि० स० [सं० मज्जन] जोर से मलकर साफ करना। सरेस को पानी में पका कर उससे तानी के सूत को रंगना। आ० अभ्यास करना।

मांजी—क्रि० अ० [हिं० मांजना] अभ्यास करना। साफ करना। आ० योग की क्रियाओं द्वारा शरीर को साफ करना।

मांझ—अव्य० [सं० मध्य] में। भीतर। बीच। अंदर। मध्य। उ० ब्रजहि चलो आई अब साँझ। सुरभी सबै लेहु आगे करि रैनि होय पुनि बनहि मांझ। –सूर

मांझा—सं० पु० [देश०] एक प्रकार का ढांचा जो गोड़ई के बीच में रहता है और पाई को जमीन पर गिरने से रोकता है।

मांडी—क्रि० स० [सं० मंडन] मचाना। ठानना।

माँडौ—सं० पु० [सं० मंडप] मंडप। विवाह का मंडप। मँडवा। उ० मांड़ो गड़ो रंग मंदिर के आंगन वेद विधान। रघुराज। आ० शरीर।

मांसु—सं० पु० [सं० मांस] आमिष पल। आ० भोग विलास। विषय

माँह—सं० पु० [फा० माह] मास। महिना।

माड़ि—क्रि० स० [सं० मंडन] माँडना। रचना। बनाना। सजाना संवारना।

माड़ी—सं० स्त्री० [सं० मंड] कपड़े या सूत के ऊपर चढ़ाया जाने वाला कलफ जो भिन्न-भिन्न कपड़े के लिये भिन्न भिन्न प्रकार से तैयार किया जाता है।

माई—दे० महतारी। आ० ममता। माया।

माखा—सं० पु० [सं० मक्षिका] माखी का नर

माखी—सं० स्त्री० [सं० मक्षिका] मक्खी। उ० चंदन पास न बैठे माखी। जा०। आ० माया।

माटी—दे० मटिया।

माता—सं० स्त्री० [सं० मातृ] जननी। जन्म देने वाली स्त्री। आ० माया।

मातु—वि० [सं० मत्त] उन्मत । मस्त । मत्त । बेसुध । दीवाना । पागल ।

माते—क्रि० अ० [सं० मत्त] मस्त होना । मस्त होने का भाव । नशे में होना । उ० जो अचवत मातहि नृप तेई । नाहिन साधु सभा जिन सेई । तु०

माथा—सं० पु० [सं० मस्तक] मस्तक । माथ । सिर ।

माथे—क्रि० वि० [सं० मस्तक, हिं० माथ] माथे पर । मस्तक पर । सिर पर ।

मादरिया—सं० स्त्री० [फा० मादर] माँ । माता । जननी । सं० पु० [मदारी] तमाशा करने वाला । बाजीगर । बंदर आदि नचाने वाला । आ० मन ।

मान—सं० पु० [सं०] अहंकार । गर्व । शेखी । सम्मान । इज्जत ।

मानवा—सं० पु० [सं० मानव] मनुष्य । आदमी । मनुज ।

मानसरोवर—सं० पु० [सं० मानस+सरोवर] हिमालय के उत्तर की एक प्रसिद्ध बड़ी झील । इसके आस पास की भूमि को हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषियों ने स्वर्ग कहा है । आ० अमृत कुंड । सतसंग ।

मानिक—सं० पु० [सं० माणिक्य] एक मणि का नाम । यह लाल रंग की होती है इस का पत्थर हीरे को छोड़ सब से कड़ा होता है । वि० । सर्व श्रेष्ठ । शिरोमणि । परम आदरणीय । आ० चैतन्यात्मा । मुक्त ।

मानू—दे० मन ।

माना—सं० स्त्री० [फा०] माता । माँ ।

माया—सं० स्त्री० [सं०] लक्ष्मी । धन । संपति । दौलत । अविद्या । अज्ञानता । भ्रम । छल । कपट । धोखा । चालबाजी । उ० धरि कै कपट भेष भिक्षुक को दसकंधर तहाँ आयो । हरि लीन्हो छिन में माया करि अपने रथ बैठायो । सूर । सृष्टि की उत्पति का मुख्य कारण । प्रकृति । ईश्वर की वह कल्पित शक्ति जो उसकी आज्ञा से सब काम करती हुई मानी गई है । इंद्रजाल । जादू । छलमय रचना । कोई आदरणीय स्त्री । बुद्धि । अक्ल । सं० स्त्री० [हिं० ममता] किसी को अपना समझने का भाव ममत्व । दया, अनुग्रह । आ० भले आय अब माया कीजै । जा०

मारग—सं० पु० [सं० मार्ग] राह । रास्ता । मार्ग । उ० दीप लेसि जगत कहँ दीन्हा । भा निरमल जग मारग चीन्हा । जा० । आ० संसार । सतसंग ।

मालिनि—सं० स्त्री० [सं० मालिनी] मालिन। माली की स्त्री। आ० सुरति। माया।

माहली—सं० स्त्री० [हिं० महल] अंतर में बसने वाली। हृदय में रहने वाली। आ० इच्छा। बासना।

मावासी—दे० मवासी।

मास—दे० माँह

माहुर—सं० पु० [सं० मधुर, प्रा० महुर=विष] विष। जहर। उ० दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन माहुर मीचू। तु०। आ० अज्ञान।

माहो—सं० स्त्री० [सं० मुग्धा] बहू। बधू। आ० माया।

मिताई—सं० स्त्री० [सं० मित्र, हिं० मीत+आई (प्रत्य०)] मित्रता। दोस्ती।

मितैयौ— सं० स्त्री० [सं० मित्रता] दोस्ती।

मिथुन आठ—सं० पु० [सं० मिथुन] मैथुन। शास्त्रों में मैथुन आठ प्रकार का कहा गया है। श्रवण, सुमिरन, कीर्तन, चिन्तन, एकांत बात करना, दृढ़ संकल्प, प्रयत्न, प्राप्ती।

मिथ्या—वि० [सं०] असत्य। झूठ।

मियाँ—सं० पु० [फा०] स्वामी। मालिक। पति। आ० जीवात्मा।

मियाना—वि० [फा०] न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा। मध्य आकार का। सं पु०[हिं० म्यान] कोश।

मीत—सं० पु० [सं० मित्र] मित्र। दोस्त। सुहृद। सखा। बन्धु।

मीरा—सं० पु० [फा० मीर] सरदार। प्रधान। नेता। धार्मिक आचार्य।

मुंडित—वि० [सं०] मुँडा हुआ।

मुकताई—सं० पु० [सं० मुक्त] मुक्त होने का भाव। क्रि० स० छुटकारा पाना। मुक्त होना।

मुकताहल—सं० स्त्री० [सं० मुक्ता] मोती। आ० सद्गुण। मुक्ति।

मुकरबा—सं० पु० [अ० मकबरा] कब्र। समाधि। बादशाहों, नवाबों और बड़े फकीरों की समाधियाँ। रोजा। दरगाह। वह इमारत जो कबर पर बनाई जाय।

मुकामा—सं० पु० [अ० मुकाम] ठहरने का स्थान। ठिकाना। पड़ाव। अड्डा।

मुक्ता—सं० पु० [सं० मुक्त] बंधन रहित। खुला हुआ।

मुक्ति—सं० स्त्री० [सं० मुक्त] मोक्ष। छुटकारा।

मुक्ती—दे० मुक्ति।

मुख—सं० पु० [सं०] मुहँ। आनन। वि० प्रधान। मुख्य।

मुगुध—वि० [सं० मुग्ध] मोह या

भ्रम में पड़ा हुआ। मूढ़। आसक्त। मोहित। लुभाया हुआ।

मुड़ाय—क्रि० स० [सं० मुंडन] सिर के सब बाल बनवाना। मुँड़ाना।

मुड़ावन—दे० मुड़ाय

मुगदर—सं० पु० [सं० मुग्दर] प्राचीन काल का एक अस्त्र जो दंड के आकार का होता था और जिसके सिरे पर बड़ा भारी गोल पत्थर लगा होता था। आ० मृत्यु।

मुद्दति—सं० स्त्री० [अ० मुद्दत] अवधि। आ० आयु

मुद्रा—सं० स्त्री० [सं०] गोरख पंथी साधुओं के पहनने का एक कर्ण भूषण जो प्रायः कांच या स्फटिक का होता है। यह कान की लौ के बीच में एक बड़ा छेद करके पहना जाता है। उ० श्रृंगी मुद्रा कनक खपर ले करिहौं जोगिन भेस। सूर।

मुनि—सं० पु० [सं०] वह जो मनन करे। ईश्वर, धर्म और सत्या सत्य का सूक्ष्म विचार करने वाला व्यक्ति। मनन शील महात्मा। तपस्वी। त्यागी। जैन साधुओं की एक श्रेणी।

मुये—क्रि० अ० [सं० मरण] मृत्यु को प्राप्त होना।

मुरगी—सं० स्त्री० [फा० मुर्गी] एक प्रसिद्ध पक्षी जो सफेद, पीले आदि कई रंग की होती है।

मुररिया—सं० स्त्री० [हिं० मुड़ना या मरोड़ना] मुर्री। दो डोरों के सिरों को आपस में जोड़ने की एक क्रिया। जिस में गांठ का प्रयोग नहीं होता है। केवल दोनों सिरों को मिलाकर मरोड़ या बट देते हैं।

मुरादी—सं० पु० [फा०] वह जो कोई कामना रखता हो। अभिलाषी। आकांक्षी।

मुरीद—सं० पु० [अ०] शिष्य। चेला। अनुगामी। अनुयायी।

मुरुष—वि० [सं० मूर्ख] बेवकूफ। अज्ञ। मूढ़।

मुवलि—क्रि० अ० [सं० मृत, प्रा० मिअ या मुअ+ना (प्रत्य०)] मरना। मृत होना।

मुवा—दे० मुवलि।

मुसकाई—सं० स्त्री० [हिं० मुसकराना] मुकराने की क्रिया या भाव। क्रि० स० आनन्दित होना।

मुसवन—सं० पु० [सं० मूष] चूहा का बहु बचन।

मुसाफ—सं० पु० [अ० मुसहफ] वह किताब जिसमें रसाले और सहीफे जमा हों। कुरान शरीफ।

मुसि—दे० मूसन।

मुसिन्ह—दे० मूसना।

मूंडी—सं० स्त्री० [सं० मुंड] सिर मस्तक।

मूंड़े—दे० मुंडित।
मूंदे—क्रि० स० [सं० मुद्रण] मूंदना। अच्छादित करना। बंद करना। ढाकना।
मूड—सं० पु० [सं० मुंड] सिर। कपाल। उ० नारि मुई घर संपति नासी। मूड मुड़ाय भये सन्यासी। तु०
मूठी—सं० स्त्री० [सं० मुष्टि, प्रा० मुट्ठि] मूठ। हाथ की वह मुद्रा जो उंगलियों को मोड़ कर हथेली पर दबा लेने से बनती है। बंधी हुई हथेली मुट्ठी।
मूढ़—वि० [सं०] अज्ञान। मूर्ख। जड़बुद्धि। बेवकूफ। अहमक। ठग। स्तब्ध। निश्चेष्ट। जिसे आगा पीछा न सूझता हो।
मूझते—क्रि० अ० [प्रा० मुह] मोह करना। घबड़ाना। मुझइ।
मूत्रा—सं० पु० [सं० मूत्र] शरीर के विषले पदार्थ लेकर प्राणियां के उपस्थ मार्ग से निकलने वाला जल। पेशाब। मूत।
मूर—सं० पु० [सं० मूल] मूल धन। असल। मूल। जड़। उ० कोई चले लाभ सो कोई मूर गंवाय। जा०। आ० चैतन्य। सत्यज्ञान।
मूल—सं० पु० [सं०] असल जमा या धन। असल पूंजी। उ० और बनिज में नाही लाहा होत मूल में हानि। आ० नर शरीर। जीवन्मुक्ति। स्वरूप का ज्ञान। दे० प० घ, मूलाधार चक्र।
मूला—सं० पु० [सं० मूल] पेड़ों का वह भाग जो पृथ्वी के नीचे रहता है। जड़। आदि। आरंभ। आदि कारण उत्पत्ति का हेतु।
मूस—सं० पु० [सं० मूषक] चूहा। आ० विषयासक्त जीव।
मूसन—क्रि० स० [सं० मूषण] चुरा कर उठा ले जाना। चुराना। उ० मूसत पांच चोर करि दंगा। रहत हितू है निस दिन संगा। वि० सा०।
मूसल—दे० मुसन।
मूसै—दे० मूसन।
मृगलोचनि—सं० स्त्री० [सं०] हिरण के समान नेत्र वाली स्त्री।
मृगा—सं० पु० [सं० मृग] पशु मात्र विशेषत: वन्य पशु। जंगली जानवर। हिरन। आ० संशय। मन
मेढुक—सं० पु० [सं० मडूक] एक जल और स्थल चारी जन्तु जो तीन-चार अंगुल से लेकर एक बालिश्त तक लंबा होता है। यह पानी में तैरता और जमीन में कूद कर चलता है। और टर्र टर्र शब्द करता है। मंडूक। दादुर। आ० अज्ञानी जीव। लोभ।
मेढ़ा—सं० पु० [सं० मेष] सींग वाला एक चौपाया जो लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा और घने रोयों से

ढका होता है। इसका रोयाँ बहुत मुलायम होता है और ऊन कहलाता है। श्रा० वञ्चक।

मेढ़ै—दे० मेढ़ा।

मेदिनी—दे० भुइ।

मेर—सं० पु० [सं०] सुमेरु पर्वत के समीप का एक पर्वत जिसकी ऊँचाई और फैलाव पुराणों के अनुसार ४० हजार कोस है। श्रा० मेरु दंड।

मेरु—सं० पु० [सं०] हिंडोले की दोनों स्तम्भ के बीच की लकड़ी को मेरु कहते हैं।

मेरुदंड—सं० पु० [सं०] पीठ के बीच की हड्डी। रीढ़।

मेली—वि० [हिं० मैली] विकार-युक्त। क्रि० स० [हिं० मिलना] मिली हुई।

मेलै—क्रि० स० [हिं० मेल+ना (प्रत्य०)] डालना। मिलाना। चलाना।

मेहतर—वि० [सं० महत्तर] बड़ा या श्रेष्ठ। सं० पु० [फा०] बुजुर्ग। सब से बड़ा। जैसे सरदार, शाहजादा, मालिक, हाकिम अमीर आदि। श्रा० ईश्वर।

मेहर—सं० स्त्री० [फा०] कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी।

मेहरबान—वि० [सं०] कृपाल। दयालु। अनुग्रह करने वाला।

मेहररुवा—दे० जोय।

मेहरा—सं० पु० [सं० मेघ, प्रा० मेंह] वर्षा। झड़ी। मेंह।

मैके—सं० पु० [सं० मातृ+का (प्रत्य०)] मायका। नैहर। पीहर। श्रा० निज पद।

मैगर—सं० पु० [सं० मदकल] मत्त हाथी। मस्त हाथी। मतवाला। वि० मत्त। मस्त (हाथी के लिये)

मैमंता—वि० [सं० मदमत्त] दे० माते

मोचित—क्रि० स० [सं० मुचन] मोचना। मुक्त किया हुआ। छोड़ना। छोड़ा हुआ। उत्पन्न।

मोछ—सं० पु० [सं० मोक्ष] किसी प्रकार के बन्धन से छूट जाना। आवागमन रहित होना। मुक्ति। नजात।

मोट—सं० स्त्री० [हिं० मोटरी] गठरी। मोटरी। उ० जोग मोट सिर बोझ आनि तुम कतधौ घोष उतारि। सूर।

मोटरी—दे० मोट। उ० आश्रम वरण कलि विवस भये निज निज मरजाद मोटरी सौं डार दी।

मोटी—सं० स्त्री० [हिं०] स्थूल। श्रा० मोटी माया।

मोतिया—दे० मोती। श्रा० ज्ञान।

मोती—सं० पु० [सं० मौतिक प्रा० मोत्तिश्र] एक प्रसिद्ध बहु मूल्य रत्न जो छिछले समुद्रों में

अथवा रेतीले तटों के पास सीपी से निकलता है। आ० सद् उपदेश। गुरुज्ञान।

मोदाद्—सं० स्त्री० [फा०] स्याही। उ० मुदादे फ़िक यहाँ तक भरी है सीने में, शबीहे यार खिंचे पांच सात इतनी है। अखतर शाह।

मोम—सं० पु० [फा०] वह पदार्थ जिस से शहद की मक्खियाँ अपना छत्ता बनाती हैं। यह चिकना और नर्म होता है।

मोर—सर्व० [मे + रा] मैके सम्बंध कारक का रूप। मुझ से सम्बंध रखने वाला। मम।

मोरही—क्रि० स० [मुड़ना का प्रे०] मोड़ना। फेरना। लौटाना।

मोलना—सं० पु० [आ० मौलाना] मौलवी। मुल्ला।

मोह—सं० पु० [सं०] कुछ का कुछ समझने वाली बुद्धि। भ्रम। भ्रांति शरीर और सांसारिक पदार्थों को अपना या सत्य समझने की बुद्धि जो दुःख दायिनी मानी जाती है। उ० सांचहु उन के मोह न माया। उदासीन धन धाम न जाया। तु०

मोहड़े—सं० पु० [हिं० मुह + डा (प्रत्य०)] मोहड़ा। मुहँ। मुख।

मोहू—दे० मोह।

मोहनो—वि० स्त्री० [सं०] मोहने वाली। चित्त को लुभाने वाली।

मोहा—क्रि० अ० [सं० मोहन] मोहना। किसी पर आशिक या अनुरक्त होना। मोहित होना। रीझना। उ० देखत रूप सकल सुर मोहे। तु०

मोहित—वि० [सं०] मोह या भ्रम में पड़ा हुआ। मुग्ध। मोहा हुआ।

मोहिसि—क्रि० स० [सं० मोहन] मोहना। अपने ऊपर अनुरक्त करना। मुग्ध करना। मोहित करना। लुभा लेना। भ्रम में डाल देना। संदेह पैदा कर देना। धोखा देना।

मौन—वि० [सं० मौनिन्] चुप रहने वाला। न बोलने वाला। मौन धारण करने वाला। मुनि।

मौर—सं० पु० [सं० मुकुट, प्रा० मउड़] एक प्रकार का शिरोभूषण जो ताड़ पत्र या खुखड़ी आदि का बनाया जाता है। बिवाह में बर इसे अपने सिर पर पहनता है। उ० सोहत मौर मनोहर माथे। तु०। आ० कुंडलिनी।

मौरसी—क्रि० स० [हिं० मौर + ना (प्रत्य०)] वृक्षों पर मंजरी लगना। आम आदि पेड़ों पर बौर लगना। फूल आना।

म्रितक थान—सं० पु० [सं० मृतक+ स्थान] श्मशान भूमि। वह स्थान जहाँ मुर्दे जलाए या गाड़े जाते हैं।

य

याद्—सं० स्त्री० [फा०] स्मरण ।

ये—सर्व० [सं० इदं] निकट की वस्तु का निर्देश करने वाला एक सर्व नाम, जिसका प्रयोग वक्ता और श्रोता को छोड़ कर और सब मनुष्यों, जीवों तथा पदार्थों आदि के लिए होता है ।

र

रंक—वि० [सं०] धनहीन । गरीब । दरिद्र । कंगाल । उ० बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिरछत्र धराई ।—सूर

रंग—सं० पु० [सं०] वर्ण । शरीर का ऊपरी वर्ण । क्रीड़ा । कौतुक । खेल । आनंद, उत्सव । मजा । मन का बेग या स्वछन्द प्रवृति । मौज । प्रेम ।

रंगिया—क्रि० अ० [हिं० रंग+इया (प्रत्य०)] रंगना । प्रेम में लिप्त होना । आशक्त होना ।

रंगी—वि० [हिं० रंगी+ई (प्रत्य०)] आनंदी । मौजी । दे० रंगिया ।

रंजन—सं० पु० [सं०] प्रसन्नता । प्यार ।

रंभन—क्रि० अ० [सं०] बोलना । शब्द करना । लिप्त होना ।

रचंते—दे० रचै ।

रचल—क्रि० स० [सं० रचना] बनाना । सिरजना । निर्माण करना ।

रचि—क्रि० स० [सं० रचना] संवारना । सजाना । उ० भूषण बसन आदि सब रचि रचि माता लाड़ लड़ावै ।—सूर

रचेउ—सं० स्त्री०[सं० रचना] रचना । बनावट । निर्माण ।

रचै—क्रि० अ० [सं० रंजन] अनुरक्त होना । उ० परनारि से रचै हैं प्रिय ।—पद्माकर

रज—सं० पु० [सं० रजस] प्रकृति के तीन गुणों में से एक, जो चंचल प्रवृति करने वाला, दुख जनक और काम, क्रोध लोभ आदि को उत्पन्न करने वाला माना गया है। सत्त्व तथा तम दोनों गुणों को यह संचालित करता है, और इसी के द्वारा मनुष्य में सब प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा उत्पन्न होती है । उ० रज राजस आकाश रज रज युवती में होय । रज धुली रज पाप कहि रज जल निर्मल धोय ।—नंददास

रजनी—सं० स्त्री० [सं०] रात । रात्रि । निशा । आ० अज्ञान ।

रजु—दे० जेवरी

रटत—क्रि० स० [अनु०] रटना । किसी शब्द को बार-बार कहना । उ० चातक रटत त्रिषा अति ओही ।—तु०

रतन—सं० पु० [सं० रत्न] कुछ विशिष्ट छोटे चमकीले बहुमूल्य पदार्थ विशेषतया खनिज पदार्थ या पत्थर। मणि। जवाहिर। माणिक्य। मानिक। लाल। जो अपने वर्ग या जाति में सबसे उत्तम हो। हमारे यहाँ हीरा, पन्ना, पुखराज, मानिक, नीलम, गोमेद, लहसुनिया मोती और मूंगा नव रत्न माने गये हैं। इसके अतिरिक्त पुराणों आदि में और भी अनेक रत्न गिनाये गये हैं। आ० आत्मधन। मनुष्य जीवन। ज्ञान। सद्‌गुण। चैतन्य।

रतनाई—दे० रतनारी।

रतनारी—सं० स्त्री० [सं० रक्त] लाल। सुर्ख। ललरी लिए हुए।

रति—सं० स्त्री० [सं०] प्रीति। प्रेम। अनुराग।

रतियो—क्रि० वि० जरा सा। रत्ती भर। किंचित। रंचमात्र।

रवदे—सं० पु० [हिं० रवड़ना] कीचड़।

रमन—सं० पु० [सं० रमण] घूमना। विचरना। आनंदोत्पादक क्रिया। विलास। क्रीड़ा। केलि।

रमसि—क्रि० अ० [सं० रमण] रमना। अनुरक्त होना। लग जाना।

रमि—क्रि० अ० [सं० रमण] व्याप्त होना। चारों ओर भरपूर होकर रहना।

रमुराई—सं० पु० [सं० राम+हिं० राय+ई (प्रत्य०)] राम राव। जीवात्मा।

रमे, रमै—क्रि० अ० [सं० रमण] आनंद पूर्वक इधर उधर घूमना। विहार करना। मनमाना घूमना। विचरना।

रमैनी—सं० स्त्री० [देश०] एक छन्द विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्रायें होती हैं। एक मात्रिक छंद। चौपाई। वेद शास्त्र के विचारों में रमन कराने वाली बाणी।

रमैया—सं० पु० [हिं० राम+ऐया (प्रत्य०)] राम। उ० वहां सब संकट दुर्घट सोच तहां मेरो साहेब राखै रमैया तु०। आ० चैतन्यात्मा।

ररा—वि० [हिं० रार = झगड़ा] रार करने वाला। झगड़ालू। आ० मन।

रवि—सं० पु० [सं०] सूर्य। प्रकाश करने वाला। दिवाकर। आ० ज्ञान

रविसुत—सं० पु० [सं०] यम। काल

रवै—क्रि० अ० [हिं० रव=शब्द] शब्द करना। बोलना।

रस—सं० पु० [सं०] कोई तरल या द्रव पदार्थ। जल। पानी। बनस्पतियों या फलों आदि में वह जलीय अंश जो उन्हें कूटने दबाने या निचोड़ने से निकलता है।

आनंद। मजा। आ० सार वस्तु।

रसना—सं० स्त्री० [सं०] जिह्वा। जीभ। जबान।

रसरी—दे० रज्जु।

रसाल—सं० पु० [सं०] आम। वि० [सं०] मधुर। मीठा।

रसिक—सं० पु० [सं०] रस लेने वाला। प्रेमी। भक्त। भावक।

रसिया—सं० पु० [सं० रसिक या रस+हिं० इया (प्रत्य०)] रस लेने वाला। रसिक।

रहँटा—सं० पु० [हिं० रहँट] वह यंत्र जिससे सूत काता जाता है। चर्खा।

रहनि—सं० स्त्री० [हिं० रहना] आचरण। चाल ढाल। रहन। उ० सोइ विवेक सोई रहनि प्रभू हमहि कृपा करि देहु। तु०

रहिमाना—सं० पु० [अ० रहीम] खुदा। ईश्वर का एक नाम।

रांची—क्रि० अ० [सं० रंजन] अनुरक्त होना। प्रेम करना। चाहना उ० मन काचै नाचै बृथा सांचै रांचै राम।-वि०

रांड—सं० स्त्री० [सं० रंडा] विधवा। बेवा।

राई—सं० स्त्री० [सं० राजिका, प्रा० राइआ] एक प्रकार की बहुत छोटी सरसों। आ० बुद्धि।

राउर—सर्व० [प्रा० राय+उर] आप। आ० जीवात्मा। गुरु। आत्मतत्व।

राऊ—सं० पु० [सं० राजा प्रा० राव] राजा। नरेश।

राखहु—क्रि० स० [हिं० राखना] रोक रखना। [हिं० रखना] धरना। उपस्थित न करना। अलग रखना।

राग—सं० पु० [सं०] अनुराग। प्रेम। प्रीति। मत्सर। ईर्ष्या। द्वेष। उ० सो जन जगत जहाज है, जाके राग न दोष। तु०

राछ—सं० पु० [सं० रक्ष] जुलाहों के करघे में एक औजार जिससे ताने का तागा ऊपर नीचे उठता और गिरता है। यह दो नरसलों का होता है जिसके बीच में ऊपर नीचे तागे बंधे होते हैं। और जिन के बीच से ताने के तागे एक एक करके निकाले जाते हैं।

राज—सं० पु० [सं० राज्य] देश का अधिकार या प्रबन्ध। हुकूमत। राज्य। शासन।

राजा—सं० पु० [सं० राजन्] स्वामी। मालिक। आ० जीव। मन।

राता—क्रि० अ० [सं० रक्त, प्रा० रत्त+ना (हिं० प्रत्य०) अनुरक्त होना। आशिक होना। उ० जिन कर मन इन सन नहि राता। तिन जग बंचित किये बिधाता। तु०

राम—सं० पु० [सं०] ईश्वर। भगवान। दसरथ नंदन राम। आ० रमैया राम। उ० रमन्ते

योगिनो यस्मिन्निति रामः। चैतन्य राम। आत्माराम।

रामरा—सं० पु० [सं० राम+रा] राम। आ० जीव।

रारि—सं० पु० [सं० राटि, प्रा० राड़ि=लड़ाई] रार। झगड़ा। टंटा। तकरार। आ० विषयभोग।

रारी—दे० रारि।

रावल—सं० पु० [प्रा० राउल] राजा। प्रधान। सरदार। आ० जीव।

रास—सं० स्त्री० [सं० राशि] एक तरह की बहुत सी चीज़ों का समूह। ढेर। पुँज। जैसे अन्न की राशि। आ० सद्गुण। सात्विक भाव।

राह—सं० स्त्री० [फा०] मार्ग। पथ। रास्ता। प्रथा। रीति। चाल। नियम। कायदा। आ० कर्म। उपासना। ज्ञान।

राही—सं० पु० [फा०] राहगीर। मुसाफिर। पथिक। यात्री। आ० कर्मी। उपासक।

रिसाल—सं० पु० [सं० रसाल] आम।

रीता—वि० [सं० रिक्त] खाली। रिक्त।

रीधि सीधि—सं० स्त्री० [सं० ऋद्धि सिद्धि] समृद्धि और सफलता। उ० रीधिसिधि संपत नदी सुहाई। उमंग अवध अबुंध पहँ आई। तु०

रुआ—सं० पु० [हिं० रोंवा] सेमल के फूल के अन्दर से निकला हुआ धुआ। भूआ।

रुधिर—सं० पु० [सं०] रक्त। शोणित। लहू। खून। शरीर का रक्त। माता का रज।

रुसवा—क्रि० स० [हिं० रोष] रुसना। रोष करना। नाराज होना। रूठना। उ० रुसि रहे तुम पूस में यह धौं कौन समान।—पद्माकर

रूख—सं० पु० [सं० वृक्ष, प्रा० रुक्ख] पेड़। वृक्ष। वि० [सं० रुक्ष, प्रा० रुक्ख] उदासीन। विरक्त। उ० नाहिन राम रांज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे। तु०

रूखरा—वि० [सं० रूक्ष, प्रा० रुक्ख] सूखा। शुष्क। नीरस।

रूप—सं० पु० [सं०] शकल। सूरत। आकार। चिन्ह। पता। निशान। शरीर। देह। उ० मशक समान रूप कपि धरी। तु०

रूम—सं० पु० [फा०] टर्की या तुर्की देश का एक नाम। आ० पीठ।

रेंगडु—क्रि० अ० [सं० रिंगण] रेंगना। चलना। धीरे धीरे चलना। उ० गऊ सिंह रेंगहि एक बाटा। जा०। सरकना।

रेंड—सं० पु० [सं० एरण्ड] एक पौधा जो ६, ७ हाथ ऊँचा होता है। और जिस की पेड़ी और टहनी पोली तथा मुलायम होती है।

रे—अव्य० [सं०] सम्बोधन शब्द।

रेख—सं० स्त्री० [सं० रेखा]

चिन्ह। निशान। उ० ना ओहि ठांव न ओहि बिनु ठाँऊ। रूप रेख बिन निरमल नाऊ। जा०। आ० वासना।

रेखा—सं० स्त्री० [सं०] किसी वस्तु का सूचक चिन्ह। दृढ़ अंक।

रेत—सं० स्त्री० [सं० रेतजा] बालू। आ० भ्रम।

रेन—सं० स्त्री० [सं० रेणु] धूल। बहुत छोटे छोटे कण। परमाणु। बालू के कण।

रैनि—सं० स्त्री० [सं० रजनी] रात्रि। उ० ओहि छांह रैनि होय आवै। जा०। आ० अज्ञान।

रैनी—दे० रैनि

रैयति—सं० स्त्री० [अ० रअय्यत] प्रजा। रिआया। रैयत। उ० सुनी शत्रु मित्र की नृप चरित्र की रय्यति रावत बात। के०। आ० संसारी।

रोंपिया—क्रि० स० [सं० रोपण] गाड़ना। पौधा जमीन में गाड़ना। बोना।

रोजा—सं० पु० [फा०] व्रत। उपवास। वह व्रत जो मुसलमान रमजान के महिने में ३० दिन तक रहते हैं और जिसके अंत होने पर ईद होती है।

रोझ—सं० पु० [देश०] नील गाय। गवय। आ० मन की वृतियाँ।

रोपिन्हि—क्रि० स० [सं० रोपण] स्थापित करना। रोपना।

रोहु—सं० पु० [देश०] नील गाय। आखेट में सहायता देने वाला व्यक्ति विशेष। आ० मन।

रोहू—सं० स्त्री० [सं० रोहिष] एक प्रकार की बड़ी मछली। आ० मन।

रौंस—सं० स्त्री० घठा। निशान। लकीर।

ल

लंगर—सं० पु० [देश०] लग्घर। चील की तरह का एक शिकारी पक्षी। आ० विवेक।

लंपट—वि० [सं०] व्यभिचारी। विषयी। कामी। कामुक। उ० लोभी लंपट लोलुप चारा। जो ताकहि परधन पर दारा। तु०

लखाई—क्रि० स० [हिं० लखाना] दिखाना। अनुमान करा देना। समझा देना। सुझा देना। उ० मेरोइ फोरिबे जो कपार किधौं कछु काहू लखाई दयो है। तु०

लगवार—सं० पु० [हिं० लगना=प्रसंग करना+ वार (प्रत्य०)] स्त्री का उपपति। यार। आशना। आ० देवी देवता। ईश्वर।

लगार—सं० स्त्री० [हिं० लगन+आर (प्रत्य०)] लगन । प्रीति । लगावट । मुहब्बत ।

लगामी—सं० स्त्री० [फा० लगाम+ई (प्रत्य०)] लगाम लगाने की क्रिया । लगाम लगाना ।

लचपचि—क्रि० वि० [सं० लूच] अस्त व्यस्त । ढीला ढाला । किसी गांठ के ढिले ढाले होने पर उसे लचपच होना कहते हैं ।

लचाय—क्रि० स० [हिं० लचना का स० रूप] लचाना । लचकाना । झुकाना ।

लच्छ—सं० पु० [सं० लक्ष] सौ हजार की संख्या । लाख । लक्ष ।

लछ—सं० पु० [सं० लक्ष्मी] धन-संपति । दौलत । उ० लच्छि ललित ललित करतल छबि अनुपम धन । तु०

लटापटि—सं० स्त्री० [हिं० लटपटाना] लपटने की क्रिया या भाव । लड़ाई झगड़ा । भिड़ंत । उ० लटापटी होवन लगी मोहि जुदा करि देहु । गिरधर ।

लदनुँवा—वि० [हिं० लादना] लदुवा । लादने वाले । लादने का काम करने वाले । बोझ ढोने वाले । आ० तत्व ।

लपसी—सं० स्त्री० [सं० लप्सिका] थोड़े घी का हलवा ।

लबराई—सं० स्त्री० [हिं० लबार] लबारी । झूठ बोलने का काम । लबरी । वि० मिथ्या । झूठ ।

लबार—वि० [सं० लपन=बकना] झूठा । मिथ्या वादी । गप्पी । प्रपंची । उ० बालि कबहु न गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तै भएसि लबारा । तु० आ० मन ।

लभावैं—क्रि० स० [हिं० लंबा + ना (प्रत्य०)] लम्बा करना । फैलाना ।

लभाये—क्रि० स० [देश०] झुकाना ।

लमधी—सं० पु० [देश०] समधी का बाप । आ० अविवेक ।

लयऊ—वि० [सं० लय] नाशवान ।

लरतु—क्रि० अ० [सं० रणन] लड़ना । झगड़ा करना । वाद विवाद करना । बहस करना ।

लराइन—क्रि० स० [देश०] फेंकना । गिराना ।

लराई—सं० स्त्री० [हिं० लड़ना+आई (प्रत्य०)] लड़ाई । झगड़ा । युद्ध । उ० जहाँ तहाँ परी अनेक लराई । जीते सकल भूप बरिआई । तु०

ललचि—दे० ललचिन ।

ललचिन—क्रि० अ० [हिं० लालच+ना (प्रत्य०)] ललचाना । मोहित होना । उ० मन मंदिर सुंदर सब साजू । जाहि लषत ललचत सुर राजू । —रघु०

ललनी—सं० स्त्री० [सं० नलिका] नली। चोंगा। बांस की वह नली जिसे व्याधा तोता पकड़ने के लिए लगाते हैं। सेमर के वृक्ष की फली जो देखने में लाल तथा सुन्दर होती है परन्तु उसके भीतर रुई भरी रहती है।

लहँडा—सं० पु० [देश०] गिरोह। झुंड। समूह।

लहरि—सं० स्त्री० [सं० लहरी] लहर। मन की मौज। उमंग। वेग। जोश। उठान।

लहुरिया—वि० [प्रा० लहु+रिया (प्रत्य०)] लहुरी। छोटी। कनिष्ठ।

लाई—सं० स्त्री० [हिं० लाय] लाइ। अग्नि। श्रा० कामना। लगन।

लादिन—क्रि० स० [हिं० लादना] भार से युक्त करना।

लानत—सं० स्त्री० [अ० लअनत] धिकार।

लाबरि—दे० लबराई

लार—सं० स्त्री० [देश०] कतार। पंक्ति। क्रि० वि० [लैर=पीछे] साथी। पाछे। उ० अंधे अंधा मिल चले दादू बांधि कतार। कूप पड़े हम देखता अंधे अंधा लार। दादू।

लाल—सं० स्त्री० [सं० लालसा] लालसा। इच्छा। चाह। अभि-लाषा। सं० पु० [सं० लालन] दुलार। लाड़। प्यार। [फा०] मानिक या माणिक्य नाम का रत्न।

लिंग—सं० पु० [सं०] जिस से किसी वस्तु की पहिचान हो। चिन्ह। लक्षण। निशान। पुरुष का वह चिन्ह विशेष जिसके कारण स्त्री से उसका भेद जाना जाता है। शिश्न। पुरुष की गुप्त इंद्रिय। शिव की एक विशेष प्रकार की मूर्ति।

लिप्त—वि० [सं०] लीन। फंसा हुआ।

लीना—वि० [सं० लीन] लय को प्राप्त। जो किसी वस्तु में समा गया हो। तन्मय। मग्न। डूबा हुआ। उ० अति ही चतुर सुजान जान मनि वा छबि पै भइ मैं लीना। सूर

लीपि—क्रि० स० [सं० लेपन] मिट्टी या गोबर फेरना। पोतना।

लुकाई—क्रि० अ० [हिं० लुकना] लुकाना। छिपाना।

लोई—दे० लोय।

लोकंदै—सं० पु० [हिं० लोकना] लोकंदा। विवाह में कन्या के डोले के साथ दासी को भेजना।

लोचन—सं० पु० [सं०] आंख। नेत्र। नयन। श्रा० ज्ञान।

लोढ़त—क्रि० स० [सं० लुञ्चना]

लोढ़ना। चुनना। तोड़ना।
लौढ़े—दे० लोढ़त।
लोय—सं० पु० [सं० लोक] लोग। उ० जहाँ प्रगट भूषण भनत हेतु काज ते होय। सो विभावना औरऊ कहत सयाने लोय।—भूषण। सं० स्त्री० [हिं० लव] लौ। लपट। ज्वाला।
लोरै—दे० लोढ़त।
लोह—सं० पु० [सं०] लोहा नामक प्रसिद्ध धातु।
लोहू—सं० पु० [सं० लोहित=लाल] रक्त। उ० राते बिंब भये तेहि लोहू। जा०
लौ—सं० स्त्री० [सं० लाग] आशा। कामना। चित्त की वृत्ति। ध्यान।
लौकै—क्रि० अ० [सं० लोकन] लौकना। चमकना। दिखाई पड़ना। प्रत्यक्ष होना।

व

वहि—सर्व० [सं० सः] एक शब्द जिसके द्वारा दूसरे मनुष्य से बात चीत करते समय किसी तीसरे मनुष्य या वस्तु का संकेत किया जाता है।
वार—सं० पु० [सं०] द्वार। दरवाजा। नदी या समुद्र का किनार।
वोद्र—सं० पु० [सं० उदर] पेट।
वोनई—क्रि० अ० [देश० ओनई] घिर आना। झुक आना।

स

संकेता—सं० पु० [सं०] इशारा। इंगित। कष्ट। दुःख। विपत्ति। बि० तंग।
संक्राती—सं० स्त्री० [सं० संक्राति] सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने का समय। वह दिन जिस में सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता है।
संख्या—सं० स्त्री० [सं०] शुमार। तादाद। गिनती। गणना।
संगति—सं० स्त्री० [सं०] मेल। मिलाप। संग। साथ। संगत।
संगम—सं० पु० [सं०] मिलाप। मेल। संयोग। समागम।
संग्रह—सं० पु० [सं०] जमा। संकलन। संचय। एकत्र।
संग्या—सं० स्त्री० [सं० संज्ञा] शक्ति। चेतना। होश। बुद्धि। नाम
संघाती—सं० पु० [हिं० संग + आती (प्रत्य०)] वह जो संग रहता हो साथी। संगी। दोस्त। मित्र।
संघारा—क्रि० स० [सं० संहार] मार डालना। नाश करना। उ०

ओहि धनुष रावन संहारा। ओहि धनुष कंसासुर मारा। जा०

संचरे—क्रि० अ० [सं० संचरण] घूमना फिरना। चलना। उ० अहूठ पटण में भिष्या करै। ते अवधू सिवपुरी संचरे। गो०

संचु—सं० पु० [प्रा०] सुख। आनंद।

संजम—सं० पु० [सं० संयम] रोक। बंधन। योग में धारणा ध्यान और समाधि का साधन। बश में रखने की क्रिया या भाव। इंद्रिय निग्रह। मन और इंद्रियों को वश में रखने की क्रिया। चित्त वृति का निरोध।

संजोय—क्रि० वि० [सं० संयोग] मेल। मिलावट। समागम। क्रि० सं० संजोना। सजाना। बनाना।

संजोये—दे० संजोय।

संजोवे—दे० संग्रह।

संझा—सं० स्त्री० [सं० सन्ध्या] सूर्य्यास्त का समय। शाम। उ० संग के सकल अंग अचल उछाह भंग ओज बिन सूझत सरोज बन संझा री। देव। आ० अंतिम समय। अंधकार। अज्ञान।

संतत—अव्य० [सं०] सदा। निरंतर। बराबर। लगातार।

संताप—सं० पु० [सं०] जलन। आंच। दुःख। कष्ट। व्यथा। ग्लानि। मानसिक कष्ट। मनोव्यथा।

संतो—वि० [सं० सत्] साधु। सन्यासी। विरक्त या त्यागी पुरुष। हरि भक्त। ईश्वर का भक्त। सज्जन।

संधि—सं० स्त्री० [सं०] भेद। रहस्य

संपति—सं० स्त्री० [सं०] ऐश्वर्य्य। वैभव। धन। दौलत। सफलता। सिद्धि। लाभ।

संपुट—सं० पु० [सं०] अच्छादन। ढाकने वाली वस्तु।

संबल—सं० पु० [सं०] रास्ते का खर्च। रास्ते का भोजन। सफर खर्च। आ० साधन। ज्ञान। सम, दम आदि।

संयोगे—सं० पु० [सं० संयोग] दो वस्तुओं का एक में एक साथ होना। मेल। मिलान। मिलाप।

संवरे—क्रि० स० [सं० स्मरण, हिं० सुमिरण] संवरना। याद करना। स्मरण करना। उ० संवरौ आदि एक करतारू। जा०

संवारन—क्रि० स० [सं० संवर्णन] साजना। अलंकृत करना। ठीक करना।

संवारी—दे० संवारन।

संवारै—दे० संवारन।

संसार—सं० पु० [सं०] जगत। दुनिया। विश्व। सृष्टि। इहलोक। मृत्यु लोक।

संसरि—सं० पु० [सं० संसरण] निरंतर।

संसारी—वि० [सं० संसारिन] संसार में रहने वाला। संसार की माया में फंसा हुआ। दुनिया के जंजाल में घिरा हुआ। दुनियादार। बार बार जन्म लेने वाला। भवचक्र में बंधा हुआ। उ० तब से जीव भयो संसारी। तु०

संसै—सं० पु० [सं० संशय] अनिश्चयात्मक ज्ञान। अनिश्चय। संदेह। शक। सुबह। दुबिधा। आशंका। डर।

सकलो—वि० [सं० सकल] सब। सर्व। समस्त। कुल।

सकार—दे० सकारे।

सकारे—वि० [सं० सकाल] शीघ्र। जल्दी। प्रातःकाल। सबेर। तड़के। उ० मयूर तमचूर जो हारे। उन्हहि पुकारे सांझ सकारे।—जा०

सकेलि—क्रि० स० [सं० सकल] सकेलना। एकत्र करना। इकट्ठा करना। जमा करना।

सक्ति—सं० स्त्री० [सं० शक्ति] स्त्री। प्रकृति। रौद्री, वैष्णवी आदि शक्तियाँ।

सक्ती—दे० सक्ति।

सखी—सं० स्त्री० [सं०] सहेलरी। सहचरी। संगिनी। आ० २५ प्रकृतियाँ।

सगति—दे० सक्ति।

सगाई—सं० स्त्री० [हिं० सग्ग+आई (प्रत्य०)] संबंध। नाता। रिश्ता। व्याह के ठहराव की एक प्राथमिक क्रिया।

सगोती—सं० स्त्री० [देश०] खाने का मांस। गोश्त। कलिया।

सचान—सं० पु० [सं० सचान=श्येन] श्येन पक्षी। बाज।

सचु—दे० संचु

सचुपावा—दे० संचु। उ० अंखियन ऐसी धरनि धरी। नंद नंदन देखे सचु पावै या सो रहति डरी।—सूर

सजीवन मूरी—सं० पु० [सं० संजीवनी] सजीवनमूर। संजीवनी बूटी। आ० सार वस्तु।

सत—सं० पु० [सं० सत्] सत्य।

सती—वि० स्त्री० [सं०] साध्वी। पतिव्रता।

सत्त—सं० पु० [सं० सत्य] सतीत्व। पतिव्रत्य। सचबात।

सद्गति—सं० स्त्री० [सं०] उत्तम गति। अच्छी अवस्था। भली हालत। मरण के उपरांत उत्तम लोक की गति।

सनकादिक—सं० पु० [सं०] त्यागा श्रमी। त्यागी।

सना—सन (प्रत्य०) [सं० संग] से

सनिपात—दे० सन्नि

सनेही—वि० [सं० स्नेही, स्नेहिन] सनेह या प्रेम करने वाला। प्रेमी। सं० पु० चाहने वाला। प्रियतम। प्यार।

सन्नि—सं० पु० [सं० सन्निपात] कफ, वात और पित्त का एक साथ बिगड़ना। त्रिदोष। सरसाम। आयुर्वेद में १२ प्रकार के सन्निपात कहे गए हैं।

सन्यासी—सं० पु० [सं० सन्यासिन] वह पुरुष जिसने सन्यास धारण किया हो। चतुर्थाश्रमी। विरागी। त्यागी। यती।

सपनी—सं० स्त्री० [सं०] धोखा। भ्रम। देखा देखी।

सपुचै—क्रि० स० [देश०] पूर्णता को प्राप्त होना। बढ़ना। सुलगाना।

सपेद्—वि० [फा० सफेद] श्वेत। धवल। आ० निरमल।

सपेदी—वि० [फा० सुफेदी] श्वेतता धवलता। आ० ज्ञान। वृद्धावस्था।

सब्द - सं० [सं० शब्द] वह स्वतंत्र व्यक्त और सार्थक ध्वनि जिस से सुनने वाले को किसी पदार्थ, कार्य या भाव आदि का बोध हो। लफ्ज। वाक्य। अमृतोपनिषद के अनुसार ॐ जो परमात्मा का मुख्य नाम है। किसी साधु महात्मा के बनाए हुए पद या गीत आदि। आ० सार शब्द।

सबल—वि० [सं०] जिस में बहुत बल हो। बलवान। बलशाली।

समताई—सं० स्त्री० [सं० समता] बराबरी। तुल्यता।

समतूला—वि० [सं० समतल] समान। बराबर।

समधी—सं० पु० [सं० संबन्धिन] जिसके पुत्र या पुत्री से अपने पुत्र या पुत्री का विवाह हुआ हो। आ० जीवात्मा।

समर—सं० पु० [सं०] संभार। सचय। समान। सामग्री। आ० सत्यज्ञान। बोध।

समसान—दे० मृतक थान।

समाधि—सं० स्त्री० [सं०] ध्यान।

समान—वि० [सं०] एकसा। सम। बराबर। तुल्य। मु० एक समान = एकसा। एक जैसा।

समानी—क्रि० अ० [सं० समाविष्ट] समाना। अंदर आना। भरना। अटना।

समावै—दे० समानी।

समुद्र—सं० पु० [सं०] वह जल राशि जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है और इस पृथ्वी तल के प्रायः तीन चतुर्थांस में व्याप्त है। सागर। अंबुधि। आ० संसार। शरीर।

समोई—क्रि० स० [सं० संलग्न] मिला लेना।

समोय—दे० समोई।

सयान—वि० [सं० सज्ञान] समझदार। चतुर। प्रवीण। निपुन। बुद्धिमान। अनुभवी। सं० स्त्री० सयानी।

सयाना—दे० सयान।

सयानप—सं० पु० [हिं० सयान+पन (प्रत्य०)] काइयां पन। चतुरता। बुद्धिमानी।

सर—सं० पु० [हिं० सरकंडा] बास या सरकंडे की पतली छड़ी जो ताना ठीक करने के लिये जुलाहे लगाते हैं। सथिया। सतगारा। आ० अस्थियाँ। सं० पु० [सं० सरस] बड़ा जलाशय। ताल। तालाब। [सं० शर] वाण तीर। सरकंडा। भाले का फल। आ० बचन।

सरक—सं० पु० [सं०] सरकने की क्रिया। खिसकना। चलना। आ० विमुख होना।

सरग—सं० पु० [सं० स्वर्ग] हिन्दुओं के सात लोकों में से तीसरा लोक जो ऊपर आकाश में सूर्य्य लोक से लेकर ध्रुव लोक तक माना जाता है। किसी किसी पुराण के अनुसार यह सुमेरु पर्वत पर है। आकाश।

सरजिव—वि० [सं० सजीव] जीव युक्त। जिस में प्राण हों।

सरधा—सं० स्त्री० [सं० श्रद्धा] चित्त की प्रसन्नता। मनोवृति। मनो कामना।

सरप—सं० पु० [सं० सर्प] सांप। रेंगने वाला विषैला कीड़ा। आ० अहंकार।

सरमन—सं० पु० [सं० शर्म्मन] ब्राह्मणों की उपाधि।

सरमा सरमी—क्रि० वि० [फा० शर्म] शरमा शरमी। लज्जा के कारण। शरमिंदा होकर।

सरबक—दे० सर्व।

सरवर—सं० पु० [सं०] तालाब। पोखरा। झील। ताल। आ० संसार। शरीर।

सरबस—सं० पु० [सं० सर्वस्य] सब कुछ।

सरसों—सं० स्त्री० [सं० सर्षप] एक धान्य या पौधा जिस के गोल गोल छोटे बीजों से तेल निकलता है। एक तेलहन।

सरा—सं० स्त्री० [सं० शर] चिता उ० चंदन अगर मलय गिरि काढ़ा। घर घर कीन्ह सरा रचि ढ़ाढा।-जा०

सरि—क्रि० अ० [सं० सरण=चलना] पूरा पड़ना। निबटना। हिं० सड़ना] गलना।

सरिया—दे० सरि।

सरीखा—वि० [सं० सदृश, प्रा० सरिस] सदृश। समान। तुल्य।

सरुझि—क्रि० अ० [हिं० सुलझना] उलझन या खुलना। गुत्थी का का खुलना। जटिलताओं का निवारण होना।

सरोता—सं० पु० [सं० श्रोतृ] श्रोता। सुनने वाला। श्रवण

करता। कथा या उपदेश सुनने वाला।

सर्ब—वि० [सं० सर्व] सारा। सब। कुल। समस्त।

सर्बभूत—सं० पु० [सं०] सब प्राणी या सृष्टि। चराचर।

सर्मन—दे० सरमन।

सलामा—सं० पु० [अ० सलाम] प्रणाम करने की क्रिया। प्रणाम। बंदगी।

सलिल—सं० पु० [सं०] जल। पानी।

सलिला—दे० सलिल

सवाई—वि०[हिं०सवा+ई (प्रत्य०)] एक और चौथाई

सवादी—वि० [सं० स्वादिन] स्वाद चखने वाला। मजा लेने वाला। रसिक। विषयी।

सवारी—सं० स्त्री० [फा०] सवार होने की वस्तु। चढ़ने की चीज।

ससि—सं० पु० [सं० शशि] शशि। चन्द्रमा। आ० इड़ा।

ससुर—सं० पु० [सं० श्वशुर] जिसके पुत्र या पुत्री से विवाह हुआ हो।

ससुरे—सं० पु० [हिं० ससुर] ससुर। ससुराल। पतिका घर। आ० संसार।

ससै—सं० पु० [सं० शश] खर-गोश। शशक। आ० मन।

सहज—सं० पु० [सं०] स्वभाव। वि० स्वाभाविक। स्वाभावोत्पन्न। प्राकृतिक। सधारण। सरल। सुगम। आसान।

सहजै—दे० सहज

सहदूल—सं० पु० [सं० शार्दूल] बिल्ली की आकृति का एक जंगली जन्तु। व्याघ्र। बाघ। आ० मन

सहना—सं० पु० [अ० शहना] वह व्यक्ति जो जमीदार की ओर से कृषकों को बिना लगान (पोत) दिए खेत की उपज उठाने से रोकने और उसकी रक्षा करने के लिये नियुक्त किया जाता है। आ० साक्षी पुरुष। आत्मा।

सहर—सं० पु० [फा० शहर] बड़ी वस्ती। नगर। उ० रघुराज गरीब नेवाज दोऊ अवलोकन काज चले शहरै। रघु०। आ० शरीर।

सहसौ—सं० पु० [सं० सहस्र] हजारों। अनेक।

सहारी—क्रि० स० [सं० सहन] सहन करना। बर्दाश्त करना। सहना।

सहिदानी—सं० स्त्री० [सं० संज्ञान] चिह्न। पहचान। निशान। उ० मातु कृपा कीजै सहिदानी दीजै। तु०

सही—वि० [फा० सहीह] सत्य। सच। प्रमाणिक। ठीक। यथार्थ। शुद्ध।

सही सलामत—वि०स्वस्थ। अरोग्य। भलाचंगा। तंदुरुसत। जिसमें

कोई दोष या न्यूनता न आई हो।

सहेलरी—सं० स्त्री० [सं० सह = हिं० एली (प्रत्य०)] साथ में रहने वाली स्त्री। संगिनी। अनुचरी परिचारिका। दासी। आ० इन्द्रियाँ। प्रकृतियाँ।

सह्यो—क्रि० स० [सं० सहन] सहना। बर्दाश्त करना। झेलना। भोगना।

सांई—सं० पु० [सं० स्वामी] पति। भर्ता। मालिक। ईश्वर। परमात्मा आ० शुद्ध चेतन।

सांकरी—वि० [सं० संकीर्ण] तंग। सकरा। दुःख मय। कष्ट मय।

सांझ—दे० संध्या। आ० शरीरान्त का समय।

सांट—सं० स्त्री० [सट से अनु०] छड़ी। सांटी। पतली कमची। कोड़ा।

साँड—सं० पु० [हिं०] ऊंट।

सांती—सं० स्त्री० [सं० शांति] अशुभ या अनिष्ट का निवारण। अमंगल दूर करने का उपचार।

सांप—दे० सरप।

साँवत—सं० पु० [सं० सामन्त] सुभट। योद्ध। सामंत। आ० यमदूत।

साई—सं० स्त्री० [हिं० साइत] बयान। पेशगी।

साकट—सं० पु० [सं० शाक्त] गुरू रहित। बिषयासक्त। असाध। मूर्ख।

साख—दे० साखा।

साखा—सं० स्त्री० [सं० शाखा] वृक्ष की शाखा। डाली। डहनी। आ० वैभव।

साखि—दे० साखी। उ० याते योग न आवै मन में तू नीके करि राखि। सूरदास स्वामी के आगे निगम पुकारत साखि। सूर

साखी—सं० पु० [सं० साक्षि] साक्षी। गवाह। ज्ञान सम्बन्धी पद या दोहे। वह कविता जिसका विषय ज्ञान हो।

सागर—दे० समुद्र। आ० संसार। शरीर।

साचेत—वि० [सं० सचेतन] सचेत। चेतना युत। सावधान। होशियार।

साज—सं० पु० [फा० मि० सं० सज्जा] उपकरण सामग्री। साधन। तैयारी। ठाठ बाट। वाद्य। बाजा आ० शरीर।

साजिया—सं० पु० [सं० सज्जन] साजन। ईश्वर। सजने वाला। क्रि० स० सजाया।

साजो—क्रि० अ० [सं० सज्जा] सजना। अलंकृत करना।

साझी—सं० पु० [हिं० साझा + ई (प्रत्य०)] भागी। हिस्सेदार।

साट—सं० स्त्री० [सं०] बाजार। विक्रय।

साधक—सं० पु० [सं०] साधन करने वाला।

साधिया—क्रि० अ० [हिं० साधन] सिद्ध होना । पूरा होना । सरना । काम होना ।

साधी—सं० स्त्री० [सं० सार्ध, अर्धाली] आधा अंश ।

साधे—सं० स्त्री० [सं० साधन] कोई काय सिद्ध या संपन्न करने की क्रिया ।

साधै—क्रि० स० [सं० साधन] साधना । अभ्यास करना । आदत डालना । स्वभाव डालना । जैसै योग साधना । तप साधना ।

सानी—क्रि० स० [सं० संयुक्त] मिल जाना । एकाकार होना । मिलना ।

साबुत—वि० [फा० सबूत] दुरुसत । स्थिर । निश्चल ।

साम—सं० पु० [सं०] एक प्राचीन देश जो अरब के उत्तर में है कहते हैं यह देश हजरत नूह के पुत्र शाम ने बसाया था । आज कल यह प्रदेश सीरिया कहलाता है । आ० पूर्व ।

सामी—सं० पु० [सं० स्वामिन] स्वामी । मालिक । प्रभू । ईश्वर । साधु । सन्यासी । धर्माचार्य ।

सायर—दे० समुद्र । आ० संसार । शरीर ।

सारंग पानी—सं० पु० [सं० सारंगपाणि] सारंग नामक धनुष धारण करने वाले विष्णु । आ० चैतन्य ।

सारथि—सं० पु० [सं०] रथादि का चलाने वाला । समुद्र । सागर । आ० मन ।

सारा—वि० उत्तम श्रेष्ट ।

सारू—दे० सारा ।

सालिगराम—सं० पु० [सं० शालिग्राम] विष्णु की मूर्ति विशेष जो काले और गोल पत्थर की होती है, और गंडकी नदी से निकलती हैं

सालै—क्रि० अ० [सं० शूल] धंसना । दुःख देना । खटकना । कसकना । चुभना । गड़ना ।

सावज—स० पु० [देश०] जंगली जानवर जिसका शिकार किया जाता है । आ० मन । मिथ्या जगत ।

सासु—सं० स्त्री० [सं० श्वश्रु] पति या पत्नी की माँ । आ० आदि माया । बानी ।

साहस—सं० पु० [सं०] हिम्मत । हियाव ।

साहु—सं० पु० [सं० साधु] सज्जन । भला मानस । साहूकार । आ० सद्गुरु । पारखी संत । जीवात्मा ।

साहू—दे० साहु ।

साहेब—सं पु० [अ० साहिब] मालिक । स्वामी । परमेश्वर । ईश्वर । मित्र । साथी । एक सम्मान सूचक शब्द । आ० सद्गुरु ।

सिंगी—सं० पु० [हिं० सींग] सींग का एक बाजा जिसे योगी लोग

फूंक कर बजाते हैं। उ० सिंगी नाद न बाजहि कित गए सो जोगी। दादू

सिंघ—सं० पु० [सं० सिंह] एक जंगली जन्तु जिसकी गर्दन पर बड़े बड़े बाल होते हैं और मुहँ बड़ा होता है। उसकी आकृति बड़ी भयंकर होती है। शेर बबर। आ० जीवात्मा। ज्ञान।

सिंघारा—सं० पु० [सं० शृंगाटक] पानी में फैलने वाली एक लता का कांटे दार तिकोना फल जो खाया जाता है।

सिंधौरा—सं० पु० [हिं० सिंदूर + ओरा (प्रत्य०)] सिंदूर रखने का लकड़ी का पात्र जो कई आकार का बनता है।

सिकली—सं० स्त्री० [अ० सैकल] धारदार हथियारों को माँजने और उन पर सान चढ़ाने की क्रिया।

सिकलीगर—सं० पु० [अ० सैकल + फा० गर] तलवार और छूरी आदि पर बाढ़ रखने वाला। सान धरने वाला। चमका देने वाला। आ० विकारों को दूर करने वाला सद्गुरु।

सिकार—सं० पु० [फा० शिकार] आखेट। मृगया। अहेर।

सिख—सं० पु० [सं० शिष्य] चेला अनुयायी।

सिखर—सं० पु० [सं०] सब से ऊपर का भाग। सिरा। चोटी। आ० प्रपंच से परे

सिखापन—सं० पु० [सं० शिक्षा + हिं० पन। शिक्षा। उपदेश

सिगरे—वि० [सं० समग्र] सब। सम्पूर्ण। सारे। सकल।

सिद्ध—सं० पु० [सं०] वह जिसने योग या तप में सिद्धि प्राप्त की हो। योग या तप द्वारा अलौकिक शक्ति प्राप्त पुरुष। वि० पका हुआ। कामयाब। सफल। जिस का मतलब पूरा हो चुका हो।

सिध—दे० सिद्ध। उ० सोंह हंसा सुमिरै सबद तिहि परमारथ सिध। गों०

सिधि—दे० सिद्ध।

सियरा—वि० [सं० शीतल प्रा० सीअड़] ठंढा। शीतल। नम। उ० सियरे बदन सूखि गए कैसै। परसत तुहिन ताम रस जैसै। तु०

सियार—सं० पु० [सं० शृंगाल, प्रा० सिआड़] गीदड़। जम्बुक। आ० मन।

सिरजनहार—सं० पु० [सं० सृजन + हिं० हार=वाला] रचने वाला। बनाने वाला। सृष्टि करता। कर्त्तार। परमेश्वर। उ० हे गुसाई तू सिरजन हारू। तुइ सिरजा एहि समुंद अपारू। जा०

सिरजौं—क्रि० स० [सं० सर्जन]

बनाना। उत्पन्न करना।

सिराई—क्रि० अ० [हिं० सीरा + ना] बीतजाना। व्यातीत होना। गुजर जाना। समाप्त होना। खतम होना। अंत को पहुँचना। उ० लागै लिखे सिस्टि मिलि जाई। समुद्र घटै पै लिखि न सिराई। जा०

सिरानी—दे० सिराई।

सिरों—सं० पु० [सं० मूर्धन्य] सरदारों।

सिल—सं० स्त्री० [सं० शिला] पषाण। पत्थर। पत्थर का बड़ा चौड़ा टुकड़ा।

सिलहली—वि० [हिं० सील, सीड़+ हीला = कीचड़] सिलहला। जिस पर पैर फिसले। रपटने वाली। कीचड़ से चिकनी।

सिव—सं० पु० [सं० शिव] शंभु। महादेव। हर।

सींग—सं० पु० [सं० शृंग] खुर वाले पशुओं के सिर के दोनो ओर शाखा के समान निकले हुए कड़े नुकीले अवयव। विषाण। आ० स्वर्ग लोक।

सींचा—क्रि० स० [सं० सिंचन] सींचना। नहाना। पानी छिड़कना।

सींचै—क्रि० स० [सं० सिंचन] पानी देना। सींचना।

सीकस—सं० पु० [देश०] ऊसर। आ० संसार।

सिझहु—क्रि० अ० [सं० सिद्ध, प्रा० सिज्झ + ना] ताप या कष्ट सहना। आंच या गर्मी पाकर गलना।

सीझै—क्रि० अ० [सं० सिद्ध] आंच पर पकना।

सीढ़ी—सं० स्त्री० [सं० श्रेणी] निसेनी। जीना। पैड़ी।

सीत—वि० [सं० शीत] ठंढा। शीतल। सर्द। शिथिल। सुस्त।

सीत अंग—सं० पु० [सं० शीतांग] शीत सन्निपात। शीत ज्वर।

सीतल—वि० [सं० शीतल] शांत। प्रसन्न। संतुष्ट। तृप्त। ठंढा। सरद।

सीर—सं० पु० [सं० शिरस्] सिर। खोपड़ी। कपाल। मस्तक।

सीव—सं० पु० [सं० शिव] ईश्वर। ईश।

सीष—दे० सिख।

सीस—सं० पु० [सं० शीर्ष] सिर। माथा। मस्तक।

सुन्दरी—वि० [सं०] रूपवती। सं० स्त्री० सुन्दर स्त्री। आ० माया

सुकाल—सं० पु० [सं०] उत्तम समय। अच्छा युग।

सुक्रित—सं० पु० [सं० सुकृत] पुण्य। पुण्यवान।

सुक—सं० पु० [सं० शुक] सुवा। सुगना। शुकदेव।

सुख—सं० पु० [सं०] आनंद। आराम। हर्ष।

सुखाने—क्रि० अ० [सं० शुष्क, हिं० सूखा + ना (प्रत्य०)] सूख जाना । जल बिलकुल न रहना या बहुत कम हो जाना ।

सुगना—सं० पु० [सं० शुक, हिं० सुग्गा] सुग्गा । तोता । सुआ । आ० जीवात्मा ।

सुज्ञान—वि० [सं० सज्ञान] समझदार । चतुर । सयान । उ० करत-करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान । –रहीम ।

सुत्रधार—सं० पु० [सं० सूत्रधार] कारीगर । नाटय शाला का व्यवस्थापक या प्रधान नट । आ० चैतन्य ।

सुधारस—सं० पु० [सं०] अमृत रस । मधुर ।

सुधि—सं०स्त्री० [सं० शुद्ध (बुद्धि)] स्मृति । स्मरण । याद । चेत ।

सुनगुन—सं० स्त्री० [हिं० सुनना+ अनु० गुन] किसी बात का भेद । टोह । सुराग । काना फूसी ।

सुनति—सं० स्त्री० [अ० सुन्नत] मुसलमानों की एक रस्म जिसमें लड़के की लिंगेंद्रिय के अगले भाग का बढ़ा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है। खतना । मुसलमानी ।

सुनहा—सं० पु० [सं० शुन=कुत्ता] सोनहा । कुत्ता । कुत्ते की जाति का छोटा जंगली जानवर जो झुंड में रहता है और बड़ा हिंसक होता है यह शेर को भी मार डालता है। कोंगी । आ० मन । कल्पना ।

सुन्न—सं० पु० [सं० शून्य] खाली स्थान । आकाश । एकांत स्थान । निर्जन स्थान । वि० निराकार । उ० रूप रेख जाके कछु नाहीं । तौ का करब शून्य के माहीं । वि० सा० । असत । जो कुछ न हो । रहित । विहीन ।

सुबरन—वि० [सं० सुवर्ण] सुंदर वर्ण या रंग का । उज्जवल ।

सुबस—सं० पु० [सं० सुवास] उत्तम निवास । सुंदर घर । वि० [सु=अच्छा+बस=बसना] अच्छी प्रकार बसा हुआ ।

सुभागा—वि० [सं० सुभाग] अत्यंत भाग्य शाली । बहुत बड़ा भाग्यवान ।

सुभागे—दे० सुभागा ।

सुमिरन—सं० पु० [सं० स्मरण] नौ प्रकार की भक्तियों में से एक । क्रि० स० सुमिरना । ध्यान करना । जपना । चिंतन करना ।

सुम्रिति—सं० स्त्री० [सं० स्मृति] हिन्दुओं के धर्म शास्त्र जिनकी रचना ऋषियों और मुनियों आदि ने वेदों का स्मरण या चिंतन करके की थी । जिसमें धर्म, दर्शन, आचार, व्यवहार, प्रायश्चित, शासन नीति आदि के विवेचन हैं । स्मृति के अंतर्गत नीचे लिखे

ग्रंथ आते हैं। (१) छः वेदांग (२) गृह्य आश्वलायन, सांख्यायन, गोभिल, यास्क, बौधायन, भारद्वाज और आपस्तं वाद सूत्र (३) मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हरीत, उशनस्, अंगिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, बशिष्ट, नारद, और भृगु आदि के रचे हुए धर्म शास्त्र। (४) रामायण और महाभारत आदि इतिहास (५) अठारहों पुराण (६) सब प्रकार के नीति शास्त्र के ग्रंथ। आ० इच्छा। कामना।

सुमेर—सं० पु० [सं० सुमेरु] एक पुराणोक्त पर्वत जो सोने का कहा जाता है भागवत के अनुसार सुमेरु पर्वतों का राजा है। इस पर्वत का शिरो भाग १२ हजार कोस का है। उ० शोभित सुंदर केशव कामिनी। जिमि सुमेर पर घन सह दामिनि। के०।

सुरंग—वि० [सं०] सुंदर रंग का। ंदर। सुडौल।

सुर गुर—सं० पु० [सं० सुर+गुरु] देवताओं के गुरू। बृहस्पति।

सुरज—सं० पु० [सं० सूर्य्य] रवि। सूर। भानु। दिनकर। आ० पिंगला।

सुरझै—क्रि० अ० [हिं० सुलझना] सुरझना। किसी उलझी हुई वस्तु की उलझन दूर होना या खुलना। उलझन का खुलना। गुत्थी का खुलना। जटिलताओं का निवारण होना।

सुरति—सं० स्त्री० [फा० सूरत] रूप। आकृति। शक्ल।

सुरभी—सं० स्त्री० [सं०] गाय। आ० अमर बारुणी।

सुरही—दे० सुरभी।

सुरहुर—वि० [सं० सरल+धड़] सरहरा। सीधा। ऊपर को गया हुआ जिस में इधर उधर शाखाएं न निकली हों (पेंड़)।

सुति—सं० स्त्री० [सं० स्मृति] सुध। स्मरण। ध्यान। याद।

सुवासिनि—सं० स्त्री० [सं० सुवासिनी] सधवा स्त्री। सौभाग्यवती। आ० वञ्चक गुरुओं की रोचक बाणी।

सुसुकि—क्रि० अ० [अनु० या स० सीत + करण] सिसकना। उलटी सांस लेना। हिचकियाँ भरना। मरने के निकट होना। तरसना (प्राप्ति के लिये) रोना (पाने के लिये) व्याकुल होना। खुल कर न रोना।

सुस्त—वि० [फा०] निस्तेज। धीमी। कमजोर। शांति।

सुहाय—क्रि० अ० [सं० शोभन] सुहाना। अच्छा लगना। भला मालूम होना।

सुहेला—सं० पु० [सं० सुहृद] इष्ट। मित्र। सुहृद। सखा। साथी

सूकर—सं० पु० [सं० शूकर] सूअर।

सूझै—क्रि० अ० [सं० सज्ञान] सूझना। दिखाई देना। देख पड़ना

सूत—सं० पु० [सं० सूत्र] रुई रेशम आदि का महीन तार जिस से कपड़ा बुना जाता है। धागा। आ० कर्म। प्राण।

सूती—क्रि० अ० [हिं० शयन] सूतना। सोना। शयन करना।

सूत्र—दे० सूत।

सूद्र—सं० पु० [सं० शूद्र] चार वर्णों में से चौथा और अंतिम।

सूद्रा—दे० सूद्र।

सूध—वि० [सं० शुद्ध] सीधा। सरल।

सूधे—क्रि० वि० [हिं० सूधा] सीधो। आ० अन्तरंगवृति।

सून—वि० [सं० शून्य] शून्य। खाली। उजाड़। सुनसान। सूना। उ० नहि कल विना शेष पद देखे। बिन प्रभू जगत सून मम लेखे। वि० सा०।

सूर—सं० पु० [सं०] सूर्य्य। उ० जेहि घरि चन्द्र सूर नहि उगै, तेहि घर होसी उजियारा। गो०

सूवा—सं० पु० [सं० शुक] तोता। सुग्गा। सूआ। हरे रंग का एक पक्षी जो राम राम पढ़ता है।

सृष्टि—सं० स्त्री० [सं०] संसार। दुनिया। चराचर।

सेंती—सं० स्त्री० [हिं०] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। मुफ्त। दे० सेती

सेधूरे—सं० पु० [सं० सिंदूर] सिंदूर रखने का डिब्बा। सिंदूरा

सेइ—क्रि० स० [सं० सेवन] आराधना करना। सेवा करना। किसी स्थान को लगातार न छोड़ना। सहारे में पड़ा रहना।

सेख—सं० पु० [अ० शेख] मुसलमान उपदेशक। इसलाम धर्म का आचार्य। पीर। बड़ा बूढ़ा। शेख तकी।

सेजा—सं० स्त्री० [सं० शय्या, प्रा० सज्जा] शय्या।

सेत—वि० [सं० श्वेत] सफेद। उज्वल। शुभ्र। साफ। निर्मल।

सेती—अव्य० [सं०] सहित। साथ। समेत। उ० खेलत अही सहेलिन्ह सेती—

सेमर—सं० पु० [सं० शाल्मली। पत्ते झाड़ने वाला एक बहुत बड़ा पेड़ जिसमें बड़े आकार और मोटे दलों के लाल फूल लगते हैं। और जिसके फलों और डोंडो में केवल रुई होती है, गूदा नहीं होता है। आ० संसार।

सेर—सं० पु० [हिं०] एक मान या तौल। आ० मन की वृत्ति

सेरवा—दे० सेर

सेल्ही—सं० स्त्री० [हिं० सेला] सूत, ऊन, रेशम या बालों की बद्धी या माला जिसे योगी लोग गले में डालते या सिर पर लपेटते हैं। उ० सीस सेली केस मुद्रा कनक वीरी बीर। विरह भस्म चढ़ाइ बैठी सहज कंथा चीर।—सूर

सेवे—क्रि० स० [सं० सेवन] सेना। सेवा करना। उपासना करना।

सेष—सं० पु० [सं० शेष] अंत। समाप्ति।

सेहरा—सं० पु० [हिं० सिर+हरा= हार] माला। आ० मेव माला।

सैयद—सं० पु० [फा०] इमाम। रहिनुमा। सरदार। हजरत फातिमा की आल औलाद।

सैयाँ—सं० पु० [सं० स्वामी] पति। उ० सैयाँ भये तिलगवा बहुअर चली नहाय। गि०

सो—सर्व० [सं० सः] वह। उ० सो मोसन कहिजात न कैसै। तु०

सोनहा—दे० सुनहा।

सोरठ—सं० पु० [देश० सोर = सोलह + ठ = ठौर] सोलह जगह। सं० स्त्री० [सोरही] जुआ खेलने के लिए सोलह चित्ती कौड़ियों का समूह। आ० प्राणादिक सोलह बंधन—पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय, पंच प्राण, मन या बुद्धि। जन्म से मरण तक के सोलह संस्कार।

सोई—दे० सो।

सोखै—क्रि० स० [सं० शोषण] शोषण करना। सूखना। खुश्क होना। उ० उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै संतोखा। तु०।

सोग—सं० पु० [सं० शोक] दुःख। रंज। उ० निस दिन राम राम की भक्ती, भय रुज नहिं दुख सोग। सूर

सोधि—सं० पु० [सं० शोध] खबर। पता। अनुसंधान।

सोभै—क्रि० अ० [सं० शोभन, प्रा० सोहन] सोहना। शोभा देना।

सोहरि—सं० स्त्री० [देश०] नाव का पाल खींचने की रस्सी।

सोहागा—सं० पु० [सं० सुभग] सुहागा। एक प्रकार का क्षार। जो गरम गंधक के सोतों से निकलता है। यह सोना गलाने तथा सोने का मैल साफ करने के काम आता है। आ० सारशब्द।

सोहागिनि—दे० सुवासिनि।

सौतिया—सं० स्त्री० [सं० पत्नी] सौत। किसी स्त्री के पति या प्रेमी की दूसरी स्त्री या प्रेमिका। किसी स्त्री के प्रेम की प्रतिद्वंद्विनी।

सौरी—सं० स्त्री० [सं० शाटी, हिं० सौड़] सौर। चादर। ओढ़ना। उ० तेते पांव पसारिए जेती लांबी सौर। रहीम।

स्याम—सं० पु० [सं० श्याम] कृष्ण। काला। आ० चैतन्य।

स्याह—वि० [फा०] काला। कृष्ण वर्ण।

स्याही—सं० स्त्री० [फा०] काला पन। कालिमा। उ० स्याही बारन ते गई मन तै भई न दूर। समुझ चतुर चित बात यह रहत बिसूर बिसूर। रसनिधि। आ० जवानी।

स्रवन—सं० पु० [सं० श्रवण] कान। कर्णेन्द्रिय।

स्वाँग—सं० पु० [सं० सु + अंग अथवा स्व + अंग] स्वांग। कृतिम या बनावटी वेष जो अपना वास्तविक रूप छिपाने या दूसरे का रूप बनाने के लिये धारण किया जाय। भेस। रूप।

स्वांस—सं० पु० [सं० श्वांस] सांस। श्वास। प्राण।

स्वान—सं० पु० [सं० श्वान] कुत्ता। कुक्कर। उ० जूठी पातर भखत हैं बायस बारी स्वान। प्र० राय। आ० अज्ञान। मन। संकल्प।

स्वाना—दे० स्वान।

ह

हंकार—सं० पु० [सं० अहंकार] अभिमान। गर्व। घमंड।

हंस—सं० पु० [सं०] शुद्धात्मा। माया से निर्लिप्त आत्मा। जीव। जीवात्मा। बत्तख के आकार का एक जल पक्षी जो बड़ी बड़ी झीलों में रहता है वर्षा काल में उनका मानसरोवर आदि तिब्बत की झीलों में चला जाना और शरत्काल में लौटना प्रसिद्ध है। यह पक्षी अपनी शुभ्रता और सुंदर चाल के लिये बहुत प्रसिद्ध है। कवियों तथा जन साधारण में इस के मोती चुगने और नीर क्षीर विवेक का प्रवाद चला आता है। आ० विवेकी जीव। सत्यासत्य पारखी।

हंसगति—सं० स्त्री० [सं०] मुक्ति। ब्रह्मत्व प्राप्ति। सायुज्य मुक्ति।

हँसी—सं० स्त्री० [हिं० हंसना] हंसी। हास।

हकराइन्हि—क्रि० स० [हिं० हंकार] हंकराना। अपने पास आने को कहना। बुलाना। पुकारना।

हज—सं० पु० [अ०] मुसलमानों का काबे के दर्शन के लिये मक्का जाना। मुसलमानों की मक्के की तीर्थ यात्रा।

हजरत—सं० पु० [अ०] महात्मा। महापुरुष।

हजार—वि० [फा०] बहुत से। अनेक। सहस।

हजूर—सं० पु० [अ० हुजूर] सन्मुख स्थिति। समक्षता। नजर का सामना।

हटकैं—क्रि० स० [हिं० हट=दूर होना + करना] हटकना। किसी काम से हटाना या रोकना। वर्जना। मना करना।

हटवाई—सं० स्त्री० [हिं० हाट+वाई (प्रत्य०)] सौदा लेना या बेचना क्रय विक्रय। खरीद फरोख्त।

हटलो—दे० हटा।

हटा—सं० पु० [अप० हटक] किसी बात को न करने का संकेत या आज्ञा। निषेध। मनाही।

हठि—सं० स्त्री० [सं० हठ] जिद। दुराग्रह। टेक।

हता—क्रि० स० [होना का भूत काल] था।

हते—क्रि० स० [हिं० हत + ना (प्रत्य०)] हतना। प्रहार करना दुख पहुँचाना। पीड़ित करना।

हद—सं० स्त्री० [अ०] सीमा। मर्य्यादा।

हने—क्रि० स० [सं० हनन] हनना। मार डालना। वध करना। प्रहार करना। पीटना।

हबी—सं० पु० [अ० हबीब] दोस्त। मित्र। प्रिय। खुदा का हबीब। मुहम्मद साहेब जो खुदा के परम प्रिय माने जाते हैं।

हमेव—सं० पु० [सं० अहम + एव] अहमेव। स्वयं ही। अहंकार। अभिमान।

हर—सं० पु० [सं०] शिव। महादेव। वि० [सं०] हरण करने वाला। [सं० हल] हल।

हरदम—वि० [फा०] हर समय। हर वक्त। सदैव। निरन्तर।

हरदि—सं० पु० [सं० हरिद्रा] एक डेढ़ दो हाथ ऊँचे पौधे की जड़ जिस की गांठ पीसने पर पीली हो जाती है।

हरनी—सं० सी० [हि० हरिन] हिरन की मादा। मृगी। हरनी। आ० बुद्धि।

हरम—सं० स्त्री० [अ०] जनान खाने में दाखिल की हुई स्त्री। मुताही। रखेली स्त्री। दासी। आ० कुमति। अविद्या।

हरामा—वि० [अ० हराम] निषिद्ध। विधि विरुद्ध। बुरा। अनुचित। दूषित। बर्जित बात या वस्तु

हरि—सं० पु० [सं०] ईश्वर। विष्णु। भगवान। त्रिदेवों में एक। अग्नि। आग। आ० आत्मा। ईश्वर। संत। सद्गुरु। ज्ञान।

हरिजन—सं० पु० [सं०] भगवान का दास। ईश्वर भक्त।

हरिनै—सं० पु० [सं० हरिण] मृग। हिरन। आ० तृष्णा।

हरिबाजी—सं० पु० [सं० हरि + बाजी] ईश्वर की बाजीगरी का खेल। माया की लीला।

हरियरे—वि० [सं० हरित्, प्रा० हरिअ] हरीत। सब्ज। हरा।

हलकौं—सं० पु० [अमु० हल हल] हलफ। हिलोर। लहर। तरंग।

हलहल—क्रि० अ० [हिं० हलरा] कांपना। थरथराना। कंपित होना।

हलाल—क्रि० अ० [अ०] खाने के लिये पशुओं को मुसलमानी शरह के मुताबिक (धीरे धीरे गला रेत कर) मारना। जबह करना।

हलाहल—सं० पु० [सं०] महा विष। भारी जहर।

हलुका—वि० [सं० लघुक, प्रा० लहुक विपर्यय क, हलुक] जो तौल में भारी न हो। जिसमें गुरत्व न हो। हलका।

हस्त—सं० पु० [सं०] हाथ। कर

हस्तिनि—सं० स्त्री० [सं०] मादा हाथी। हथिनी। आ० माया। दुर्बुद्धि।

हस्ती—सं० पु० [सं० हस्तिन] हाथी। बहुत बड़े आकार का जानवर। आ० माया। स्त्री। वाणी। मिथ्या ज्ञान।

हांकै—क्रि० स० [हिं० हांक + ना (प्रत्य०) हांकना। मार कर या बोल कर चौपायों को भगाना। प्रेरित करना।

हांड—दे० हाड़।

हांडी—सं० पु० [सं० भांड, हिं० हंडा] मिट्टी का मंझोला बरतन जो बटलोई के आकार का हो। हंडिया।

हांसी—सं० स्त्री० [सं० हांस] उपहास। निंदा। हंसी।

हाकिमा—सं० पु० [अ० हाकिम] हुकुमत करनेवाला। शासक। प्रधान अधिकारी। आ० निरंजन (मन)

हाट—सं० स्त्री० [सं० हट्ट] वह स्थान जहाँ बिक्री की सब प्रकार की वस्तुएं रहती हों। बाजार। आ० शरीर।

हाटे—दे० हाट

हाड़—सं० पु० [सं० हड्ड] हड्डी। अस्थि।

हाथा—सं० पु० [देश०] दो तीन हाथ लंबा लकड़ी का एक औजार जिस से सिंचाई करते समय खेत में आया हुआ पानी उलीच कर चारों ओर पहुँचाते हैं। आ० शरीर।

हारी—वि० [सं० हारि] हारना।

हालै—अव्य० [अ० हाल] तुरन्त। शीघ्र। ईश्वर के प्रेम में लीन हो जाना। तन्मयता।

हिंडोला—सं० पु० [सं० हिन्दोल] ऊपर नीचे घूमने वाला एक चक्कर जिस में लोगों के बैठने के लिये छोटे छोटे मंच बने रहते हैं।

सावन के महीने में इस पर झूलने की विशेष चाल है। झूला। छः रागों में एक राग।

हित्त—वि० [सं०] लाभदायक। उपकारी। अनुकूल।

हित—सं० पु० [सं०] भलाई करने या चाहने वाला। दोस्त। खैर ख्वाह।

हिय—सं० पु० [सं० हृदय प्रा० हिअ] हृदय। मन। उ० चले भाट हिय हर्ष न थोरा।—तु०

हिये—दे० हिय। उ० अबधौ बिन प्राण प्रिया रहिहै कहि कौन हितू अवलंब हिये।—केशव।

हिरदय—सं० पु० [सं० हृदय] अंतःकरण। मन। अंतरात्मा।

हिरन्य—सं० पु० [सं० हिरण्य] सोना। स्वर्ण।

हिलगी—क्रि० स० [हिं० अटकना] फंसना। बझना।

हिलोर—दे० हिलोरा।

हिलोरा—सं० पु० [सं० हिल्लोल] हवा के झोके आदि से जल का उठना और गिरना। तरंग। लहर। मौज।

हिवारे—सं० पु० [सं० हिम+आलि] हिवार। वर्फ।

हींडत—दे० हींडिया।

हींडिया—क्रि० अ० [देश० हिंड़न] अन्वेषण करना। खोजना। जाना। पहुँचना।

हींडते—दे० हींडिया।

हीन—वि० [सं०] रहित। वंचित। खाली। बिना।

हीरा—सं० पु० [सं० हीरक] एक रत्न या बहु मूल्य पत्थर जो अपनी चमक और कड़ाई के लिये प्रसिद्ध है। बज्र मणि। आ० चैतन्यात्मा।

हुजरे—सं० स्त्री० [फा०] मसजिद के पास की कोठरी।

हुलसै—क्रि० अ० [हिं० हुलसना] उल्लास में होना। आनंद में फूलना। उमंगना।

हेतु—सं० पु० [सं० हित] लगाव। प्रेम-संबंध। प्रेम प्रीति। अनुराग। उ० पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। विहंसि उमा बोली प्रिय बानी। तु०।

हेतू—दे० हेतु।

हेराय—क्रि० स० [सं० हरण] हिराना। न रह जाना। खोना। गुम हो जाना।

हेरिन्हि—क्रि० स० [हिं० हेरना] हेरना। ढूंढ़ना। खोजना।

हो—सं० पु० [सं०] पुकारने का शब्द या सम्बोधन।

होनिहारी—सं० स्त्री० [हिं०] वह बात जो होने को है।

होम—सं० पु० [सं०] देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में घृत जौ आदि डालना। हवन। यज्ञ। आहुति देने का कार्य।

होमै—क्रि० स० [सं० होम + ना (प्रत्य०) उत्सर्ग करना । छोड़ देना । नष्ट करना । बरबाद करना । हवन करना ।

हौं—सर्व० [सं० अहम्] ब्रज भाषा का उत्तम पुरुष एक बचन सर्वनाम । मैं ।

हौंस—सं० स्त्री० [अ० हवस] चाह । प्रबल इच्छा । लालसा । कामना । उ० सजै विभूषण बसन सब पिया मिलन की हौंस । पद्माकर ।

हौवा—दे० हव्वा ।

हृदै—दे० हिरदय ।

परिशिष्ट—(ख)

अंतर्गत कथाएँ तथा परिचय

अंकूर (अक्रूर)—श्वफलक और गान्दिनी के पुत्र एक यादव जो श्रीकृष्ण के चचा तथा परम भक्त थे। इन्हीं के साथ कृष्ण और बलराम मथुरा गये थे। सत्राजित की स्यामंतक मणि यही लेकर काशी चले गये थे।

अंजनी—यह हनुमान जी की माता थीं। इनके पति का नाम केसरी था।

अंबरीष—वैवस्त मनु के पौत्र महराज नाभाग के पुत्र थे। यह परम प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे, इन्हीं के कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था।

अकरदी—सूफी संप्रदाय के एक साधु इन का कबीर साहेब के साथ संवाद हुआ था।

अहीलहिं (अहिल्या)—यह महर्षि गौतम की स्त्री और वृद्धाश्व की पुत्री थीं। यह अत्यंत रूपवती थीं। इन के रूप पर मोहित होकर इन्द्र ने इनके साथ छल किया था दे० सुरपति।

अष्टंगी—सुन्दर आठ अंग वाली कन्या, आद्या (प्रकृति) प्रकृति के आठ अंग ये हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार। अनुराग सागर के अनुसार निरंजन की स्त्री जो सत्य पुरुष की इच्छा से पैदा हुई थी।

आदम—मुसलमानी मत के अनुसार सृष्टि का सब से पहला पुरुष। कहा जाता है कि खुदा ने फरिस्तों से मिट्टी मँगवा कर एक पुतला बनाया और उसमें जान (रूह) डाल दी और उस को स्वर्ग में रहने की आज्ञा दी। स्वर्ग में लगे हुए एक विशेष प्रकार के फल को खाने से मना किया था। परन्तु शैतान के बहकाने तथा कौतूहलवस इन्होंने उस फल को खाया, जिससे खुदा ने नाराज होकर इन्हें स्वर्ग से नीचे गिरा दिया।

इंद्र—दे० सुरपति।

ईस (ईश)—दे० शिव।

उमा—यह शिव जी की स्त्री थीं।

ऊधो—यह एक यादव थे जो श्री

कृष्ण के सखा और परम भक्त थे, यही कृष्ण का संदेश लेकर गोकुल गए थे और वहाँ गोपियों को ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया था।

कंस—यह मथुरा के राजा उग्रसेन का क्षेत्रज पुत्र था, इसने मगध राज जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नामक दोनों कन्याओं से पाणिग्रहण किया था और अपने ससुर (जरासन्ध) की सहायता से पिता को राज्य-च्युत कर के स्वयं राजा बना था। इसने अपने चचा की कन्या देवकी को बसुदेव के साथ ब्याहा था, विवाह के बाद भेजने जाते समय देववाणी हुई कि इसके आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र तुझे मारेगा। इस कारण कंस ने बसुदेव और देवकी को कैद कर लिया। कारागार में इनके जो लड़के होते थे, कंस उनको मरवा दिया करता था। बसुदेव भादों कृष्णाष्टमी की आधी रात को देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण को छिपाकर गोकुल में गोपराज नन्द के यहाँ रख आये और उसी रात्रि को नन्द की स्त्री यशोदा के गर्भ से उत्पन्न कन्या (योगमाया) को लेकर मथुरा लौट आये। इधर कंस को मालूम हुआ कि देवकी के आठवें गर्भ से कन्या उत्पन्न हुई है। उसने कन्या को पत्थर पर पटक कर मार डाला। पत्थर पर पटकते ही कन्या आकाश में उड़ गई और वहाँ से बोली कि तुझे मारने वाला उत्पन्न हो गया। यह सुन कर कंस ने बसुदेव देवकी को छोड़ दिया और उसका पता लगाने के लिये चारों ओर अपने दूत भेजे। उन दूतों को श्री कृष्ण ने मार डाला। अन्त में कंस ने धनुषयज्ञ का स्वाँग रच कर श्री कृष्ण को मथुरा बुलवाया, परन्तु कंस की सब चालाकियाँ व्यर्थ सिद्ध हुईं और कंस श्री कृष्ण के हाथ मारा गया।

कच्छ (कच्छप)—भगवान का दूसरा अवतार जिसने महिषासुर को मारा था और समुद्र मंथन के समय अपनी पीठ पर मंदराचल को धारण किया था।

कपि (कपीश)—दे० हनुमान।

कमला—विष्णु की पत्नी, इन के सम्बंध में भिन्न भिन्न पुराणों में अनेक कथाएँ मिलती हैं, इनकी उत्पत्ति के विषय में प्रसिद्ध है कि देवताओं और दानवों के समुद्र मथने से जो चौदह रत्न निकले थे उन्हीं में से एक यह थीं।

करम (करमाबाई)—जगन्नाथ पुरी में रहती थीं नित्य प्रातःकाल जगन्नाथ जी को खिचड़ी का भोग लगाती थीं। आज भी जगन्नाथ पुरी में करमाबाई के नाम की खिचड़ी बंटती है।

करण—दे० कुंती।

कलंकी (कल्कि)—विष्णु का दसवाँ अवतार, कहते हैं कलयुग के अंत में जब पाप अधिक बढ़ जायगा तब भगवान सम्भल ग्राम में विष्णुयश ब्राह्मण के घर में कल्कि अवतार लेंगे। और कलि का अंत कर के सतयुग का प्रादुर्भाव करेंगे।

कस्यप (कश्यप)—ये ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे। ये प्रजापति होने पर अपनी स्त्री अदिति के साथ तपस्या करने चले गये थे। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने इनसे बर मांगने को कहा। इन दोनों ने प्रार्थना की कि आप हमारे पुत्र हों। त्रेता में ये दोनों महराज दसरथ और कौशल्या हुए।

कान्ह—दे० कृस्न।

कासी—उत्तर भारत की एक नगरी जो वरुणा और अस्सी के बीच गंगा के किनारे बसी हुई है। और प्रधान तीर्थ स्थान है। यहीं कबीर साहेब प्रगट हुए थे।

कुंती—यह युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम की माता और सूरसेन की कन्या थीं, इन्हें कुन्तभोज ने गोद लिया था। अतः इन का नाम कुंती पड़ा, इनका बिवाह पाण्डु के साथ हुआ था। इन को दुर्वासा ऋषि ने वशी करण मन्त्र बतलाया था जिसके बल से यह देवताओं को बुलाकर पुत्र पैदा कर सकती थीं, अविवाहित अवस्था में ही इन्होंने सूर्य का आवाहन कर कर्ण को उत्पन्न किया था।

कुबेर—ये महर्षि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा की इलविला नाम की पत्नी से पैदा हुए थे। ब्रह्मा ने इन को समस्त सम्पत्ति का स्वामी बनाया था। इनका निवास कैलास के समीप अलकापुरी में है।

कृस्न, क्रिस्न (कृष्ण)—यदुवंशी बसुदेव के पुत्र जो भोजवंशी देवक की कन्या देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, उस समय देवक के भाई राजा उग्रसेन का पुत्र कंस अपने पिता को कैद कर मथुरा का राज्य करता था। देवकी के बिवाह के पश्चात जब कंस उसे भेजने जा रहा था, तब कंस को देववाणी द्वारा यह बात मालूम हुई कि देवकी के आठवें गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा, वह मुझ को मार डालेगा। इसलिये कंस ने देवकी और बसुदेव को अपने यहाँ कैद कर लिया था। देवकी के सात बालकों को तो कंस ने जन्म लेते ही मार डाला था पर आठवें बालक कृष्ण को जिन का जन्म भादों की कृष्णाष्टमी को आधी-रात के समय हुआ था, बसुदेव जी गोकुल में नंद के घर रख

आये थे और वहाँ से योगमाया नाम की कन्या को जो उसी रात्रि को यशोदा के गर्भ से पैदा हुई थी उठा लाये थे। कृष्ण ने अनेक अद्भुत कार्य किये थे, जिसे सुन कर कंस ने संकित होकर उन्हें मरवा डालने के अनेक उपाय किये पर सब व्यर्थ हुए, अंत में कृष्ण ने कंस को मार डाला। इन्होंने विदर्भ की कन्या रुक्मिणी से बिवाह किया था, पीछे ये द्वारिका चले गये, वहाँ इन्हों ने यादवों का राज्य स्थापित किया। महाभारत के युद्ध में इन्हों ने पाण्डवों को बहुत सहायता दी थी और अर्जुन को रण क्षेत्र में ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया था। इनकी मृत्यु एक बहेलिये के तीर लगने से द्वारावती में हुई थी। यह विष्णु के आठवें अवतार माने जाते हैं।

केसव (केशव)—विष्णु का एक नाम।

कौरव—दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र जिन की संख्या सौ थी।

गंडक (गंडकी)—एक नदी जो नैपाल में हिमालय से निकलती है और बहुत सी छोटी छोटी नदियों को लेती हुई पटने के पास गंगा में गिरती है। इस में काले रंग के गोल पत्थर निकलते हैं जो शालिग्राम कहलाते हैं। इन्हें विष्णु का प्रतीक मान कर लोग पूजते हैं।

गनेस (गणेश)—यह हिन्दुओं के प्रसिद्ध देवता हैं इनका शरीर मनुष्य का परन्तु सर हाथी का सा है, इनकी सवारी चूहे की मानी जाती है। यह महादेव की पत्नी पार्वती के पुत्र कहे जाते हैं।

गरुड़—यह पक्षियों के राजा और विष्णु के वाहन माने जाते हैं यह विनिता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र कहे जाते हैं।

गाइत्री—आदि शक्ति (अष्टंगी) से उत्पन्न इच्छारूपी स्त्री का नाम गाइत्री है।

गोकुल—एक प्राचीन गाँव जो वर्तमान मथुरा से पूर्व दक्षिण की ओर प्रायः तीन कोश दूर यमुना के दूसरे किनारे पर था। इसको आज कल महावन कहते हैं। कृष्ण ने अपनी वाल्यावस्था यहीं बिताया था। आज कल जिस स्थान को गोकुल कहते हैं वह नवीन और इससे भिन्न है।

गोपाल—कृष्ण का एक नाम दे० कृस्न।

गोपी ब्रज की गोप जातीय वह स्त्रियाँ या कन्याएँ जो श्रीकृष्ण के साथ प्रेम रखती थीं और जिन्होंने उनके साथ बाल क्रीड़ा तथा अन्य लीलाएँ की थीं।

गोपीचंद—यह महाराज भर्तृहरि की बहिन मैनावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और माता के उपदेश से राज पाट छोड़ कर विरक्त हो गये थे। इन्होंने अपनी स्त्री पद्मावती से भिक्षा मांगी थी। यह जालन्धर नाथ के शिष्य थे, इनकी जीवन घटनाओं को योगी सारंगी बजाकर गाते और भिक्षा मांगते हैं।

गोबरधन—बृंदावन का एक पर्वत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसे एक बार बहुत अधिक वर्षा होने पर कृष्ण ने अपनी उँगली पर उठाया था।

गोबिंद—श्रीकृष्ण का एक नाम। दे० कृस्न।

गोरख—यह एक प्रसिद्ध योगी तथा महात्मा थे, यह नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। यह तंत्र विद्या के आचार्य भी थे, इनके बनाये हुए संस्कृत में ग्रन्थ भी हैं। नौ नाथ तथा चौरासी सिद्धों में इनकी गणना है गोरखपुर में इनके नाम का मन्दिर भी है।

गौतम—एक ऋषि जिन्होंने अपनी स्त्री अहिल्या को इन्द्र के साथ अनुचित सम्बंध करने के कारण शाप दिया था, जिसका उद्धार रामचन्द्र ने किया था।

ग्वाल—ब्रज के वे गोप बालक जो श्रीकृष्ण के साथी थे और उनके साथ क्रीड़ा करते थे तथा गौवों को चराया करते थे।

चंद्रमा—यह चन्द्रलोक के स्वामी और सम्पूर्ण ग्रहों के राजा हैं इन्होंने एक बार गुरु-पत्नी (बृहस्पति की स्त्री) को अपने यहाँ एक यज्ञ में बुलाया और फिर उन पर प्रेमासक्त होकर जाने न दिया। बृहस्पति जी के कहने पर ब्रह्मा जी ने मध्यस्थ होकर उनकी स्त्री को उन्हें दिला दिया और उससे उत्पन्न पुत्र बुध को चन्द्रमा को ही दे दिया।

जगनाथ (जगन्नाथ)—जब प्रभास क्षेत्र में कृष्ण भगवान ने शरीर को त्यागा और उनका संस्कार करके समुद्र में जल प्रवाह किया था तो उसी का एक तेज रूप पिंड जगन्नाथ में समुद्र के किनारे जा लगा। उसी को जगन्नाथ के उदर में गाड़ा गया। कहते हैं इसके लिए भगवान ने वहाँ के लोगों को स्वप्न दिया था।

जड़ (जड़ भरत)—अङ्गिरा गोत्र में उत्पन्न हुए एक ब्राह्मण का नाम था। यह बड़े ही ब्रह्मवेता थे इनकी कथा भागवत में है।

जनक—मिथिला के एक राज वंश की उपाधि है। अपने पूर्वज निमि-विदेह के नाम पर विदेह भी कहलाते थे। सीता जी इसी कुल

में उत्पन्न सीरध्वज जनक की पुत्री थीं, इस कुल में बहुत बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी हुए हैं, जिनकी कथाएँ उपनिषदों और पुरानों में भरी पड़ी हैं। शुकदेव आदि ने यहीं से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था याज्ञवल्क्य तथा जनक का प्रायः ब्रह्मज्ञान के संबंध में वार्तालाप हुआ करता था।

जसोदा (यशोदा)—राजा नन्द की रानी का नाम है इन्होंने श्रीकृष्णका पुत्र भाव से पालन पोषण किया था।

जरासिंध—एक राजा का नाम है। इनको भीमसेन ने मारा था। इसका वर्णन महाभारत में है। इसका धड़ विदीर्ण होने पर भी जरा नामक देवी के प्रताप से जुड़ जाता था। अतः श्रीकृष्ण ने मौका देखकर टांगें र कर मारने की गुप्त क्रिया भीम को बतलाई उसी प्रकार छल से मारने से सफलता मिली।

जागवलिक (याज्ञवल्क्य)—एक ऋषि जो राजा जनक के दरबार में रहते थे और योगेश्वर याज्ञ-वल्क्य के नाम से प्रसिद्ध थे। मैत्रेयी और गार्गी इनकी पत्नियाँ थीं। इनका राजा जनक से ब्रह्म ज्ञान पर बहुत संवाद हुआ था।

जैदेव (जयदेव)—यह कवि गंगा के किनारे बिंदुविलु नामक गाँव में रहते थे और ईश्वर विषयक कविता किया करते थे, इसी ेम में घरबार छोड़ कर त्यागी बन गये, गुदड़ी और कमंडल के अतिरिक्त कुछ नहीं रखते थे, जंगलों में बिचरते रहते थे। कहते हैं बाद में इन्होंने एक ब्राह्मण की कन्या से विवाह किया था। विवाह करने के पश्चात् गीत गोविंद की रचना की थी।

जौनपुर—उत्तर प्रदेश का एक प्राचीन नगर है। यह १३६४ से १४६३ ई० अर्थात १०० वर्ष तक बदाऊँ और इटावा से बिहार पर्यन्त विस्तीर्ण सुसमृद्ध स्वाधीन मुसलिम राज्य की राजधानी था। शरकी राजा के बाद जौनपुर लोदी के अधिकार भुक्त हुआ। इनके राजत्वकाल में यहाँ बराबर विद्रोह और शोणित पात हुआ करता था। यहाँ पीर बहुत रहा करते थे।

झूंसी—उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद जिले की एक तहसील का नाम यह गंगा के बायें किनारे पर है। हिन्दू पुराणों में वर्णित केशी नगर या प्रतिष्ठान इसी का नाम है। यह विख्यात चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी थी। पुराने गढ़ में अनेक भूमरे बने हुए हैं, जिनमें साधू रहते हैं। यहाँ पीरों की बहुत समाधियाँ हैं। शेख तकी का मजार प्रसिद्ध है।

डीली (दिल्ली)—यमुना नदी के के किनारे बसा हुआ उत्तर पश्चिम भारत का एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर जो बहुत दिनों तक हिन्दू राजाओं और मुसलमान बादशाहों की राजधानी था और जो सन् १९१२ में फिर ब्रिटिश भारत की भी राजधानी हो गया। कहा जाता है कि इन्द्रप्रस्थ के मयूरवंशी अंतिम राज दिलू ने इसे पहले पहल बसाया था, इसी से इसका नाम दिल्ली पड़ा। यह भी प्रवाद है कि पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल ने एक बार एक गढ़ बनवाना चाहा था। उस की नीव रखने के समय उनके पुरोहित ने अच्छे मुहूर्त्त में लोहे की एक कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा लगी है जिसके कारण आप के तोंअर वंश का राज्य अचल हो गया। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ और उन्हों ने वह कील उखड़वा दी। कील उखड़ाते ही वहाँ से लहू की धारा निकलने लगी। इस पर राजा को बहुत पश्चाताप हुआ। उन्हो ने फिर उसी स्थान पर वही कील गड़वाई पर वह ठीक नहीं बैठी, कुछ ढीली रह गई। इसी से उस स्थान का नाम ढीली पड़ गया जो बिगड़ कर दिल्ली हो गया।

तारा—यह बालि की स्त्री थी, रामचंद्र द्वारा बालि के मारे जाने पर सुग्रीव को उपपति मानकर रहने लगीं, इनकी गिनती पंच कन्याओं में है। बृहस्पति की स्त्री का नाम भी तारा था, जिस को चन्द्रमा ने अनुरक्त होकर अपने अधिकार में कर लिया था।

त्रिपुरारी—महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नाम के तीनों पुत्रों ने मय दानव से अपने लिये बनवाये थे। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार अधिक बढ़ गया तब देवताओं की प्रार्थना पर शिवजी ने एक ही बाण से तीनों नगरों को नष्ट कर दिया, और पीछे तीनों असुरों को भी मार डाला। तब से शिव जी का नाम त्रिपुरारि पड़ा। दे० महादेव।

त्रिविक्रम—वामन भगवान के अवतार का नाम है। विष्णु का यह पांचवाँ अवतार राजा बलि को छलने के लिये हुआ था।

दत्ता (दत्तात्रेय)—यह अत्रि के पुत्र अनुसूया के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं एक बार एक पतिव्रता स्त्री अपने कुष्टग्रसित पति को वेश्या का नाच

दिखाने के लिए लिये जा रही थी, अंधेरी रात होने के कारण उस ब्राह्मण का पैर माण्डव्य ऋषि को लग गया, उन्होंने क्रोधित होकर शाप दिया कि जिसका पैर मुझे लगा है वह सूर्योदय होते ही मर जायगा। पतिव्रता ने कहा सूर्योदय होगा ही नहीं, सूर्य के न उदय होने से देवगण घबड़ा कर ब्रह्मा के पास गये, उन्हो ने पतिव्रता को समझाने के लिये अनुसूया को भेजा। अनुसूया ने पतिव्रता को समझाया-बुझाया और कहा कि तुम्हारे पति को मैं जिला दूंगी, इस पर उसने सूर्य को उदय होने दिया, सूर्य के उदय होते ही उसका पति मर गया, अनुसूया ने उसको जिला दिया, देवताओं ने प्रसन्न होकर अनुसूया से बर मांगने को कहा, उसने कहा ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्र हों, तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर और शिव ने दुर्वासा बनकर अनुसूया के घर जन्म लिया।

दसरथ—यह प्रसिद्ध रघुवंशी राजा अयोध्या के रहने वाले थे और विख्यात अवतार रामचन्द्र जी के पिता थे।

द्वारावती—यहाँ श्री कृष्णचंद्र जरासंध के उत्पातों के कारण मथुरा छोड़ कर जा बसे थे। यहीं उस समय यादवों की राजधानी थी। पुराणों में लिखा है कि कृष्ण के देह त्याग के पीछे द्वारावती समुद्र में मग्न हो गई। पोरबंदर से १५ कोस दक्षिण समुद्र में इस पुरी का स्थान लोग अब तक बताते हैं। द्वारावती का एक नाम द्वारका है।

दुरजोधन (दुर्योधन)—धृतराष्ट्र का सब से बड़ा पुत्र, यह अपने चचेरे भाई पाण्डवों से जलता था, भीमके साथ इसका सबसे अधिक बैर था, गदा चलाना यह भी जानता था और भीम भी, पर यह भीम की बराबरी नही कर सकता था, धृतराष्ट्र ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को युवराज बनाना चाहा, पर इसने ऐसा नहीं होने दिया, अन्त में पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ में अपनी राजधानी स्थापित की और एक अश्वमेध यज्ञ किया—पाण्डवों का अभ्युदय दुर्योधन से देखा न गया। उसने पाण्डवों को जुआ खेलने में फँसाया और अपने मामा शकुनी के छल से पाण्डवों का सर्वस्व जीत लिया, यहाँ तक कि पाण्डव द्रौपदी को भी हार गये। दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी के बाल खींचकर उसकी बेइज्जती करनी चाही। इस पर भीम ने दुःशासन के वक्षस्थल का रुधिर पान करने और उसके रुधिर

से बाल रँगने की प्रतिज्ञा की। जुए के नियमानुसार पाण्डवों ने तेरह वर्ष ज्ञात और एक वर्ष अज्ञात रूप से वास किया, बनवास पूरा होने पर कृष्ण दूत होकर कौरवों के पास गये, पर कौरवों ने कुछ भी देना नहीं चाहा। इस पर महाभारत युद्ध हुआ जिस में कौरवों का नाश और पाण्डवों की विजय हुई।

देवकी—यह प्रसिद्ध अवतार श्री कृष्ण जी की माता और कंस की बहन थीं जो बसुदेव को ब्याही थीं।

धारा—मालव की राजधानी जो राजा भोज के समय में प्रसिद्ध थी। कहते हैं कि भोज ही उज्जयिनी से राजधानी धारा लाए थे। दे० भोज।

ध्रुव—राजा उत्तानपाद के पुत्र जिन की माता का नाम सुनीति था। राजा उत्तानपाद के दो स्त्रियाँ थीं। सुरुचि और सुनीति। सुरुचि को राजा बहुत चाहते थे। सुरुचि से भी उत्तम नाम का एक पुत्र था। एक दिन राजा उत्तम को गोद में लिए बैठे थे, इसी बीच ध्रुव वहाँ खेलते हुए आ पहुँचे और राजा की गोद में बैठ गये। इस पर उन की विमाता ने उन्हें अवज्ञा के साथ वहाँ से हटा दिया। ध्रुव इस अपमान को न सह सके। घर से निकल कर तप करने चले गये। विष्णु भगवान इन की भक्ति से प्रसन्न होकर वर दिया। तब घर आकर ध्रुव ने पिता से राज्य प्राप्त कर बहुत दिनों तक राज्य किया।

नाग—वराह पुराण में नागों की उत्पति के सम्बंध में यह कथा लिखी है। सृष्टि के आरंभ में कश्यप उत्पन्न हुए। उनकी पत्नी कद्रु से उन्हें ये पुत्र उत्पन्न हुए—अनंत, वासुकि, कबंल, कर्कोटक, पद्म, महा पद्म, शंक, कुलिक और अपराजित। कश्यप के ये सब पुत्र नाग कहलाए। इनके पुत्र, पौत्र बहुत ही क्रूर और विषधर हुए। इनसे प्रजा क्रमशः क्षीण होने लगी। प्रजा ने जाकर ब्रह्मा के यहाँ पुकार की, ब्रह्मा ने नागों को बुला कर कहा जिस प्रकार तुम हमारी सृष्टि का नाश कर रहे हो उसी प्रकार माता के शाप से तुम्हारा भी नाश होगा। एक बार कद्रु और विनता में विवाद हुआ कि सूर्य्य के घोड़े की पूछ काली है या सफेद। विनता सफेद कहती थी कद्रु काली। अंत में यह ठहरी कि जिस की बात ठीक न निकले वह दूसरी की दासी हो कर रहे। जब कद्रु ने अपने पुत्रों से यह बात कही तब उन्होंने कहा कि पूछ तो सफेद है अब क्या होगा। अंत में जब सूर्य्य

निकला। तब सब के सब नाग उच्चैः श्रवा की पूंछ से लिपट गये वह काली दिखाई पड़ी। जिन नागों ने पूछ को काला करना स्वीकार किया था, उन्हें विनता ने नष्ट होने का शाप दिया। जिस के अनुसार वे जनमेजय के सर्प यज्ञ में नष्ट हुए। जनमेजय के पिता राजा परीक्षित को जब तक्षक (सर्प राज) ने डस लिया, तब जनमेजय बहुत क्रोधित हुए और संसार भर के सर्पों का नाश करने के लिये ब्राह्मणों से परामर्श करके सर्प यज्ञ आरंभ किया। सर्प यज्ञ के अग्नि-कुंड में ऋत्विकों ने मंत्र पढ़कर सब सर्पों को भस्म कर दिया। केवल एक तक्षक ही के प्राण आस्तीकि ऋषि के समझाने से बचे थे।

नाथ मछंदर—(मत्स्येंद्रनाथ) एक प्रसिद्ध साधु और हठ योगी जो गोरखनाथ के गुरू थे। कहते हैं एक बार ये (मछंदरनाथ) सिद्ध होने के लिये सिंहल गये पर वहाँ पद्मिनियों के जाल में फँस गये, जब गोरखनाथ गये तब इनका उद्धार हुआ।

नामदेव—यह भगवान के परम भक्त और हिन्दी के कवि हो गये हैं, प्रायः इनका वर्णन निर्गुण है। पंढरपुर के विठ्ठल भगवान के मन्दिर से इनका सम्बन्ध बतलाया जाता है। परन्तु उत्तरी भारत में भी इनके पद गाये और पढ़े जाते हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह वामदेव जी के नाती थे।

नारद—यह ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। यह भगवान के भी बड़े भक्त थे। एक समय इनकी तपस्या से डर कर इन्द्र ने उसे भंग करने के लिए कामदेव आदि को भेजा। परन्तु यह नहीं डिगे। कामदेव को जीतने का इनको बड़ा अहंकार हो गया। इसकी चर्चा वह सभी स्थानों पर करने लगे तब महादेव जी ने इनको समझाया कि विष्णु से कभी इसकी चर्चा न करना लेकिन इनसे नहीं रहा गया। इन्होंने उनसे भी अपनी विजय को गर्व से वर्णन किया। इस पर भगवान उनकी परीक्षा के लिए उन के लौटने के मार्ग में एक माया रूपी राजा तथा उसकी कन्या का निर्माण कर उसका स्वयंवर निश्चित कर दिया। नारद जी उस कन्या के रूप और गुणों पर मोहित हो गये तथा उस से व्याह करने की अभिलाषा से विष्णु के पास उनका रूप माँगने गये भगवान उनको माया के प्रभाव में आया हुआ जान कर उनका शरीर तो बहुत सुन्दर

बनाया किन्तु मुँह बन्दर का बना दिया। इस रहस्य को नारद नहीं जान सके और अभिमान के साथ स्वयम्वर में आ बैठे। परन्तु उनकी आशा पूरी नहीं हुई, उस कन्या को स्वयम् विष्णु एक दूसरा रूप धारण कर व्याह ले गये। स्वयम्बर में उपस्थित शिवजी के दो गण उनके रूप को देख कर हँसने लगे तब उन्होंने अपने मुख के प्रतिविम्ब को जल में देखा और क्रोध से शिव-गणों को तथा भगवान तक को शाप दे डाला। एक और कथा नारद के विषय में महाभारत में प्रचलित है वह इस प्रकार है। नारद एक समय राजा सृंजय के यहाँ रहते थे। उन्होंने अपनी कन्या को उनकी सेवा करने के लिए नियुक्त किया। परन्तु नारद जी काम वश होकर उसकी ओर आकर्षित हो गये और उस से व्याह कर लिया।

निरंजन—निराकार ईश्वर का नाम है। अनुराग सागर के अनुसार काल या मन का नाम भी निरंजन है जो जीवों को भव बन्धन में डालता है। यह सत्य पुरुष का सुत कहा जाता है जो अपनी करनी से काल हो गया था।

पंडवा (पाण्डव)—कुन्ती और माद्री के गर्भ से उत्पन्न राजा पाण्डु के पाँचों पुत्र, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल तथा सहदेव थे। यह बड़े योद्धा थे। कृष्ण की सहायता से महाभारत का युद्ध जीता था, यह कृष्ण के परम भक्त भी थे। इनका अन्त इस प्रकार हुआ था। यादवों के सर्व-नाश और श्री कृष्ण के शरीरान्त का समाचार जब हस्तिनापुर पहुँचा तो पाण्डवों के मन में संसार से विराग हो गया और जीवित रहने की चाह उनके मन में न रही। परीक्षित को गद्दी पर बैठा कर द्रौपदी सहित पाँचों भाइयों ने तीर्थ करने का निश्चय किया। वे हस्तिनापुर से रवाना होकर अनेक पवित्र स्थानों के दर्शन करते हुए अन्त में हिमालय की तलेहटी में जा पहुँचे। उन्होंने पहाड़ पर चढ़ना प्रारम्भ किया और चढ़ते-चढ़ते रास्ते में द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव इन पाँचों ने एक एक कर के गिर कर शरीर त्याग दिये। कहते हैं केवल युधिष्ठिर शेष रह गये थे, जिनको इन्द्र अपने रथ पर बैठा कर स्वर्ग ले गये थे और इस प्रकार इनका अन्त हो गया था।

पंडु (पाण्डु)—विचित्रवीर्य की स्त्री अम्बालिका के पुत्र थे। कहा जाता है कि विचित्रवीर्य के क्षय रोग द्वारा मर जाने के बाद व्यास

देव द्वारा यह उत्पन्न हुए थे। इनका व्याह राजा कुन्तिभोज की कन्या कुंती से हुआ था, बाद में भीष्म ने इनका एक और व्याह मद्र देश के राजा की कन्या माद्री से कराया था। एक समय शिकार में इन्होंने एक हिरन और हिरनी को मैथुन करते समय मारा था। कहा जाता है यह दोनों ऋषि पुत्र किमिन्दय तथा उनकी स्त्री थे तीर लगते ही मृग ने मनुष्य की बोली में कहा कि तुमने मुझे स्त्री के साथ भोग करते समय मारा है अतः तुम भी जब अपनी स्त्री के साथ भोग करोगे तो तुम्हारा भी प्राणान्त होगा। कुछ समय बाद एक बार बसन्त ऋतु में पाण्डु को बहुत अधिक काम पीड़ा हुई, उस समय उन्हों ने माद्री के बहुत मना करने पर भी बल पूर्वक उसके साथ भोग किया। ऋषि के शाप के अनुसार उसी समय उनका प्राणान्त हो गया था।

परसराम (परशुराम)—यह यमदग्नि ऋषि के पुत्र थे, इनकी माता का नाम रेणुका था। यह भगवान के अवतार भी माने जाते हैं। एक समय सहस्रबाहु इन के पिता यमदग्नि के आश्रम में ससैन्य पधारे। ऋषि ने कामधेनु के प्रभाव से राजा को सेना सहित भोजन आदि कराया तथा स्वागत किया। कामधेनु के इस चमत्कार मयी गुण पर मुग्ध होकर सहस्रबाहु को उसे प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। जब ऋषि किसी प्रकार भी देना स्वीकार नहीं किया तब राजा ने उन्हें मार डाला और गौ लेकर चला गया। उस समय परशुराम जी कहीं बाहर गये थे, आने पर विलाप करती हुई माता से घटना मालूम हुई। माता ने इनके समक्ष इक्कीस बार अपनी छाती दुःख से पीटा, इस पर इन्हों ने इक्कीस बार क्षत्रियों को नाश करने का प्रण किया तथा सहस्रार्जुन को युद्ध में परास्त किया और मार डाला।

प्रहलाद (प्रह्लाद)—यह परम विष्णु भक्त थे। इनका जन्म दैत्य कुल मे हुआ था। इनके पिता का नाम हिरण्यकशिपु था, इनकी भक्ति का विकास बचपन ही से आरम्भ हुआ था। दैत्यराज ने इन के पढ़ाने का भार अपने पुरोहित षण्ड और अमरक को दिया पर भगवद्भक्ति के सिवा प्रह्लाद कुछ जानते ही न थे। हिरण्यकशिपु विष्णु का कट्टर विरोधी था, उस ने बहुत चाहा कि प्रह्लाद भगवद्भक्ति छोड़ दे इसके लिए उसने प्रह्लाद को बिष

पिलवाया, हाथी से कुचलवाया, पहाड़ से गिरवाया, समुद्र में फेकवाया तथा आग में डलवाया पर प्रह्लाद का बाल बांका न हुआ, वे अपनी भक्ति पर अटल रहे। अन्त में भक्त वत्सल भगवान ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्य-कशिपु का बध किया।

पारथ—अर्जुन का एक नाम था। इन्होंने इंद्रप्रस्थ बसाने के समय श्री कृष्ण की आज्ञा से खांडव वन को जलाया था और वहीं अपने रहने के लिए भवन बनवाये थे।

पारवती (पार्वती)—यह राजा हिमाञ्चल की पुत्री और शिव जी की अर्द्धांङ्गिनी तथा गनेश जी की माता हैं।

पीपा—यह गागरोन नामक गढ़ के राजा थे, ये पहले शक्ति उपासक थे, परन्तु कुछ वैष्णव संतों के सतसंग से परम वैष्णव स्वामी रामानन्द जी के शिष्य हो गये थे।

पुरंदर—इन्द्र का एक नाम, कहते हैं एक बार इन्द्र ने अपने शत्रु का नगर तोड़ा था, तभी से इन्द्र का एक नाम पुरंदर भी पड़ गया। दे० सुरपति।

पृथु—यह अत्रि वंश के राजा अङ्ग के पौत्र राजा वेणु के पुत्र थे, ये बहुत धार्मिक और प्रतापी चक्रवती राजा हो गये हैं।

फनिंद—शेष का एक नाम। पुराणानुसार सहस्र फनो के सर्पराज जो पाताल में हैं और जिनके फनों पर पृथ्वी ठहरी है। ये अनंत कहे गये हैं और विष्णु भगवान क्षीर सागर में इन्हीं के ऊपर शयन करते हैं।

बरुन (वरुण)—एक वैदिक देवता जो जल के अधिपति, दस्युओं के नाशक और देवताओं के रक्षक कहे गये हैं। पुराणों में वरुण की गिनती दिकपालों में है और वह पश्चिम दिशा के अधिपति माने गये है। वरुण का अस्त्र पाश है।

बलि—दैत्य जाति के एक राजा जो विरोचन के पुत्र और प्रह्लाद के पौत्र थे। यह बड़े दानी थे इन को विष्णु ने बामन रूप से छला था।

बलिराज (राजा बालि)—पम्पापुर किष्किन्धा के बानर राजा जो अंगद के पिता और सुग्रीव के बड़े भाई थे, जिस समय रामचंद्र जी सीता को ढूढ़ते हुए किष्किन्धा पहुँचे थे, उस समय मतंग के आश्रम में सुग्रीव से उनकी मित्रता हो गई थी, उसी समय सुग्रीव के कहने से उन्होंने पहिले सुग्रीव को बालि से द्वन्द युद्ध करने भेजा जब सुग्रीव लड़ाई में हारने लगा तब राम ने छल

से वृक्ष की ओट से बालि का बध किया था।

बसिष्ठ (वशिष्ठ)—मित्रावरुण के यज्ञ में अगस्त जी के साथ ही वशिष्ठ जी की उतपति हुई थी। ब्रह्मा के कहने से इन्हो ने सूर्यबंश का पौरोहित्य लेना स्वीकार किया था। यह रामचन्द्र के कुलगुरु थे और रामचन्द्र जी को ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया था। ये भगवान राम के समय तक पृथ्वी पर रहे, राम के साकेत पधारने पर यह सप्तर्षि मंडल में स्थिर हो गये।

बालमीकि (वाल्मीक)—एक मुनि जो रामायण के रचयिता और आदि कवि कहे जाते हैं। इनका जन्म भृगुवंश में हुआ था, ये प्रचेता के वंशज थे, तमसा नदी के किनारे जिसे अब टौंस कहते हैं रहते थे।

बालि—दे० बलिराज।

बावन—विष्णु का पांचवाँ अवतार जिसने बलि को छला था, यह आदित्य के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। राजा बलि बड़े ही दानी थे इन से यज्ञ में बावन ने ब्राह्मण का रूप धारण कर तीन पग पृथ्वी माँगी थी। बाद में नापने के समय अपने रूप का विस्तार कर सम्पूर्ण पृथ्वी दोही पग में नाप ली शेष के लिये बलि ने अपनी पीठ नपवा दी थी।

बिरंचि (विरंचि)—ब्रह्मा का एक नाम है।

बिस्नु (विष्णु)—हिन्दुओं के प्रधान और बहुत बड़े देवता जो सृष्टि का भरण पोषण और पालन करने वाले माने जाते हैं। भिन्न-भिन्न पुराणों में इनके सम्बंध में अनेक प्रकार की कथाएँ और उनकी उपासना आदि का बहुत अधिक महात्म मिलता है। विष्णु के उपासक वैष्णव कहलाते हैं। इनकी स्त्री का नाम श्री या लक्ष्मी कहा गया है। इनका वाहन वैनतेय नामक गरुड़ माना जाता है।

बेतु (वेणु)—यह राजा अङ्ग का पुत्र और पृथु का पिता था। वेणु बहुत अत्याचारी था। ऋषियों के समझाने पर जब इसने नहीं सुना तो ऋषियों ने अपने तेज से इसे मार डाला था।

बौध—यह भगवान का नवाँ अवतार हैं।

ब्यास—पाराशर के पुत्र कृष्ण-द्वापायन, इन्होंने वेदों का संग्रह, विभाग और सम्पादन किया था, कहा जाता है कि अठारहों पुराण, महाभारत, भागवत और वेदान्त आदि की भी रचना इन्होंने किया था। इनके जन्म आदि की कथा महाभारत में बहुत विस्तार के साथ दी है, उसमें कहा गया है

कि एक बार मत्स्यगंधा सत्यवती नाव खे रही थी, उसी समय पाराशर मुनि वहाँ जा पहुँचे और उसे देखकर आशक्त हो गये वे उससे बोले कि तुम मेरी कामना पूरी करो सत्यवती ने कहा महाराज नदी के दोनों ओर ऋषि मुनि आदि बैठे हुए हैं और हम लोगों को देख रहे हैं, मैं कैसे आपकी कामना पूरी करूँ। इस पर पाराशर मुनि ने अपने तप के बल से कोहरा खड़ा कर दिया, जिससे चारों ओर अँधेरा छा गया, उस समय सत्यवती ने फिर कहा महाराज मैं अभी कुमारी हूँ और आपकी कामना पूरी करने से मेरा कौमार्य नष्ट हो जायगा। उस दशा में मैं किस प्रकार अपने घर में रह सकूँगी, पाराशर ने उत्तर दिया, नहीं इससे तुम्हारा कौमार्य नष्ट नहीं होगा तुम मुझ से बर माँगो, सत्यवती ने कहा कि मेरे शरीर से मछली की जो गंध आती है वह न आवे, पाराशर ने कहा कि ऐसा ही होगा, उसी समय से उसके शरीर से सुगन्ध निकलने लगी, तब से उसका नाम गन्धवती व योजनगन्धा पड़ा। इसके उपरान्त पाराशर मुनि ने उसके साथ संभोग किया जिससे उसे गर्भ रह गया और उस गर्भ से इन्हीं व्यास देव की उत्पत्ति हुई।

ब्रह्मा—ब्रह्म के तीन सगुण रूपों में से सृष्टि की रचना करने वाला रूप। पितामह, मत्स्य पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के शरीर से जब एक अत्यंत सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई तब वे उस पर मोहित होकर उसे ताकने लगे वह उनके चारों ओर घूमने लगी। जिधर वह जाती उधर देखने के लिये ब्रह्मा के एक सिर उत्पन्न हो जाता, इस प्रकार उनके चार मुख हो गये। शिव पुराण में लिखा है, ब्रह्मा ने पहिले मानस सृष्टि किया उसके बाद संध्या नाम की एक कन्या को पैदा किया। फिर कामदेव को उत्पन्न किया। कामदेव को ब्रह्मा ने बर दिया कि तुम्हारे कटाक्ष से कोई नहीं बचेगा। रचना में तुम मेरी सहायता करो। काम ने प्रथम प्रयोग ब्रह्मा और संध्या पर किया। जिस से विकल होकर ब्रह्मा ने संध्या से समागम किया था। दक्ष के यहाँ सती के विवाह के अवसर पर सती का रूप देख कर ब्रह्मा कामासक्त हो गये, यह जान कर शिव ने ब्रह्मा का सिर काट डाला था।

ब्रह्मानी (ब्रह्माणी)—ब्रह्मा की स्त्री जो सूर्य की पृश्नि नाम की पत्नी से उत्पन्न हुई थी, इसका नाम सावित्री था।

श्राह (वाराह)—यह विष्णु का तीसरा अवतार जिसने हिरण्याक्ष का वध किया था और विष्ठा में छिपी पृथ्वी को बाहर निकाला था।

भभीषन (विभीषन)—रावण का भाई था, इसके पिता विश्रवा माता कैकसी, पत्नी सरमा थी, यह श्री राम का शरणागत भक्त था। रावण के मरने के बाद लंका का राजा हुआ।

भरथरि (भर्तृहरि)—यह उज्जैन के राजा थे जिन्हे अपनी रानी पिंगला का चरित्र देख कर वैराग्य उत्पन्न हो गया था, अतः ये अपना सारा राज पाट अपने भाई विक्रमादित्य को देकर योगी होकर बन चले गये थे। इनका भर्तृहरि शतक त्रय ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है।

भोज—यह उज्जैनी के राजा थे जिन्होंने अपनी राजधानी धारा नगरी बनाई थी, इनके पिता इन्हें छोड़ कर बाल्यकाल ही में स्वर्ग सिधार गये थे अतः इनका चचा मुंज राजा हुआ। पहले मुंज इन्हें बड़े प्रेम से देखता था, परन्तु एक दिन यह उस पाठशाला को जिसमें भोज पढ़ता था देखने गया, वहाँ भोज की विद्या चातुरी को देख कर दंग रह गया पंडितों ने भी भोज की बड़ी प्रसंशा की। मुंज सोचने लगा कि कुछ दिनों के बाद तो लोग भोज को ही राजा बनायेंगे, अतः मन्त्री को बुलाकर सारा ब्यौरा बतलाया और आज्ञा दी कि इसे वनमें ले जाकर मार डालो और सिर काट कर मेरे पास लाओ। इस निमित्त मन्त्री ने भोज को वनमें ले जाकर ज्योंही यह हाल बतलाया, भोज ने एक श्लोक अपने चचा के लिये लिखकर मन्त्री को दिया जिसका भावार्थ यह था कि "सत्ययुग का राजा मान्धाता, त्रेता के समुद्र पर पुल बाँधने वाले और रावण हन्ता राम, द्वापर के युधिष्ठिर आदि अनेक राजा स्वर्गगामी हुए, परन्तु यह पृथ्वी किसी के साथ नहीं गयी, स्यात् अब वह कलियुग में आपके साथ अवश्य जायगी। मन्त्री इससे प्रभावित हो भोज को न मारकर एक बनावटी सिर लाकर मुंज के आगे रक्खा और वह श्लोक भी दिया जिसे पढ़कर मुंज बहुत पछताया और मरने पर उद्यत हो गया तब मन्त्री ने सारा रहस्य बतलाया और भोज को राजा मुंज के सामने उपस्थित किया, मुंजने भोज से अपने अपराध की क्षमा मांगी और उसे गद्दी पर बिठला कर आप वन को तपस्या करने चले गये। भोज का राज्य प्रबन्ध बहुत ही अच्छा था। धारा नगरी

में सुन्दर सुन्दर मकानों और सड़कों को देखकर इन्द्रपुरी का भ्रम हो जाता था प्रत्येक विद्या की अलग २ पाठशालाएँ-चिकित्सा के लिए अस्पताल, और प्रत्येक प्रबन्ध के लिए अलग अलग समितियाँ तथा भवन थे, सारा प्रजा वर्ग संतुष्ट दिखाई देता था। भोज की राजसभा के पंडितों की बहुत सी कथाएँ भी प्रचलित हैं, जिनसे उस समय की संस्कृत विद्या का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

मगहर—उत्तर भारत का एक प्राचीन स्थान, जहाँ कबीर साहेब काशी से सं० १५७५ में आये थे और अगहन सुदी एकादशी को शरीर त्याग किया था।

मच्छ (मत्स्य)—विंष्णु का सबसे पहला अवतार, जिसने शंखासुर को मार कर वेदों का उद्धार किया था।

मंदोदरि (मन्दोदरी)—यह रावण की स्त्री थी, इसके पिता का नाम मयदानव और माता का नाम हेमा था जो अप्सरा थी। रामचन्द्र द्वारा रावण के मारे जाने पर विभीषण को उपपति मान कर रहने लगी थी।

महादेव—दे० शिव।

मानिकपुर—जबलपुर लाइन में इस नाम का एक नगर है। कबीर साहेब ने कुछ दिनों तक वहाँ निवास किया था। यह बात पनिका जाति के लोगों में अब भी प्रसिद्ध है। सुना जाता है कि उक्त जाति के प्राचीन ग्रंथ मानिक खण्ड में कबीर साहेब का ऐतिहासिक वृत्तान्त पूरी तरह लिखा हुआ है।

मुरलीधर—श्री कृष्ण का एक नाम है, यह नाम मुरली (वंशी) धारण करने के कारण पड़ा था

महंमद (मुहम्मद) यह मुसलमान धर्म के उपदेष्टा थे, ये अरब देश के मक्का शहर में उत्पन्न हुए थे, यहाँ इनका बड़ा प्रभाव पड़ा। इन के पिता का नाम अबदुल्ला और माता का नाम अमीना था, इनका देहान्त मदीने में हुआ था। इन्हों ने अपने जीवन के आरम्भ काल ही में यहूदियों और ईसाइयों की बहुत सी धार्मिक बातों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उसी समय से ये स्वतंत्र रूप से अपना एक धर्म चलाने की चिंता में थे और इसी उद्देश्य से लोगों को कुछ उपदेश भी देने लगे थे, प्रायः ४० वर्ष की अवस्था में इन्होंने यह प्रसिद्ध किया था कि ईश्वर ने मुझे इस संसार में अपना पैगम्बर (दूत) बना कर धर्म प्रचार करने के लिये भेजा है। इसके उपरान्त इन्होंने

कुरान की रचना की और उसके सम्बंध में यह प्रसिद्ध कर दिया कि इसकी सब बातें खुदा अपने फरिस्ते जिबराइल के द्वारा समय समय पर मुझ से कहलाता है। धीरे धीरे कुछ लोग इनके अनुयायी हो गये पर बहुत से लोग इनके विरोधी भी थे जिन से समय समय पर इन्हें युद्ध करना पड़ता था, यह भी प्रसिद्ध है कि यह एक बार सदेह स्वर्ग गये थे और वहाँ ईश्वर से मिले थे। अरब वालों ने कई बार इनके प्राण लेने की चेष्टा की पर किसी न किसी प्रकार बराबर बचते ही गये। ये मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी और एकेश्वर वाद के प्रचारक थे। इन्होंने कई विवाह भी किये थे, ये जैसे उदार और कृपालु थे वैसेही कट्टर और निर्दयी भी थे। इनको श्रद्धालु लोग हजरत भी कहते हैं।

मैथिल (मिथिला)—वर्तमान तिरहुत का प्राचीन नाम। राजा जनक इसी प्रदेश के राजा थे।

जादवराय (यादवराय)—श्रीकृष्ण को कहते हैं।

रघुनाथ—दे० राम।

रवि—सूर्य को कहते हैं, सभी ग्रह रवि की परिक्रमा करते हैं सूर्य की उपासना प्रायः सभी सभ्य प्राचीन जातियों में थी। यह वैदिक कालके प्रधान देवता थे। इन का रथ सात घोड़ों का कहा जाता है। सूर्य के सारथी अरुण कहे गये हैं जो लँगड़े है। सूर्य ही का नाम सविता और विवस्त भी है जिन की कई पत्नियाँ कही गई हैं जिन में संज्ञा प्रसिद्ध है।

राम (रामचन्द्र)—अयोध्या के राजा इक्ष्वाकुवंशी महाराजा दशरथ के बड़े पुत्र जो ईश्वर के मुख्य अवतारों में माने जाते हैं और जिनकी कथा रामायण में वर्णित है। इनका जन्म कौशल्या के गर्भ से हुआ था, और इन्होने वशिष्ठ मुनि से शिक्षा पाई थी। जब ये बालक थे तभी विश्वामित्र मुनि इन्हें अपनी यज्ञ की रक्षा के लिये अपने साथ वन में ले गए थे, जहाँ इन्हों ने अनेक राक्षसों का बध किया था। जब यज्ञ समाप्त हो गया, तब अपने छोटे भाई लक्ष्मण और गुरू विश्वामित्र के साथ राजा जनक के यहाँ सीता के स्वयम्बर में गये थे। वहाँ इन्हों ने शिवजी का धनुष तोड़ कर सीता का पाणिग्रहण किया था। जब ये लौटकर अयोध्या आए, तब राजा दशरथ इनका अभिषेक करके इन्हे राजगद्दी देना चाहते थे, पर रानी कैकेयी के कहने से उन्होंने इन्हे चौदह वर्षों तक बन में रहने

के लिए भेज दिया। जब ये वन जाने लगे, तब इन की स्त्री सीता और इनके छोटे भाई लक्ष्मण भी इनके साथ वन को गये। इनके वन जाने पर पीछे इनके दुःखी पिता दशरथ की मृत्यु हो गई। कैकेई अपने पुत्र भरत को सिंहासन पर बैठाना चाहती थी, पर भरत ने साफ कह दिया कि यह राज्य मेरे बड़े भाई रामचन्द्र का है मैं इसे ग्रहण नहीं कर सकता हूँ। पीछे भरत रामचन्द्र को समझा बुझा कर लाने के लिये वन में गये, पर रामचन्द्र ने कह दिया कि मैं पिता की आज्ञा से चौदह वर्षों के लिए वन में आया हूँ। और जब तक यह अवधि पूरी न हो जायगी, तब तक मैं लौटकर अयोध्या नहीं चल सकता इस पर भरत ने इनके खड़ाऊँ ले जाकर सिंहासन पर स्थापित करके इनकी ओर से इनकी अनुपस्थिति में शासन करने लगे। वनवास काल में रामचन्द्र अनेक बनों, पर्वतों और ऋषियों के आश्रमों पर घूमा करते थे। दण्डकारण्य में एक बार लंका का राजा रावण आकर छल से सीता को हर ले गया। इसपर इन्होंने बहुत से बानरों आदि को साथ लेकर लंका पर चढ़ाई की और युद्ध में रावण तथा उसके साथी राक्षसों को मार कर और उसका राज्य उसके छोटे भाई विभीषण को देकर अपनी स्त्री सीता को अपने साथ ले आए। वनवास की अवधि पूरी हो गई थी, इसलिये ये सीधे अयोध्या चले आए और यहाँ आकर सुख से राज्य करने लगे। इनका शासन प्रजा के लिये इतना अधिक सुखद था कि अब तक लोग इनके राज्य को आदर्श समझते हैं और अच्छे राज्य की उपमा "रामराज्य" से देते हैं। कुछ दिनों के बाद रामचन्द्र जी ने अपनी प्रजावर्ग में से एक धोबी की आक्षेप पूर्ण वार्ता को सुनकर सीता जी को पुनः त्याग दिया और वे आरण्यवासिनी हो बाल्मीकि मुनि के आश्रम में निवास करने लगीं।

रामानंद—एक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य, इनका जन्म प्रयाग में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर में हुआ था। पहिले इन का नाम रामदत्त था। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। कहते हैं बारह वर्ष की अवस्था में ही ये सब शास्त्र पढ़ कर पूर्ण पंडित हो गये थे और दर्शन शास्त्र का विशेष अध्यन करने के लिये काशी चले आए थे। एक दिन इनकी भेंट राघवानंद जी से हो गई जिन्होंने इन्हे देख कर कहा तुम्हारी आयु

बहुत थोड़ी है और तुम अभी तक हरि शरण नहीं आये हो। इस पर ये राघवानंद से मंत्र लेकर उनके शिष्य हो गए और उन से योग सीखने लगे। उसी समय से इनका नाम रामानंद रखा गया।

रावण—यह लंका का राजा था। प्रसिद्ध है कि इसका गढ़ सोने का बना हुआ था, यह सीता जी को रामचन्द्र और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में दण्डकारण्य में बनी हुई उनकी पर्णकुटी से छल-बल पूर्वक हर ले गया। इसी कारण रामचन्द्र जी ने बानरों आदि की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई की और रावण को मारडाला राम रावण की युद्ध कथा रामायण में प्रसिद्ध है।

राहु—पुराणानुसार नौ ग्रहों में से एक जो विप्रचित्ति के वीर्य से सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, यह बहुत बलवान था। कहते हैं कि समुद्र मंथन के समय देवताओं के साथ बैठकर इसने चोरी से अमृत पी लिया था। सूर्य और चन्द्र ने इसे यह चोरी करते हुए देख लिया और इसका समाचार विष्णु से कह दिया। विष्णु ने सुदर्शन चक्र से इसकी गर्दन काट दी, पर यह अमृत पी चुका था इससे इसका मस्तक अमर हो गया, उसी मस्तक से यह सूर्य और चन्द्र को ग्रसने लगा और तब से अब तक समय समय पर बराबर ग्रसता आता है जिससे दोनों को ग्रहण लगता है, यही मस्तक राहु और कबंधकेतु कहलाता है।

रूम—टर्की या तुर्की देश का एक नाम।

लंक (लंका)—भारत के दक्षिण का एक टापू, जहाँ रावण का राज्य था। कहा जाता है कि रावण के समय में यह टापू सोने का था।

लछमन (लक्ष्मण)—यह सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न रामचन्द्र के भाई थे, जब रामचन्द्र जी बन को गये थे तो यह भी साथ गये थे। अंत समय में राम ने प्रतिज्ञा वश इनको त्याग दिया था, जिस के शोक में इन्होंने शरीर छोड़ दिया था।

संकर (शंकर)—शिव का एक नाम है। पद्म पुराण के अनुसार एक समय मन्दराचल पर ऋषियों ने बड़ा भारी यज्ञ किया वहाँ उन्होंने यह चर्चा छेड़ी कि ऋषियों का पूज्य देवता किसे बनाना चाहिए। अंत में यह निश्चय हुआ कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा तीनों के पास चलकर

इसका निर्णय करना चाहिए। सब ऋषि पहले शिव के पास गए पर उस समय वे पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। इस से नन्दि ने द्वार पर उन्हें रोक दिया। ऋषियों को प्रतीक्षा करते बहुत काल बीत गया इस पर भृगु ऋषि ने कोप कर शाप दिया—"हे शिव! तुम ने काम क्रीड़ा के वशीभूत होकर हमारा अपमान किया इससे तुम्हारी मूर्ति योनि-लिङ्ग रूप होगी और तुम्हारा नैवेद्य कोई ग्रहण न करेगा। दूसरी कथा इस प्रकार है—जब ब्रह्मा को सारे ब्रह्मांड की और विष्णु को सात द्वीप नौ खंड की सरदारी मिली, तब दोनों में इस बात की लड़ाई होने लगी कि बड़ा कौन है। तब शंकर ने अपना लिंग पताल से आकाश तक बढ़ाया और कहा जो इसके अंत का पता ले आवे वह बड़ा है। ब्रह्मा ऊपर और विष्णु पताल को चले। परन्तु अंत किसी को नहीं मिला। इस प्रकार की और भी कई कथाएँ भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन हैं।

संखासुर—एक दैत्य जो ब्रह्मा के पास से वेद चुरा कर समुद्र के गर्भ में जा छिपा था इसी को मारने के लिये बिष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया था।

सकरदी—सूफी संप्रदाय के एक मुसलमान साधु इनका कबीर साहेब से संवाद हुआ था।

सक्ती (शक्ती)—शिव जी की स्त्री गौरी का एक नाम शक्ती है।

सनक सनंदन—दे० सनकादि।

सनकादि (सनकादिक)—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये एक बार भगवान से मिलने बैकुंठ गये थे, वहाँ द्वारपालों के रोकने पर उन्हें तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप दिया था।

सहदेव—राजा पांडु के पांच पुत्रों में से सब से छोटे पुत्र। कहते हैं कि माद्री के गर्भ और अश्विनी कुमारों के औरस से इनका जन्म हुआ था। ये बड़े विद्वान थे।

सहस अरजुन (सहस्र अर्जुन)—यह हैहय क्षत्रिय वंश में उत्पन्न एक प्रसिद्ध राजा था, इसे परशुराम ने अपने पिता का बैर चुकाने के लिये मारा था। दे० परशुराम।

साम—एक प्राचीन देश जो अरब के उत्तर में है। कहते हैं, यह देश हजरत नूह के पुत्र शाम ने बसाया था। आज कल यह प्रदेश सीरिया कहलाता है।

सारदा (शारदा)—यह सरस्वती का एक नाम है, पुराणों में सरस्वती देवी को ब्रह्मा की पुत्री और स्त्री

दोनों कहा है। यह विद्या की सर्व श्रेष्ठ देवी हैं।

सालिगराम (शालिग्राम)—दे० गंडक।

सिंगी रिषि (शृंगी ऋषि)—यह विभाण्डक ऋषि के पुत्र और कश्यप के पौत्र थे, जो राजा रोम-पाद के राज्य में बन में रहते थे और कहीं आते जाते न थे। केवल हर समय अपने पिता की सेवा में लगे रहते थे, अतः अपने पिता के सिवा किसी अन्य व्यक्ति को देखा भी न था। एक समय राजा रोमपाद के राज्य में बहुत बड़ा अकाल पड़ा, राजने पुरोहितों को बुलाकर उसके दूर करने का उपाय पूंछा। पुरोहितों ने बतलाया कि यदि आप अपनी पुत्री शान्ता का विवाह शृंगी ऋषि के साथ करदें और इस निमित्त उन्हें यहाँ बुलावें तो अवश्य वृष्टि होगी। पुरोहितों की बात मानकर राजा ने कुछ चतुर वेश्याओं को बुलाकर इन बनवासी ऋषि को लाने का कार्य सौंपा, वह वेश्याएँ ऋषि आश्रम के पास जाकर नाच-गान करने लगीं, विधिवशात् शृंगी ऋषि उधर जा निकले और उन वेश्याओं की मधुर मधुर बातें सुन सहज स्वभाव से उन्हें अपने आश्रम लिवा लाये और कन्द मूल फल आदि देकर जलपान कराया, वेश्याओं ने भी फलों के आकार की बनी हुई मिठाई आदि इन्हें दी जिसे बड़े प्रेम और स्वाद के साथ इन्होंने खाया। उस दिन वेश्याएँ यों ही चली आयीं और दूसरे दिन कुछ मिठाई आदि खाने के उत्तम पदार्थ लेकर फिर उसी स्थान पर पहुँचीं, उधर ऋषि भी उनका मार्ग जोह रहे थे। ऋषि को देखकर वेश्याओं ने उन्हें बुलाकर जलपान कराया और यह प्रलोभन देकर नगर में बुला लाईं कि आप को इधर पासही ही हमारे नगर में अनेक भाँति के सुन्दर सुन्दर मीठे फल मिलेंगे, आप हमारे साथ चलें, ऋषि के नगर में आते ही पानी बरसा, राजा ने समझ लिया कि ऋषि आ गये, उन्हें महल में लाकर अपने अपराधों की क्षमा मांगी और शान्ता को उन्हें ब्याह दिया, ऋषि भी प्रसन्न हो शान्ता के साथ महल में रहने लगे।

सिंभू (शंभू)—दे० सिव।

सिव (शिव)—शम्भू, शंकर, महादेव, हर, त्रिपुरारि, महेश, महेश्वर, कपाली और रुद्र आदि इन के नाम हैं। यह हिन्दुओं के प्रसिद्ध देवता जो सृष्टि का संहार करने वाले और पौराणिक त्रिमूर्ति

के अन्तिम देवता कहे जाते हैं वैदिक काल में यही रुद्र के रूप में पूजे जाते थे पर पौराणिक काल में यह शंकर, महेश और शिव आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। पुराणानुसार इनका रूप इस प्रकार है इनके शिर पर गंगा, माथे पर चन्द्रमा तथा एक और तीसरा नेत्र, गले में सांप और नर मुंड माला गणेश तथा कार्तिकेय गण भूत और प्रेत, प्रधान अस्त्र त्रिशूल और वाहन बैल है जो नन्दी कहलाता है, इनके धनुष का नाम पिनाक है जिसे धारण करने के कारण पिनाकी कहे जाते हैं। इनके पास पशुपति नामक एक प्रसिद्ध अस्त्र था जो इन्हों ने अर्जुन को उन की तपस्या से प्रसन्न होकर दे दिया था, पुराणों में इनके सम्बन्ध में बहुत सी कथाएँ हैं, यह कामदेव का दहन करने वाले और दक्ष यज्ञ को नष्ट करने वाले माने जाते हैं। कहते हैं समुद्र मंथन के समय जो विष निकला था वह इन्होंने पान किया था वह विष इन्होंने अपने गले में ही रक्खा और नीचे पेट में नहीं उतारा इस लिये इनका गला नीला हो गया और यह नील कंठ कहाने लगे। परशुराम ने अस्त्र विद्या की शिक्षा इन्हीं से पायी थी। सङ्गीत और नृत्य के प्रधानाचार्य और परम तपस्वी तथा योगी माने जाते हैं। इनके नाम पर शैव पंथ भी चलता है। बामन पुराण में लिखा है कि पूर्वकाल में समस्त जगत एकार्णव में जलमग्न होकर स्थावर, जंगम, चन्द्र सूर्य नक्षत्र अनल अनिल आदि विनष्ट हुए थे। उस समय अप्रतर्क्य अज्ञेय भाव कुछ भी न था, वृक्ष-लता आदि समस्त वस्तु कारण सलिल में निमग्न थी। आर्णवशायी भगवान देव परिणाम सहस्र वर्ष इस कारण सलिल में निद्रित थे। नींद टूटने पर उन्होंने रजोगुण से पञ्चमबदन ब्रह्मा की तमोगुण से पञ्चमबदन शंकर की सृष्टि की। शिव जी ने उत्पन्न होते ही अक्षमाला लेकर योग आरंभ कर दिया, भगवान शंकर को योग प्रभ देखकर समझा इन से इस प्रकार सृष्टि का कार्य नहीं चलेगा। तब उन्हों ने अहंकार की सृष्टि की ब्रह्मा और शंकर अहंकार के वशीभूत हुए। दोनों में भीषण कलह उपस्थित हुआ। शंकर ने अपने नख से ब्रह्मा का एक मस्तक काट डाला, तभी से ब्रह्मा चतुर्मुख हुए वह छिन्न मस्तक शंकर के करतल में संलग्न रहा। इसी से महादेव कपाली नाम से प्रसिद्ध

हुए। पीछे उनके शरीर में ब्रह्म हत्या का पाप घुस गया। शिव धीरे धीरे निस्तेज होने लगे। ब्रह्म हत्या पाप से मुक्ति पाने के लिये महादेव (शिव) ने अनेक तीर्थों में भिक्षा मांगते हुए पर्यटन किया। एकबार जब भगवान दैत्यों को छलने के लिये कपट मोहिनी रूप धारण किया उस समय शिवजी उस मोहनी रूप को देखते ही मोहित हो कामासक्त हो गये और मोहिनी के पीछे दौड़ने लगे। जब विष्णु ने अपना रूप प्रगट किया तो बहुत लज्जित हुए। पद्मपुराण के सृष्टि खंड में कथा है कि ब्रह्म यज्ञ में शिव जी भिक्षार्थ गये थे।

सिसुपाल (शिशुपाल)—यह चेदि देश का राजा था, इसके पिता का नाम दमघोष था, यह श्रीकृष्ण की बुआ सुप्रभा का लड़का था सुप्रभा ने श्रीकृष्ण से शिशुपाल के एक सौ अपराध क्षमा करवाए थे यह स्वाभाविक दुष्ट था, श्री कृष्ण से बड़ी शत्रुता रखता था, कृष्ण को अहीर और अपने को क्षत्रिय समझता था, उनकी प्रतिष्ठा को कभी सहन न करता था, इसी कारण एक सौ अपराध होने पर यह श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया। जब शिशुपाल का जन्म हुआ था तब इसके चार हाथ और तीन नेत्र थे जिन्हें देख कर इस के माता पिता डर गये थे, परन्तु यह आकाश वाणी होने पर कि इस से कोई डर नहीं है, यह बड़ा बलवान होगा। इस की मृत्यु उसी के हाथ होगी जिसकी गोदी में जाने पर इस के दो हाथ और एक नेत्र गायब हो जायगा। कहते हैं श्रीकृष्ण की गोद में जाने पर इसके दो हाथ और एक नेत्र गायब हो गया था। यही देख कर इस की माता ने श्री कृष्ण से सौ अपराध क्षमा कराये थे।

सीता—राजा जनक की पुत्री और श्री रामचन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी थीं। अंत समय में यह पृथ्वी में समा गई थीं।

सुक (शुक)—शुकदेव जी का एक नाम दे० सुख।

सुख, सुकदेव (शुकदेव)—पुराण में कथा है कि व्यास जी के पुत्र शुकदेव जी माया के डर से बारह वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। व्यास जी के बहुत समझाने पर बाहर आए, पर जन्मते ही वन को चल दिये, व्यास जी पुत्र मोह में बिरह कातर होकर पीछे पीछे चले। मार्ग में कुछ ब्रह्मचारी श्री कृष्ण सम्बंधी आधा श्लोक पढ़ रहे थे उसे सुन कर शुकदेव जी को पूरा श्लोक जानने की इच्छा हुई। व्यास जी ने कहा मैंने अठारह

हजार श्लोक बनाए हैं। भगवान व्यास ने पुत्र को सम्पूर्ण भागवत पढ़ाया और कहा बिना गुरू के ज्ञान अधूरा रहता है। तुम महराज जनक से अध्यात्म विद्या प्राप्त कर लो। शुकदेव जी ने पिता की यह आज्ञा स्वीकार कर ली और राजा जनक के पास जाकर ब्रह्म विद्या प्राप्त की। इन्हों ने राजा परीक्षित को भागवत की कथा सुनाया था।

सुदामा—यह एक दरिद्र ब्राह्मण थे। श्री कृष्ण के सखा तथा भक्त थे सांदीपनि के यहाँ यह दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। जिन्हें बाद में श्री कृष्ण ने ऐश्वर्यवान बना दिया था।

सुरगुर (बृहस्पति)—एक प्रसिद्ध वैदिक देवता जो अंगिरस के पुत्र और देवताओं के गुरु माने जाते हैं। इन की माता का नाम श्रद्धा और स्त्री का नाम तारा था। ये सभी विषयों के पूर्ण पंडित थे। इनकी स्त्री को चन्द्रमा उठाले गया था, जिसके कारण चन्द्रमा से इन का घोर युद्ध हुआ था। अंत में ब्रह्मा ने बृहस्पति को तारा दिलवा दी, पर तारा को चन्द्रमा से गर्भ रह चुका था जिसके कारण उसे एक पुत्र हुआ था जिस का नाम बुध रखा गया था।

सूरज (सूर्य)—दे० रवि।

सुरपति—इन्द्र का नाम है, यह एक प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं, इनका स्थान अंतरिक्ष है। यह देवताओं के राजा माने गये हैं, इनका वाहन ऐरावत और अस्त्र वज्र है, इन की स्त्री का नाम शची और सभा का नाम सुधर्मा है जिस में देव गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं। पुराण की कथा है कि एक बार इन्द्र परम रूपवती गौतम की स्त्री अहिल्या के साथ भोग करने की कामना से चन्द्रमा को साथ लेकर गौतम के आश्रम पर पहुँचे, आधीरात को चन्द्रमा मुर्ग के वेश में कुकुरू कूँ बोले, ऋषि ब्राह्म मुहूर्त समझ गंगा स्नान को चले गये, इधर ऋषि का स्वरुप धारण कर इन्द्र ने अहिल्या के साथ समागम किया ज्यों ही इन्द्र अहिल्या को छल कर लौटे थे कि द्वार पर ऋषि (गौतम) पहुँच गये छद्म वेषधारी इन्द्र को देख कर गौतम ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि नपुंसक हो जा और तेरे सहस्र भग हो जाँय और अहिल्या को शाप दिया कि तू पाषाण हो जा, बाद में बहुत प्रार्थना करने पर दोनों को शाप मुक्त होने का उपाय बतला कर ऋषि हिमालय पर तप करने चले गये।

सेख तकी (शेख तकी)—यह एक

प्रसिद्ध सूफी संत थे जो इलहाबाद के पास भूंसी में रहते थे ऐसा प्रसिद्ध है कि ये सिकंदर लोदी के गुरू भी थे। कबीर साहेब से इन का सतसंग हुआ था।

सेसा (शेषनाग)—पुराणानुसार सहस्रफन के सर्पराज जो पताल में हैं और जिन के फनों पर पृथ्वी ठहरी है। यह अनन्त कहे गये हैं। और विष्णु भगवान क्षीर सागर में इन्ही के ऊपर शयन करते हैं।

हंस गोपाल—भगवान के एक अवतार का नाम है। एक बार सनकादिकों ने अपने पिता ब्रह्मा से संसार पार होने का उपाय पूछा। ब्रह्माजीकी बुद्धि कर्म प्रधानथी, इस लिये उत्तर नहीं दे सके। तब ब्रह्मा जी ने भगति भाव से भगवान का चिन्तन किया तब भगवान ने हंस रूप धारण करके सनकादिकों को उपदेश दिया। यही अवतार हंस गोपाल कहलाता है, भागवत में इस कथा का सविस्तार वर्णन है। भगवान के हंस रूप धारण करने की एक कथा इस प्रकार भी है—कि एक बार सनकादिक ने ब्रह्मा से आकर पूछा—कृपा कर बताइए कि विषय को चित्त ग्रहण किये हुए है या विषय ही चित्त को ग्रहण किये हैं। ये दोनों ऐसे मिले हुए हैं कि हम से अलग नहीं करते बनता। जब ब्रह्मा उत्तर न दे सके तब सनकादिक को अपने ज्ञान पर गर्व हो गया। इस पर ब्रह्मा ने भक्ति पूर्वक भगवान का ध्यान किया भगवान हंस का रूप धारण करके सामने आए और सनकादिक से बोले—तुम्हारा यह प्रश्न ही अज्ञान पूर्ण है विषय और उनका चिंतन दोनो ही भ्रम हैं अर्थात एक हैं। इस प्रकार सनकादिक का ज्ञान गर्व दूर हो गया।

हजरत—ईश्वर (खुदा) का एक नाम है।

हनुमत (हनुमान)—इन के पिता का नाम केसरी और माता का अञ्जना था। कहते हैं एक बार वायुदेव काम वश होकर अञ्जना से रमन किया जिससे हनुमान पैदा हुए। हनुमान के शंकर सुवन होने की कथा शिव पुराण में इस प्रकार है—जब मोहनी रूप देख कर कामवश शंकर का वीर्य गिरा तो उसे ऋषियों ने उठाकर दोने में रख दिया जो किसी प्रकार अञ्जना के पेट में पहुँच गया जिससे हनुमान की उत्पति हुई। एक कथा इस प्रकार भी है कि केसरी के मुख में किसी प्रकार शंकर और वायु का तेज प्रवेश कर गया, उस के बाद केसरी ने अञ्जना से रति

किया जिस से हनुमान जी पैदा हुए। हनुमान रामचन्द्र जी के परम भक्त थे। इन्हों ने सीता जी का पता लगाने के लिये समुद्र पार कर लंका दहन किया और रामचन्द्र को पूरा पता बतलाया था। युद्ध में लक्ष्मण के शक्ति-बाण लगने पर सजीवन औषध के लिये पर्वत उठा लाये थे।

हर—शिव के नामों में से एक नाम।

हरि—विष्णु भगवान का एक नाम है।

हरिचंद, हरीचंद (हरिश्चन्द)—सूर्यवंश का अट्ठाइसवाँ राजा जो त्रिशंकु का पुत्र था। यह गगनचुंबी प्रासादों में रहने वाला बड़ा प्रतापी राजा था। पुराणों में यह बड़ा ही दानी और सत्यव्रती प्रसिद्ध है। मार्कण्डेय पुराण में इस की कथा विस्तार से आयी है, इन्द्र ने ईर्षा-वश विश्वामित्र को इनकी परीक्षा के लिये भेजा विश्वामित्र ने इन से सारी पृथ्वी दान में लेली और फिर ऊपर से दक्षिणा माँगने लगे, अन्त में राजा ने रानी सहित अपने को बेंचकर ऋषि की दक्षिणा चुकाई। वे काशी में डोम के सेवक होकर स्मशान में मुर्दा लाने वालों से कर वसूल करने लगे। एक दिन उनकी रानी अपने मृतपुत्र को स्मशान में दाह के लिये लाई, उसके पास कर देने के लिये कुछ भी द्रव्य न था परन्तु राजा ने उससे भी कर न छोड़ा और आधा कफन, कर के लिये फड़वा लिया, इस पर भगवान ने प्रकट होकर दर्शन दिये और पुत्र को जिला दिया। अंत में राजा को उनकी प्रजा सहित वैकुंठ दिया।

हव्वा (हौवा)—मुसलमानी मत के अनुसार सृष्टि की सब से पहली स्त्री जो पृथ्वी पर आदम के साथ उत्पन्न की गई और जो मनुष्य जाति की आदि माता मानी जाती है।

हिरनाकुस (हिरण्य कशिपु)—यह कश्यप और दिति का पुत्र था। और भगवान का बड़ा भारी विरोधी था। इसे ब्रह्मा से यह वर मिला था कि मनुष्य देवता या और किसी प्राणी से तुम्हारा बध नहीं हो सकता। इससे यह अत्यंत प्रबल और अजेय हो गया। जब इसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान की भक्ति के कारण बहुत सताया और एक दिन उसे खंभा से बांध और तलवार खींचकर कहने लगा कि बता! अब तेरा भगवान कहाँ है। आकर तुझे बचावे। तब भगवान नृसिंह का रूप धारण कर के खंभा फाड़ कर प्रगट हुए और उसे अपने नख से फाड़डाला।

परिशिष्ट (ग)

संख्या वाची शब्द

एक

एक—आत्मा। माया।
एक अंड—ब्रह्मांड।
एक अंधरे—मन। अविवेक।
एक कला—ज्ञान। पारख।
एक काल—कल्पना। यमराज। मन।
एक गंग—मनसा। इच्छा। माया।
एक गैया—वाणी। मनोवृति।
एक चोर—मन।
एक जीव—चैतन्यात्मा।
एक जोति—ब्रह्म ज्योति।
एक दूरि—मोक्ष।
एक नारि—माया। वाणी।
एक नारी—माया। जड़।
एक पुरुष—चैतन्य।
एक पेड़—मूल प्रकृति।
एक फूल—शरीर।
एक बड़ी—माया।
एक बिरवा—संसार।
एक वृक्ष—संसार। शरीर।
एक बेलि—माया। अविद्या।
एक माय—माया।
एक मृग—जीवात्मा।
एक राम—चैतन्यात्मा।
एक लोक—स्वर्ग।
एक सब्द—ओंकार।
एक सयान—अद्वैत वादी।

दो

दुइ—शम, दम। विवेक, वैराग्य।
दूनौकुल—लोक, परलोक।
दुइ गोड़—दोनों स्वांसा। इड़ा, पिंगला
दुइ चकरी—लोक, परलोक। श्रेय प्रेय। भोग, त्याग।
दुइ चांद सुरज—इड़ा, पिंगला।
दुइ जगदीस—अल्लह, राम।
दुइ ढेंढो—लोक, परलोक।
दुइ तुमरिया—माया, अविद्या।
दुइ थापै—पूजा, नमाज।
दुइ दुख—जन्म, मरण।
दुइ पट—जन्म, मरण। धरती, आकास।
दुइ पुरुष—ईश्वर, जीव।
दुइ फल—पाप, पुन्य। स्वर्ग, नरक। बन्ध, मोक्ष।
दूनौ भूले—हिन्दू, मुसलमान। वञ्चक ज्ञानी, अज्ञानी।
दुइ मिलि—मन, माया।
दोसर सयान—मयावादी।

तीन

तीन खूंटा—दे० तीन गुण ।
तीनि गाऊँ—सत्यलोक ।
बैकुंठ, कैलास । दे० तीन लोक ।
तिरगुन (तीन गुण)—रज, सत, तम ।
तिनि डार—दे० तीन गुण ।
तिरदेवा (तीन देव)—ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
तीन दंड—दैहिक, दैविक, भौतिक । वाक् दंड, मनोदंड, काय दंड ।
तीनि पउवा—दे० तीन गुण ।
तीनि पुत्र—ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
तीनि प्रकार—वेदबिधि, लोकविधि, कुलविधि ।
तिर बिधि (तीन बिधि)—दे० तीन गुण ।
त्रिभुवन (तीन भुवन)—दे० तीन लोक ।
तीन लोक—स्वर्ग, मर्त्य, पाताल ।
तीनि संझा—प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या ।
तीसर सयान—जीववादी ।
त्रिकुटी—दोनो भौहों के ऊपर का स्थान ।

चार

चारी (चार)—अंतः करण चतुष्टय—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ।
चारि अवस्था—बाल, कुमार, युवा, वृद्ध अथवा जाग्रत, स्वप्न, सुषोप्ति, तुरिया ।
चार खानि—जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज ।
चारि चोर—दे० चारी ।
चारि जना—दे० चारी ।
चारि युग—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलयुग ।
चारिउ दर—दे० चारि खानि ।
चारि दिसा—पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ।
चारि दग—नाभि, हृदय, कंठ, त्रिकुटी ।
चारि फल—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष अथवा सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य ।
चारि बरन (वर्ण)—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा काला, श्वेत, पीला, लाल ।
चारि बानी (वाणी)—परा, पश्यंती, मध्यमा, बैखरी ।
चारि वृक्ष—दे० चारि वेद ।
चारि बेद—ऋक्, युजुर, साम, अथर्व ।
चारि मास—असाढ़, सावन, भादों, कुँआर ।
चौथ सयान—तटस्थ ईश्वरवादी ।

पांच

पांच—पांच तत्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकास।

पांच कुटुम—पंच ज्ञानेन्द्रियाँ—आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा।

पांच जना—पांच तत्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकास। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ—आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा।

पांच ढोटा—पंच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।

पांच तत्व—दे० पांच।

पांच तरुनि—पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, दे० पांच कुटुम।

पांच नारी—पंच प्राण–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ।

पांचहु—दे० पांच।

पांच भुवंगा—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद।

पांच लदनुवा—दे० पांच।

पांच सखी—दे० पांच ढोटा।

पंचये सयान—इन्द्रिय बादी।

पांच हाथ—दे० पांच।

छः

छौ—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा (पूर्व मीमांसा) वेदांत (उत्तर मीमांसा)

षट आस्रम (आश्रम)—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, हंस, परमहंस।

षट कर्म—नित्य षट कर्म–स्नान, संध्या, पूजा, तर्पण, जप, होम। योगियों के षट कर्म · धोती, नेती, बस्ति, न्योली, त्राटक, कपाल भाती। ब्राह्मणों के षट कर्म—यजन, याजन, अध्यन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह। स्मृति के अनुसार छः काम जिन के द्वारा अपत्काल में ब्राह्मण अपनी जीविका प्राप्त कर सकता है। उन्छवृति (कटे हुए खेत में बालें बीनना) दान-लेना, याचना करना, कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा।

छव चकवै—छः चक्रवर्ती राजा—बेनु, बलि, कंस, दुर्योधन, पृथु विक्रम।

षट चक्र—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, माणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र।

छव छत्री (क्षत्री)—दे० छव चकवै।

षट दरसन (दर्शन)—योगी, जंगम, सेवड़ा, सन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण।

छौ दरसन (दर्शन)—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत। दे० षट दरसन।

छौ साख—दे० छौ।

षट रस—मधुर, लवण, तिक्त, अम्ल, कटु, कषाय।

सात

सात—सात स्वर्ग—भुर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, जनलोक तपलोक, मह-र्लोक, सत्यलोक।

सात दीप (द्वीप)—जम्बू, कुश, पलक्ष, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर, शाल-मल्य।

सात धातु (सप्त धातु)—रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि, शुक्र।

सात पाताल— अतल, वितल, तल, सुतल, महातल, रसातल, पताल।

सात बीज—पञ्च तन्मात्रा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। बुद्धि और अहंकार।

सात सुरति—स्मृति, इच्छा, चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार, अनुभव।

सात समुद्र—दुग्ध, दधि, घृत, क्षार, यक्षुरस, मद्य, स्वाद, जल।

सतयें सयान—देहात्मवादी।

सात सूत—दे० सात धातु।

आठ

अस्ट कमल—(आठ कमल)—द्वि दल (आज्ञाचक्र) चार दल (मूलाधार चक्र) षट दल (स्वाधिष्ठान चक्र) दस दल (मणिपूरक चक्र) द्वादश दल (अनाहत चक्र) षोड़श दल (विशुद्ध चक्र) सहस्र दल (सह-स्रार चक्र) सुरतिकमल। अथवा अग्नि, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, सहस्रार।

अस्ट कस्ट—(आठ कष्ट)—पंच क्लेश—अविद्या, अस्मिता, अभि-निवेश, राग, द्वेष। त्रयताप—दैहिक, दैविक, भौतिक।

आठसिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व। पुराणों की आठ सिद्धियाँ—अंजन, गुटका, पादुका, धातुभेद, बोताल, वज्र, रसायन, योगिनी। सांख्य में आठ सिद्धियाँ—तार, सुतार, तारतार, रम्यक, अधिभौतिक, अधिदैविक, आध्यात्मिक।

अस्ट मैथुन—(आठ मैथुन) श्रवण, सुमिरन, कीर्तन, चितवन, एकांत वार्तालाप। दृढ़ संकल्प, प्राप्ति।

नौ

नौ—नौ व्याकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, शकटायन, पिशालि पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती। नव खंड—भारत, इलावर्त, रम्यक, कुरु, हरिवर्ष, किंपुरुष, केतुमाल, भद्राश्व, हिरण्य।

नौ कोश—अन्नमय, शब्दमय, प्राणमय, आनंदमय, मनोमय, प्रकाशमय, ज्ञानमय, आकाशमय, विज्ञानमय।

नौ गंड—इड़ा (चन्द्र नाड़ी) पिंगला (सूर्य नाड़ी) सुष्मना (मध्यनाड़ी) गन्धारी (दाहिने नेत्र की नाड़ी) हस्ति जिह्वा (बाये नेत्र की नाड़ी) पूषा (दाहिने कान की नाड़ी) पस्यनी (बायें कान की नाड़ी) लकुहा (गुदा नाड़ी) अलम्बुषा (लिंग-नाड़ी)

नव गज—नव द्वार—दो नेत्र, दो कान, दो नासा छेद्र, मुख, गुदा, लिंग।

नौ गुन—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, अस्तिक्य।

नौ ग्रह—सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु।

नौ नाड़ी (नारी)—दे० नौ गंड।

नौधा—नव प्रकार की भक्ति—श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, बंदन, सख्य, दास्य, आत्म निवेदन।

नौ निधि—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, वर्चं।

नौ बहिया—चार अन्तः करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) पंच प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान)

नौ मन—दे० नौधा।

नौ मन दूध—क्षमा, दया, सत्य, धैर्य, विचार, विवेक, वैराग्य, गुरु भक्ति, सद्उपदेश।

नौ सूत—पंच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) तीन गुण (रज, सत, तम) मन। दे० नौ निधि।

दस

दस—दसद्वार—दो नेत्र, दो श्रवण (कान) दो नासाछेद्र, मुख, गुदा, लिंग, ब्रह्मरंध्र।

दस अवतार—मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, बामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कलंकी।

दस गज—दस इन्द्रियाँ—आँख, कान नाक, रसना, त्वचा, हाथ, पांव, गुदा, लिंग, मुख।

दस गोनि—दे० दस गज।

दस दिसा—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, वायव्य, ईशान, नैऋत, आग्नेय, ऊपर और नीचे ।
दस द्वार—दे० दस ।

एकादश

एकादसी (एकादश)—दस इंद्रियाँ—आँख, कान, नाक, रसना, त्वचा, हाथ, पांव, गुदा, लिंग, मुख । एक मन ।

बारह

बारह पंखुरी—वर्ष के बारह मास—चैत, बैसाख, जेठ, असाढ़, सावन, भादौं, कुंवार, कार्तिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन ।
अनाहत चक्र के द्वादश दल—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ।
शरीर के १२ प्रमुख अंग (शिर, नेत्र, कर्ण, प्राण, मुख, हाथ, पैर, नाक, कंठ, त्वचा, गुदा, शिश्न) ।

चौदह

चौदह—दे० चौदह विद्या ।
चौदह विद्या—ब्रह्मज्ञान, रसज्ञान, कर्मकाण्ड, संगीत, व्याकरण, ज्योतिष, धनुर्विद्या, जलतरन, न्याय, कोक, अश्वारोहन, नाट्य, कृषि, वैद्यक । अथवा छः वेदांग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, छंद, ज्योतिष । चार वेद—ऋक, यजुर, साम, अथर्व । मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण ।
चौदह भुवन—सात स्वर्ग—भुर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, जनलोक, तपलोक, महर्लोक, सत्यलोक । सात पाताल—अतल, वितल, तल, सुतल, महातल, रसातल, पाताल ।

अठारह

अठारह—अठारह पुराण—विष्णु, वाराह, बामन, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त्त, ब्रह्मांड, भविष्य, भागवत, मार्कंडेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कंद, कूर्म, गरुड़ ।
अठारह स्मृतियाँ—मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, वशिष्ठ, हारीत, नारद, अत्रि, आपस्तम्ब, शतातप, संख, लिखित, व्यास, भारद्वाज, काश्यप, दक्ष, विष्णु, यम, बृहसपति ।

उन्नीस

उनइस गज—दस इन्द्रियाँ—आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा, हाथ, पाँव, गुदा, लिंग, मुख। पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। चार अन्तः करण—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार।

इक्कीस

इकइस—चौदह भुवन—सात स्वर्ग (भू, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः, सत्य) सात पाताल (अतल, वितल, तल, सुतल, महातल, रसातल, पाताल) सात द्वीप (जम्बू, कुश, पलक्ष, कौञ्च, शाक, पुष्कर, शालमलय)।

इकइस पीर—इक्कीस पीरों के नाम नहीं मिले।

चौबीस

चौबीस पात—वर्ष के २४ पक्ष।

चौबीस तत्व—प्रकृति, बुद्धि, अहंकार (पंच विषय) शब्द, स्पर्श रूप, रस, गंध (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ) आँख, कान, नाक रसना त्वचा (पंच कर्मेन्द्रियाँ) हाथ, पांव, गुदा, लिंग, मुख (पंच महाभूत) पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। मन।

शरीर के २४ अंग। मेरुदंड की २४ कसेरुकायें।

चौबीस एकादसी—वर्ष की चौबीस एकादशी तिथियाँ।

पच्चीस

पचीस (पच्चीस)—पच्चीस प्रकृतियाँ,

आकाश की—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय।

वायु की—चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन।

अग्नि की—क्षुधा, तृषा, आलस, निद्रा, मैथुन।

जल की—लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य।

पृथ्वी की—हाड, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोम।

तेंतीस

ततीस कोरी देव—पुराणानुसार तेंतीस कोटि देवता। विशेष—वैदिक काल में ऋग्वेद में मुख्य देवता तेंतीस माने गए हैं जो शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार गिनाए गए हैं—८ वसु, ११ रुद्र १२ आदित्य तथा इन्द्र और प्रजापति। ऋग्वेद ही में एक स्थान पर देवताओं की संख्या ३३३९ वर्णन की गई है।

चौंतीस

चौंतीस अक्षर—हिन्दी वर्णन माला के सम्पूर्ण अक्षर—(क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, पांचों वर्गों के २५ अक्षर और य से ह तक के ८ अक्षर तथा ॐ ।

छत्तीस

छत्तीसौ राग—संगीत में छः रागों की छत्तीस रागिनियां इस प्रकार हैं—

श्री राग—मालश्री, त्रिवर्णी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी, पहाड़ी ।

बसंत राग—देशी, देवगिरि, वैराटी टौरिका, ललित, हिंडोल ।

पंचमराग—विभास, भूपाली, कर्णाटी, पट हंसिका, मालवी, पटमंजरी ।

भैरव राग—भैरवी, बंगाली, सैंधवी, रामकेली, गुर्जरी, गुणकरी ।

मेघ राग—मल्लारी, सैरिटी, सावेरी, कैशिकी, गांधारी, हरशृंगार ।

नट नारायण—कामोदी, कल्याणी आभीरी, नाटिका, सांरगी, हम्मीरी ।

बहत्तर

बहत्तर कसनि (बंधन)—शरीर की बहत्तर ग्रन्थियाँ, जो इस प्रकार हैं—१६ कण्डरायें, १६ जाल, ४ रज्जु, ७ सेवनी, १४ अस्थि संघात, १४ सीमन्त, १ त्वचा जिस से सम्पूर्ण शरीर बंधा रहता है ।

बहत्तर कोठा—शरीर के बहत्तर कोठा

बहत्तर गंड—दे० बहत्तर कसनि ।

बहत्तर पुरुष—पुरुष की बहत्तर कलाएँ । या बहत्तर कोठा ।

चौरासी

चौरासी—दे० चौरासी लख जोनि ।

चौरासी लख जोनि (योनि)—पुराणों के अनुसार जीव चौरासी लाख प्रकार के माने गए हैं ।

चौरासी सिद्ध—नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

लूहिपा, लीलापा, विरुपा, डोम्भिपा, शबरीपा, सरहपा कङ्कालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, चोरङ्गिपा, वीणापा, शान्तिपा, तन्तिपा, चमरिपा, खड्गपा, नागार्जुन, कराहपा, कर्णरिपा, थगनपा, तारोपा, शालिपा, तिलोपा, छत्रपा, भद्रपा, दोखन्धिपा, अजोगिपा, कालपा, धोम्भिपा, कङ्कणपा, कमरिपा, डेंगिपा, भदेपा, तन्धेपा, कुकुरिपा, कुसूलिपा धर्मपा, महीपा, अचिन्तिपा, भलहपा, नलिनपा, भूसुकुपा, इन्द्रभूति,

मेकोपा, कुठालिपा, कमरिपा, जालन्धरपा राहुलपा, घर्बरिपा, धोकरिपा, मेदिनीपा, पंकजपा, घण्टापा, जोगीपा, चेलुकपा, गुण्डरिया, लुचिकपा, निगुर्णापा, जयानन्तपा, चर्षटिपा, चम्पकपा, भिखनपा, भलिपा, कुमरिपा, जवरिपा, मणिभद्रा, मेखला, कनखला, कलकलपा, कन्तलिपा, धहुलिपा, उधलिपा, कपालपा, किलपा, सागरपा, सर्वभक्षपा, नागबोधिपा, दारिकपा, पुतुलिका, पनहपा, कोकलिपा, अनङ्गपा, लक्ष्मीकरा, समुदपा, भलिपा,

छानबे

छानबे पाखंड—सन्यासी दस—आश्रम, तीर्थ, अरण्य, वन, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती भारती, पुरी।

योगी दो—हठयोगी, राजयोगी।

पैगम्बर चौबीस—आदम, शीश, नूह, इब्राहीम, याकूब, इसहाक, यूसुफ, इस्माईल, जकरिया, यहया, यूनुस, दाऊद, अयूब, लूत, सुलेमान, स्वालह, शुएब, ईसा, मूसा, इलयास, हार, यूसआ, जिलकिप्ल, मुहम्मद।

जंगम (शैव) अठारह—(शिवजी के नाम)—शिव, पशुपति, मृत्युञ्जय, त्रिनेत्र, कृतिवास, पञ्चबदन, शितिकंठ, खण्ड परशु, प्रथमाधिप, गङ्गाधर, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा, कपाली।

ब्रह्माण अठारह—पूज्य, द्विज, श्रोत्रिय, पंक्ति पावन, गुरु, आचार्य, उपाध्याय, ऋत्विक, पंडित, ऋषि, क्षात्र ब्राह्मण, वैश्य विप्र, शूद्र ब्राह्मण, विड़ाल या वक्र विप्र, म्लेच्छ ब्राह्मण, चंडाल विप्र, राक्षस विप्र, अधमाधम।

सेवड़ा (जैन) चौबीस तीर्थंकर—ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, सुबुधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंतुनाथ, अमरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुब्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महाबीरस्वामी।

छानबे पाखंड के लिये कुछ बीजक टीककारों ने यह साखी दिया है—'दस सन्यासी बारह योगी, चौदह शेष बखान। ब्राह्मण अठारह अठारह जंगम चौविस सेवड़ा प्रमाण"। महराज दासजी ने पञ्चग्रन्थी टीका में उपरोक्त साखी के अर्थ में इस की संख्या इस प्रकार दी है—गिरी, पुरी, भारती,

वन, पर्वत, आरण्य, सागरादि मिल के दस सन्यासी हैं। नाथ, अवघड़, गोसांई, नागे आदि मिल के बारह योगी हैं। जलाली, मलाली, बानवा, जिन्दाशाह आदि चौदह प्रकार के फकीर हैं। पञ्चगौडादि मिल के अठारह प्रकार के ब्राह्मण हैं। अठारह प्रकार के गले में लिङ्ग धारण करने वाले जंगम हैं। और ऋषभदेवादि चौबीस तीर्थंकर जैनियों में हैं। ऐसे छः दर्शनों में छयानवे पाखंड हुए। पं० ग्र० पृ० २५४

तीन सौ साठ

तीन सौ साठ सर- शरीर की ३६० आस्थियाँ। वैदिक मत से शरीर में ३६० आस्थियाँ मानीं गई हैं।

सहस्र (हजार)

सहस अरजुन—पुराणानुसार सहस्र भुजाओं वाला एक राजा, सहस्र बाहु।

सहस घड़ा—सहस्र कुम्भक अथवा अनेक उपदेश।

सहस नाम—अनेक नाम अथवा विष्णु के सहस्र नाम।

हजारसूत—अनेकों प्रकार के कर्म या सहस्र कुम्भक अथवा सहस्र दल कमल।

अस्सी हजार

अस्सी हजार पैगम्बर—मुसलमानी मत में पैगम्बर ८०००० माने गए हैं।

अट्ठासी हजार

अठासी सहस मुनि—हिन्दू धर्मानुसार ऋषियों की संख्या।

छप्पन कोटि

छप्पन कोटि जादो—यादवों की संख्या। भागवत में यादवों (यदुवंशियों) की संख्या छप्पन कोटि कही गई है।

छः लाख छानबे

छः लाख छानबे रमैनी— महात्माओं के अनेक उपदेशप्रद वाक्य।

परिशिष्ट—(घ)

योग सम्बन्धी शब्दों की व्याख्या

अनहद्—योग का एक साधन। जब प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ब्रह्म रंध्र में पहुँच जाता है तब अनहद नाद सुनाई देता है। यह नाद भ्रमर, शंख, मृदंग, ताल, घंटा, वीणा, भेरि, दुन्दुभि, समद्र गर्जन, मेघ गर्जन आदि क्रमशः दस प्रकार का होता है।

अमावस—जब योगी लोग सुषुम्ना में ध्यान लगाते हैं तब इड़ा (चन्द्र) और पिंगला (सूर्य) दोनों नाड़ियों का लय हो जाता है। उस समय अमावस्या कही जाती है।

अमृत बेली—कुंडलिनी शक्ति जब उलट कर ब्रह्मांड में पहुँच जाती है और नख से शिख तक सर्वांग में वायु व्याप्त हो जाती है। तब उलटा सहस्रार से अमृत का निर्झर प्रवाहित होता है उसी को अमृत वल्लरी का पान करना कहते हैं।

अष्ट कवल—अनाहत चक्र के समीप एक आठ दल का मनश्चक्र है। इसको हृच्चक्र भी कहते हैं। या शरीर के आठ चक्र जो इस प्रकार हैं।

मूलाधार चक्र—इसका स्थिति स्थान योनि माना गया है। इसमें चार दल होते हैं। यह रक्त वर्ण का होता है, इसका लोक भूः है। इसका ध्यान करने से एक प्रकार की ध्वनि झंकृत होती है, वह क्रमशः वँ, शँ, षँ, सँ की होती है। इसके सिद्ध लाभ होने पर मनुष्य वक्ता, सर्वविद्या विनोदी, आरोग्य, मनुष्यों में श्रेष्ठ आनंदचित्त तथा काव्य प्रबन्ध में समर्थ होने आदि के विशेष गुण युक्त हो जाता है।

स्वाधिष्ठान चक्र—इसका स्थिति स्थान पेडू माना गया है। इसमें छः दल होते हैं। यह सिंदूर वर्ण का होता है। इसका लोक भुवः है। इसका ध्यान करने से एक प्रकार की ध्वनि झंकृत होती है वह क्रमशः भँ, मँ, यँ, रँ, लँ, बँ की होती है। इसके सिद्ध लाभ से अहंकार, विकार का नाश,

योगियों में श्रेष्ठ, मोह रहित और गद्य पद्य की रचना में समर्थ विशेष गुण मनुष्य में उत्पन्न हो जाता है।

मणिपूरक चक्र – इसका स्थान नाभी कहा जाता है। इसमें दस दल होते हैं। यह नील वर्ण का होता है इसका लोक स्वः है। इसका ध्यान करने से क्रमशः डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ की ध्वनि झंकृत होती है। इसके सिद्ध लाभ से मनुष्य संहार पालन में समर्थ तथा बचन रचना में चतुर हो जाता है और उसके जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है।

अनाहत चक्र—इसका स्थिति स्थान हृदय होता है। इसमें द्वादस दल होते हैं। यह अरुणवर्ण का होता है। इसका लोक महः है। इसका ध्यान करने से एक प्रकार का अनाहत नाद झंकृत होता है वह क्रमशः कँ, खँ, गँ, घँ, ङँ, चँ, छँ; जँ, झँ, ञँ, टँ, ठँ, का होता है। इसके सिद्ध लाभ से मनुष्य वचन रचना में समर्थ, ईशत्व सिद्ध प्राप्त योगेश्वर, ज्ञानवान, इन्द्रियजित काव्यशक्ति वाला हो जाता है।

विशुद्धचक्र—यह चक्र कण्ठ स्थान में स्थित है। इस में षोड़श दल होते हैं। यह धूम्र वर्ण का होता है इसका लोक जनः है। इसके ध्यान करने से क्रमशः अ से लेकर अः तक सोलह स्वरों की अनहद ध्वनि झंकृत होती है। इसके ध्यान सिद्ध होने पर मनुष्य काव्य रचना में समर्थ, ज्ञानवान, उत्तम वक्ता शान्तचित, त्रिलोक दर्शी, सर्व हितकारी, आरोग्य, चिरजीवी और तेजस्वी होता है।

आज्ञाचक्र—यह दोनो भ्रुवों के मध्य में स्थित है। इसमें दो दल होते हैं। यह श्वेत वर्ण होता है। इसका लोक तपः है। इसका ध्यान करने से हँ, शँ का अनहद नाद क्रमशः ध्वनित होता है। इसके सिद्धलाभ से योगी को वाक्य सिद्धि प्राप्त होती है।

शून्यचक्र—(सहस्रदल कमल इस का स्थिति स्थान मस्तक है। इस में सहस्र दल होते हैं। इस का लोक सत्यः है। इसके ध्यान करने से एक प्रकार का नांद झंकृत होता है। इसके सिद्ध होने पर योगी को अमर, मुक्त, उत्पति, पालन में समर्थ तथा आकाशगामी और समाधिस्थ होने की शक्ति प्राप्त होती है।

सुरति कमल—संत मत में सहस्रार (सहस्रदल कमल) के ऊपर इस कमल का स्थान बताया गया है।

आसन उड़्ये—उड्डीयन हठयोग का एक बंध वा क्रिया जिसके द्वारा योगी उड़ते हैं। कहते हैं इस में सुषुम्ना नाड़ी में प्राण को

ठहरा कर पेट को पीठ में सटाते हैं और पक्षियों की तरह उड़ते हैं।

इड़ा—बायें नासा रंध्र से चलने वाली नाड़ी। इसमें चन्द्रमा का प्रकाश रहता है इस लिये इसे चन्द्र नाड़ी कहते हैं। इ ा नाड़ी को गंगा भी कहते हैं।

उनमुनी—हठयोग की एक मुद्रा जिस में मन की वृति अंतमुखी और स्थिर होजाती है।

कमल—हठ योग में शरीर के चक्रों को कमल कहते हैं। इन की संख्या सहस्र दल कमल सहित सात है। परन्तु किसी किसी पुस्तक में आठ तथा नौ तक की संख्या दी हुई है। वहाँ इन चक्रों के अतिरिक्त ललनाचक्र और गुरुचक्र के नाम दिये गए हैं। संतमत में सहस्रार के ऊपर सुरति कमल की कल्पना की गई है।

कुंडलिनी—मूलाधार चक्र के नीचे जहाँ मेरुदंड का अंतिम भाग है वहीं एक त्रिकोणाकृति अग्नि-चक्र है। इसी अग्निचक्र में स्वयम्भू लिंग से साढ़े तीन बार लिपटी हुई एक सर्पाकार शक्ति रहती है उसी को कुंडलिनी कहते हैं। साधक प्राणायाम द्वारा इसे जाग्रत करता है। इसके जाग्रत होने पर स्फोट होता है, उसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का ही व्यक्त रुप महा बिंदु है। नाद के तीन भेद है—महानाद, नादान्त और निरोधिनी। बिन्दु के भी तीन भेद होते हैं—इच्छा, ज्ञान और क्रिया इन्हीं को सूर्य, चन्द्र और अग्नि तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। कुंडलिनी जाग्रत होने पर ब्रह्मनाड़ी द्वारा षट चक्रों में होती हुई सहस्रार में प्रवेश करती हैं। कुंडलिनी का सहस्रार में पहुंचना ही योग की चरमावस्था है।

गंग—इड़ा को ही गंग या गंगा कहते हैं।

गंगन मंडल—ब्रह्मांड, शून्य, या ब्रह्म रंध्र को गंगन गुफा या गंगन मंडल कहते हैं।

गुफा—दे० गंगन मंडल।

ग्रहन—जिस समय इड़ा नाड़ी से कुंडलिनी स्थान में प्राण आता है उस समय चन्द्र ग्रहण कहा जाता है। और जब पिंगला नाड़ी से प्राण कुंडलिनी स्थान में आता है तो सूर्य ग्रहण कहते हैं। योगियों को नित्य चन्द्र सूर्य ग्रहण हुआ करता है।

नाद—दे० अनहद।

पिंगला—दाहिने नासा रंध्र से चलने वाली नाड़ी। इसमें सूर्य का प्रकाश रहता है इसी से इसे सूर्य नाड़ी कहते हैं। पिंगला को यमुना भी कहते हैं।

वज्र कँवार—योगी शरीर के नवो द्वारों को बन्द करके वायु का आना जाना रोक देते हैं। इसी क्रिया को वज्र कपाट कहते हैं।

विहंग मार्ग—महावाक्य विचार द्वारा अथवा सांख्य योग द्वारा इसी जन्म में मोक्ष सुख प्राप्त करना।

ब्रह्मांड—कपाल या मस्तक। दे० गंगन मंडल।

मान सरोवर—अमृत कुंड। शरीर के भीतर शून्य स्थान में अमृत का कुंड है इसी को मानसरोवर कहते हैं।

मीन मारग—मछली नदी के धारा के विरुद्ध चलती है पर वह किस मार्ग से गई पानी के भीतर इस बात का पता कोई नहीं लगा सकता है, योग का मार्ग भी इसी प्रकार गुप्त रहता है। इसीलिये वह मीनमार्ग कहलाता है।

मेरुदंड—रीढ़ की हड्डी को मेरुदंड कहते हैं। यह दंडाकार गुदा भाग की त्रिकास्थि से लेकर मस्तिष्क के पास तक चला जाता है इस लिये इसे मेरुदंड कहते हैं। इस मेरुदंड में क्रम से एक के ऊपर एक २४ कसेरुकायें माला की गुरियों की भाँति पिरोयी रहती हैं। मेरुदंड के मध्य में सुषुम्ना और बायें चन्द्र (इड़ा) नाड़ी तथा दक्षिण भाग में सूर्य (पिंगला) नाड़ी रहती है। वृद्धावस्था में यह ढीला हो जाता है जिस से रीढ़ झुक जाती है।

सहज ध्यान—सद्गुरु के बताये हुये रहस्य से निज लक्ष्य में ध्यान लगाने को सहज ध्यान या सहज समाधि कहते हैं। इस ध्यान में किसी प्रकार के वाह्य आडम्बर (आसन मुद्रा आदि) की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

सुरभी भक्षन—खेचरी मुद्रा द्वारा योगी अपनी जीभ को उलट कर तालु मूल के छिद्र में लगाता है। और सहस्रार के मध्य में स्थित चन्द्रमा से झरने वाले अमृत का पान करता है। इसी को सुरभी भक्षण (गोमांस भक्षण) कहते हैं।

सुषुम्ना—मेरुदंड के बायीं ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिंगला और मध्य में सुषुम्ना नाड़ी होती है। सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में वज्रा, वज्रा के मध्य में चित्रिणी और चित्रिणी के मध्य में ब्रह्मनाड़ी होती है। इसी ब्रह्मनाड़ी से होकर कुंडलिनी चलती है।

परिशिष्ट—(ङ)

रूपक, उल्टबाँसी तथा प्रतीकात्मक शब्दों के अर्थ

रमैनी—१

अंतर जोति—चैतन्य।

सब्द—ओंकार।

नारी—माया।

बाखरि—ब्रह्मांड।

रमैनी—२

बाप—ईश्वर।

पूत—जीव।

नारी—माया।

रमैनी—५

बिबिअच्छर—रकार (र) मकार (म)।

मोटरी—कर्मों का बोझ।

औषध—सत्यज्ञान।

खसम—सद्गुरु, ईश्वर।

हंस—जीवात्मा।

रमैनी—१०

राही—कर्मी, उपासक।

बिपराही—कामना।

करगी—मृत्यु।

जमवूता—नाशमान शरीर।

अमृत बस्तु—आत्मज्ञान।

नारी—माया।

रमैनी—१२

माटी के कोट—शरीर।

पषान के ताला—प्राण या मन।

बन—शरीर।

कूकुर—अज्ञानी।

सियार—वञ्चक।

मूस—विषयासक्त (अज्ञानी जीव)।

बिलाई—माया।

हस्ती—मन।

सिंघ—जीव।

रमैनी—१५

बदरिया—भ्रम।

संझा—अज्ञान।

अगुवा—ब्रह्मादिक, गुरुवा।

बनखंड—संसार।

पिय—ईश्वर।

धनि—जीवात्मा।

चौपरि कामरि—चार अवस्था वाला शरीर।

सखिन—इन्द्रियाँ।

कामरी भीजना—शरीर का वृद्ध होना।

रमैनी—१७

कसाई—मन।

छूरी—कल्पना।

रमैनी—२८

जोलहा—कर्ता (ईश्वर)।

ताना—माया।

दुइ गाड़—धरती, आकाश।
दुइ नरी—चन्द्र, सूर्य।
सहस तार—तारा अथवा श्वास।
सूत कुसूत—शुभाशुभ कर्म।
कोरी—कर्ता।

रमैनी—२९

रवि—ज्ञान।
तारा—कर्म।
विषहर—विषयासक्त मन।
मंत्र—उद्उपदेश।
गारुड़ि—सद्गुरु।

रमैनी—३८

मारग—संसार।
ताना—सकाम कर्म (कामना)
ओटत कातत—विधि विधान करना

रमैनी—४१

अंबुक की राशि—शरीर।
समुद्र—संसार।
भौंर जाल—विषय वासना।
भामिनि—माया।

रमैनी—४५

लोह—अज्ञान।
नाव—शरीर।
पषान का भार—कर्मों का बोझ।

रमैनी—५९

चढ़त चढ़ावत—प्राणों को ब्रह्मांड में ले जाना।
भंडहर—शरीर।
चोर एक—दे० प० ग।
एकै राम—आत्मा (मन)
पाहन—मूढ़।
बिनु भितियन के चित्र—कल्पित चित्र।
धन—ऐश्वर्य।

रमैनी—६९

दियन खताना—जीवन ज्योति बुझ जाना।
मंदिर—शरीर।

रमैनी—७३

नारी—सुरति।
गगरी—शरीर।
पनिहारी—सुरति।
बाट हि बाटा—षटचक्रों के द्वारा।
सोवनहार—कुंडलिनी।
खाटा—इड़ा पिंगल।
सौरी—जीवात्मा।
खसम—चैतन्य।
घरनि—जीवात्मा।
लगवार—मन अथवा देवी देवता।

स—१

इसके अर्थ के विषय में दो मत हैं।

पहला

नारी—माया।
पुरुष दुइ—ईश्वर, जीव।
पाहन—ब्रह्म।
गंग—माया।
पानी—प्रपंच।

दुइ परबत—ईश्वर, जीव ।
दरिया—माया ।
लहरि—मन ।
माखी—वृति ।
तरिवर—संसार वृक्ष ।
पानी—यथार्थ ज्ञान ।
नारी—माया ।
सकल पुरुष—मनुष्य मात्र ।

दूसरा

नारी—भक्ति ।
पुरुष दुइ—ज्ञान, विराग ।
पाहन—मन ।
गंग—भक्ति ।
पानी—शान्ति ।
दुइ परबत—क्रोध, अहंकार ।
दरिया—मन ।
लहरि—ज्ञान, विराग ।
माखी—वृति ।
तरिवर—शरीर ।
पानी—प्रपंच ।
नारी—भक्ति ।
सकल पुरुष—काम, क्रोध, लोभ, मोह मदादि ।

स—२

उलटी गंग—ब्रह्मांड में चढ़ाई हुई श्वासा ।
समुद्र—शोक ।
ससि सूर—इड़ा, पिंगला ।
नौग्रह मारि—नवों द्वार बंद कर के ।
रोगिया—योगी ।
जल—ब्रह्मांड ।
बिंब—ज्योति ।
ससै—मन ।
सिंघ—जीव ।
औंधे घड़ा—विषयासक्त ।
सूधे—शुद्ध हृदय ।
गुफा—गगन गुफा ।
बान—श्वास ।
पारथि—मन ।
धरती—मूलाधार ।
अकास—ब्रह्मरंध्र ।
पुरुषों—योगियों ।
अमृत—सहस्रार से झरने वाला अमृत ।
नदी—मन ।
नीर—वृति ।
राम सुधारस—निजानन्द ।

स—३

घर—हृदय या शरीर ।
पांच ढोटा—काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद ।
नारी—कुमति ।

स—६

पुत्र—जीव ।
महतारी—माया ।
पिता—कल्पित ईश्वर ।
कन्या—माया ।
खसम—कल्पित ईश्वर ।
ससुर—मन ।
भाई—अविवेक ।

सासुरे—संसार ।
सासु—प्रवृति ।
ननद—कुमति ।
भउज—माया ।
समधी—संत

✓स—९

पूत—जीव ।
बाप—ईश्वर ।
दूंदुर—अहंकार ।
बिषहर—मन ।
स्वान—अज्ञान ।
धरनि—बुद्धि ।
बिल्ली—कुबुद्धि ।
घर—हृदय ।
बैल—अविवेक ।
भैंसा—वञ्चक गुरु ।

स—१२

मत—सिद्धांत ।
भाठी—पिंड ब्रह्मांड (चौदहों भुवन)
अग्नि—ब्रह्म अग्नि ।
रस—सहस्रार स्थित चन्द्र से झरने वाला अमृत ।
पियाला—प्रेम ।
अमहल महल—शून्य ।

स—१३

सेमर—संसार ।
साखा—ऐश्वर्य ।
फूल—स्त्री पुत्र धनादि ।
चात्रिक—जीव ।
रुआ—निस्सार ।
खजूर—बड़प्पन ।
फल—सुख ।
ग्रीषम रित—बृद्धावस्था ।
छाया—काया ।

स—१५

रामरा—जीव ।
माहो—माया ।
घर—शरीर ।
जोलाहा—जीव ।
नवगज, दस गज, उनइस गज — दे० प० ग ।
पुरिया—शरीर ।
सात सूत, नौ गंड, बहत्तर पाट — दे० प० ग ।
पट—नरतन ।
गज—मन ।
घरहाई—माया ।
बेठ—प्रारब्ध ।
खसम—जीव ।
तिहाई—त्रयताप ।
भीगी पुरिया—बृद्ध शरीर ।
जोलहा—जीव ।

स—१६

रामरा—जीव ।
झीझी जंतर—अनहद ।
कर चरण बिहूना—मन ।
कर बिन बाजै—अनहद ।
सुने स्रवन बिन—सुरति ।
जागत—जाग्रत अवस्था ।

चोर—काम, क्रोध, लोभ, मोह मदादि।
मंदिल—हृदय।
खसम—जीव।
घर—हृदय।
बांझ—माया।
पुत्र—मन।
तरिवर—संसार।

स—१९

डाइन—माया।
सुनहा—कामादिक।
सिंघ—मन।
बन—हृदय।
रोहु—विचार।
मृगा—संशय।
पारथि—जीव।
सायर—संसार।
सकल बन—अखिल ब्रह्मांड।
मच्छ—मन।

स—२०

रस—रामरस।
बीज—निर्गुण।
बकला—सगुण।
सुक पंछी—ज्ञानी।
भंवर—भक्त।
निगम रसाल—वेदवृक्ष।
चारि फल—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष।
एक—मोक्ष।

बंसत—जवानी।
ग्रीषमरितु—बुढ़ापा।
तरिवर—शरीर।

स—२४

तरिवर—मेरुदंड।
फल—मस्तक।
अष्ट गगन—सुरति कमल।
पत्र—कसेरुकाएँ।
तुंबा—मस्तक।
गावनहार—श्वासा।
पंछी—प्राण।
मीन मारग—दे० प० घ।

स—२५

ततु—सिद्धांत।
रावल[1]—योगी या जीव।
बाजन—अनहद।
बरात—पांचो तत्व।
मौर—कुंडलिनी।
दूल्हा—जीव।
मड़वा—शरीर।
चारन देना—यश गाना।
समधी—चेतन।
पुत्र—जीव।
माता—माया।
दुलहिन—माया।
चौक—हृदय।
भात—विषय।
बरात—शरीर संघात।

१—नाथ सम्प्रदाय के रावल योगी।

स—२८

गैया—मनोवृत्ति (इच्छा)।
बिरंचि—ब्रह्मा।
नौ नारी—दे० प० ग।
पानी—विषय या वाणी
त्रिषा—तृष्णा
बहत्तर कोठा—दे० प० ग।
बजर केंवार—दे० प० घ।
खूँटा—ध्येय
डोरि—वृति।
चारिवृक्ष—चार वेद।
छौ साखा—छः शास्त्र।
अठारह पत्र—अठारह पुराण।
सात—सात द्वीप।
सातो—सात स्वर्ग या सात स्वर।
नौ—नौ खंड या नौ व्याकरण।
चौदह—चौदह भुवन या चौदह विद्या
पुर—शरीर।
सेत सींग—सत्वगुण।
खध—शुभ कर्म।
अखध—अशुभ कर्म।

स—२९

कलाल—ब्रह्म।
भाठी—संसार।
रस—विषय।
पात्र—इन्द्रियाँ।
पिलाने वाली—माया।
पीने वाले—संसारी।
मतवाले—कामी, क्रोधी।
खुमारी—तृष्णा।
पाँच—काम क्रोधादि।
चतुरा—ज्ञानी।

स—३१

हंसा—जीव।
छूरा—संशय।
गैया—माया।
बछरुआ—जीव।
घर—हृदय।
सावज—मन।
पारथ—जीव।
पानी—शान्ति।
भूमुरि—विषय विकार।
धूरि—विषय।
धरती—बुद्धि।
बादर—जीव।
भीट—हृदय।
ताल—शरीर।
हंस—जीव।
चहला—वासना।

स—३२

हंसा—जीव।
घर—शरीर।
खसम—मन।
परजा—जीव।
अमृत—परमपद।
विष—विषय।

स—३३

हंसा—जीव।
सरवर—शरीर।
मोतिया—ऐश्वर्य वैभव।

ताल—शरीर।
जल—प्राण।
कमल—काया या हृदय कमल।

स—३४

हंसदसा—जीवनमुक्त।
मुकताहल—सद्‌गुण।
चोंच—मनोवृत्ति।
मान सरोवर—दे० प० घ।
काग—संसारी।
नीर छीर—सारासार।

स—३५

रंहटा—राम।
पिडरिया—जीवात्मा।
कातना—नाम जप।
बहुरिया—उपासक।
तागा—साधन।
कुकुरी—समाधि।
सूत—जप।

स—३६

मूल—ज्ञान।
ठग—वञ्चक या मन।

स—३७

माटी—शरीर।
पवन—प्राण।

स—३८

बायें—वाममार्ग।
दहिने—दक्षिण मार्ग।

स—३९

हरि—ज्ञान।
पाँडुर—अज्ञानी।
गारुड़—ज्ञानी
मूस—विषयासक्तमन।
बिलाई—विषय।
जंबुक—अज्ञानी।
केहरि—ज्ञानी।
सोनहा—अज्ञानी।
कुंजल—ज्ञान।

स—४१

नाद—पवन (प्राण)।
बिन्दु—वीर्य।
रुधिर—रज।
घट—शरीर।
अस्ट कवल—दे० प० घ।

स—४३

थूल—स्थूल शरीर।
अस्थूल—सूक्ष्म शरीर।

स—४४

कारे मूड़—काले केशवाले युवा पुरुष
मैके—संसार।
ससुरे—आत्मपद।
साँई—शुद्ध चेतन।

स—४६

साँझ परे—शरीरांत होने पर।
भान—ब्रह्मज्योति।
गीत—अनहद।
धेनु—वृतियाँ।
अमावस—दे० प० घ।
नवग्रह—नवद्वार।
ग्रहन—अज्ञान।

स—५०

बिरवा—संसार।
सीस—ब्रह्मलोक।
बारह पंखुरी—बारह मास।
चौबीस पात—२४ पक्ष।
घन बरोह—रात दिन, घड़ी पल।
बिकार—काम क्रोधादि।

स—५१

रतन—ज्ञान।
नीर—संकल्प, विकल्प।
मच्छ—काम क्रोधादि।
केवट—ज्ञान।
घाट—मानंदी।
कमल—षटचक्र।

स—५२

बरषा—उपदेश।
पानी—शान्ति।
चिउंटी—अज्ञानी जीव।
हस्ती—ब्रह्मज्ञान।
छेरी—माया।
बीगर—जीव।
उदधि—ज्ञान।
छाछरी—चित्त वृति।
चौड़े ग्रेह—संसार।
मेढक—जीवात्मा।
सरप—अहंकार
बिल्ली—माया।
स्वान—जीव।
सिंघ—जीव।
सियार—भ्रम।
बन—शरीर।
मिरगा—संशय।
पारथ—जीव।
बान—ज्ञान।
उदधि—ज्ञान।
तरिवर—संसार।
मच्छ—मन।

स—५३

बिरवा—संसार।
पेड़—प्रणव।
तीनिडारा—सत, रज, तम।
चारि फल—अर्थ, धर्म काम, मोक्ष।
बेलि—आशा।
साखा पत्र—अनेक प्रकार की वासनाएँ

स—५४

सांई—शुद्ध चेतन।
सासुर—संसार।
जनाचारि—अंतःकरण चतुष्टय।
जना पांच—पांच तत्व।
माड़व—शरीर।
सखी सहेली—इन्द्रियाँ।
हरदि—सुख, दुःख।
भांवरि—भ्रम या वासना।
गांठि—जड़ चेतन ग्रन्थि।
सुवासिनी—वाणी।
चौके रांड—भाँवर पड़ते ही विधवा हो जाना।
सांई—चैतन्य।

बाट—सतसंग।
समधी—संत।

स—५५

सिंघ—जीव।
सहदूल—मन।
हर—सकाम कर्म।
सीकस—संसार।
धान—आशा।
भलुइया—लालची गुरु।
चाखुर—स्वार्थमय ज्ञान।
छागर—गुरुवा।
कागा—मलीन चित्त वाले।
कापर—शरीर।
बगुला—वञ्चक।
माखी—अहंकारी।
छेरी—माया।
बाघ—जीव।
गाई—इन्द्रियाँ।
बन—हृदय।
रोझ—काम क्रोधादि।
गोह—अहंकार।

स—५६

राजा—मन।
देस—संसार या शरीर।
रैयति—जीव।
इत—मानव शरीर या इहलोक।
उत—पशु आदि शरीर या परलोक (स्वर्ग)।
जम—मन या काल।
पेड़—वासना।
उतपति परलै—जन्म मरण।

स—५७

पानी—(वाणी) उपदेश।
पषान—(जड़) अज्ञानी।
रेखा—हृदय।
सहस घड़ा—दे० प० ग।
सीत अंग—बुढ़ापा।
सनिपात—(त्रिदोष) काम, क्रोध, लोभ।
रोगिया—संसारी।

स—५८

हरि—जीव।
दव—(विकार) काम क्रोधादि।
पानी—वाणी।
अग्नि—विषय।
नौ नारी—पांच तत्व और अंतःकरण चतुष्टय।
सहर—शरीर।
पहरू—जीवात्मा।
पुरिया—शरीर।
बस्तु—आत्मा।
कुबजा पुरुष—अविवेक।

स—६१

जाल—कर्म।
जाल फैलाने वाला—मन।
राम—चैतन्य।
या घर—मानव देह।
वा घर—पशु आदि शरीर।

स—६२

माई—माया ।
दूनौ कुल—लोक, परलोक ।
सासु—माया ।
ननद्—कुमति ।
पटिया बांधना—वश करना ।
भसुर—अविवेक ।
मांग जारना—विधवा करना ।
नारि—अविद्या ।
सरवर—शरीर ।
जना पांच—पंच ज्ञानेन्द्रियाँ ।
कोखिया में रखना—वश करना ।
दुइ औचारी—राग द्वेष और अंतः करण चतुष्टय ।
परोसिनि—कल्पना ।

स—६३

फुलवा—कमल (सहस्रदल कमल) ।
भंवर—जीव या मन ।
गगन मंडल—ब्रह्मांड ।
फूल—संसार या शरीर ।
मालिनि—माया या सुरति ।
भौंरा—जीव ।

स—६४

जोलहा—जीव ।
ताना—राम नाम ।
अहुँठा—शरीर ।
चरखी—चारोवेद ।
सर खूंटी—राम नारायण (जड़ चेतन) ।
कठवत—संसार ।
माड़ी—पंचभूत (शरीर) ।
गोड़ा—इड़ा पिंगला ।
मांझ दीप—सुषुम्ना ।
त्रिभुवननाथ—मन ।
मुररिया—नाम की गांठ ।
पाई—अभ्यास ।
भरना—कुम्भक ।
बै—राम (रकार, मकार) ।
तिहुलोक—त्रिकुटी ।
करिगह—तीनो लोक ।
आदि पुरुष—चैतन्य ।

स—६५

जोगिया—जीव ।
नगर—शरीर ।
पांच नारी—पंचप्राण ।
गुफा—शरीर ।
कंथा—शरीर ।
धजा—मेरुदंड ।
खप्पर—खोपड़ी ।
करवा—हृदय ।

स—६६

जोगिया—अज्ञानी ।
नगर—प्रपंच ।
काला चोलना—अज्ञान ।
कंथा—शरीर ।
अधारी—जीव ।
अमृत बेली—दे० प० ध ।

स—६८

चरखा—शरीर ।
बढ़ैया—मन ।

कातना—कर्म करना ।
सूत हजार—दे० प० ग ।
बाबा—गुरु ।
बर—देवता ।
नगर—शरीर ।
बिटिया—अविद्या ।
बाप—जीव ।
समधी—विवेक ।
घर—हृदय ।
लभधी—अविवेक ।
भाय—कुविचार ।
गोड़े—विवेक विचार ।
चूल्हा—संसार ।
बढ़ाय—(कर्ता) ईश्वर ।

स—६९

जंत्री—चैतन्य ।
जंत्र—(वाद्य) शरीर ।
अष्ट गगन—सुरति कमल ।
राग छतीसौ—दे० प० ग ।
नाल—मुख ।
तुँबा—श्रवण ।
तार—जीभि ।
चरई—नासिका ।
मोम—माया ।
गगन मंडल—दे० प० ध ।

स—७१

चात्रिक—जीव ।
जल—आत्मा ।

स—८२

गोरी—कुंडलिनी ।
मंदर—अनहद ।
षट चक्र—दे० प० ग ।
कोल्हू—कुंडलिनी ।
ब्रह्म—रजोगुण ।
अगिन—योगाग्नि ।
मच्छ—मन या सुरति ।
गगन—ब्रह्मांड ।
अमावस, ग्रहन } दे० प० ध ।
घन—सहस्रार ।
त्रिकुटी—दे० प० ग ।
मंदर—अनहद ।
पुहुमी—पिंड ।
पानी—वायु ।
अंमर—ब्रह्मांड ।

स—८५

बीबी—सुमति ।
हरम—कुमति ।
महल—हृदय ।
मियाँ—जीव ।
नै मन सूत—दे० प० ग ।

स—८६

घर—हृदय ।
कंदला—(कीचड़) माया मोह ।
हंस—विवेकी ।
कागन—संसारी ।
पानी—शरीर
घट—शरीर ।
कामिनि—माया ।
मृगा—मन ।
चारि दिग—दे० प० ग ।
रूम—इड़ा ।

साम—पिंगला।
डीली—सुषुम्ना।
जम—काल।

स—८७

बन—हृदय।
कंदला—गुफा।
मातु—मन।
बपुबारी—शरीर रूपी बाड़ी।
मृगा—आनन्द।
सर—काम क्रोधादि।
रावल—जीव।
खेड़ा—शरीर
मूल—मूलाधार।
धनुष—ध्यान।
बान—ज्ञान।
षटचक्र—दे० प० ग।
कमल—दे० प० घ।
सावज—काम, क्रोध, लोभ, मोह मदादि।

स—८८

सावज—संसार।
पेट फारना—विचार करना।
मांसु—विषय।

स—९५

नगर—संसार या शरीर।
कोतवलिया—(रखवाली) गुरुपन।
मासु—विषय।
गीध—विषयासक्त मन।
मूस—अज्ञानी।
मंजार—स्वार्थी गुरु।
कड़हरिया—पार उतारने वाले।
दादुल—अज्ञानी।
सरप—अहंकार।
बैल—जड़ बुद्धि।
बियाय—बढ़ना।
गाय—सात्विक बुद्धि।
बछवा—संकल्प।
सिंह—जीव।
सिआर—मन।

स—१००

माय—माया।
पुत्र—जीव।
धिया—बुद्धि।
सासु—बासना।
ननद—सुरति।
मादरिया—मन।
बेटी—इच्छा।
हरि—जीवात्मा।
कूकुरी—माया।

स—१०१

धरती—मूलाधार या सुरति।
अकास—ब्रह्मांड।
चिउटी—सुरति।
हस्ति—मन।
पवन—प्राण।
परबत—मन।
बिरछ—संसार।
सरवर—शरीर।
हिलोर—कल्पना।
चकवा—जीव या मन।

स—१०६

भँवर—काले केश।
बग—श्वेत केश।
रैनि—जवानी।
दिवस—बुढ़ापा।
काचेबासन—शरीर।
काग—कामना।
भुजा—मन या शरीर।

स—१११

पानी—आत्मा।
पावक—त्रिताप।
अंधा—संसार से विमुख।
आखिन—ज्ञान।
गाय—माया।
नाहर—जीव।
हरिन—तृष्णा।
चीता—संतोष।
कागा—अविवेक।
लंगर—विवेक।
बटेर—अज्ञान।
बाज—ज्ञान।
मूस—भय।
मंजार—निर्भय।
स्यार—मन।
स्वान—अज्ञानी।
दादुल—भ्रम।
पांच भुवंगा—ज्ञान, विवेक, वैराग, सम, दम।

क—१

रोहू—मन।
ठाकुर—यमराज।
सांवत—यमदूत।
केवट—यमराज।
समर—ज्ञान।
माछ—मन।
डेहरि—हृदय।
पेलना—तरुणावस्था या शरीर।
घाम—त्रयताप।
भूभुरि—मानसिक ताप।
छतुरिया—सतसंग।
सासु—माया।
ननद—कुमति।
गुर—मेरुदंड।
गोनि—नाड़ी नस।
ताजी तुरुकी—विवेक विचार।
काठ का घोरा—कर्म।
दूलहा—जीव।
दुलहिन—वासना।
नौका—नरतन।

क—२

कुंभरा—मन।
चमरा गांव—शरीर।
कोरिया—कर्मी जीव।
बेठ—प्रारब्ध।
छिपिया—उपासक।
नौवा—मन।
नाव—शरीर।
बेरा—नरतन।
राउर—चैतन्य।
गाँव—शरीर।

पांच तरुनि—दे० प० ग।
जेठ—मन।
जेठानी—माया।
पिया—चैतन्यात्मा।
भैंसिन्ह—तामसी वृतियाँ।
बकुला—मन।
तकुला—परमपद।
गाइन्ह—सात्विकीवृतियाँ।
जतइत—पारलौकिक।
कोदइत—लौकिक।
दुइचकरी—दे० प० ग।
बान—प्रेम।

क—४

सहस नाम—दे० प० ग।
कानि तराजू—अधूरा विचार।
सेर—मन।
तिन पौवा—त्रिगुणात्मक।
पसेरी—ज्ञानेन्द्रियाँ।
पासंग—इच्छा।

क—१०

पिछौरा—प्रकृति।
चिलकाई—उत्तार चढ़ाव।
रमुराई—रमैया राम।
जोलहा—जीव।
फाटि—शरीर।
हीरा—जीव।

क—११

ननदी—कुमति।
खसम—जीव।
बाप—मूलाज्ञान।
दुइमेहररुआ—माया, अविद्या।
जेठानी—माया।
माई—ममता।
पिता—अज्ञान।
सरा—ज्ञानाग्नि।
लोग कुटुम—काम, क्रोध, लोभ, मोह मदादि।

ब—१

बंसत—परमपद।
अगिन—ज्ञानाग्नि।
वन—हृदय!
पनिया—भक्ति।
पौन—प्राण।
अकास—ब्रह्मांड।

ब—२

बंसत—परमपद।
मेरुदंड—दे० प० घ।
अष्ट कमल—दे० प० ग।
अग्नि—ब्रह्माग्नि।
नौ नारी—दे० प० ग।
परिमल गाँव—ब्रह्मांड।
सखी पाँच—दे० प० ग।
पुरुष बहत्तर—दे० प० ग।

ब—३

मेहतर—सद्गुरु।
रितु बंसत—परमपद।
पुरिया—कामना।
पाई—प्रयत्न।
सूत—प्राण।

खूंटा तीन—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना ।
सर तीन सौ साठ—शरीर की अ-स्थियाँ दे० प० ग ।
नारि—नाड़ी ।
जोलाहिन—जीवात्मा ।
नचनिया—इन्द्रियाँ ।
करिगह—शरीर ।
दुइ गोड़—दोनों श्वासा ।
पांच पचीस—पांच तत्व पच्चीस प्रकृतियाँ ।
दस द्वार—शरीर के दस इन्द्रिय द्वार ।
सखी पांच—पंच विषय या ज्ञाने-न्द्रियाँ ।
धमार—उत्पात ।
चीर—शरीर ।

ब—४

बुढ़िया—माया ।
दांत—काम क्रोध ।
पान—ज्ञान ।
केस—अज्ञान ।
गंग—ज्ञान ।
नैन—अज्ञान अविवेक ।
कजरा—विवेक ।
पर पुरुष—जीव ।
जान पुरुषवा—ज्ञानी ।
अनजान—अज्ञानी ।
पूत—जीव ।
भतार—ईश्वर ।

ब—६

माई—माया ।
धंधा—सांसारिक प्रपंच ।
बिहान—(दूसरा) जन्म ।
बड़े भोर—जन्मते ही ।
आंगन—अंग (शरीर) ।
खांच—सकाम कर्म ।
गोबर—भोग ।
भात—विषय ।
बड़ा घैल—तृष्णा ।
पानी—विषय भोग ।
सैंया—जीव ।
पाट—वासना ।
हाट—योनि ।

ब—७

घर—हृदय ।
बाबुल—जीव ।
नारि—माया ।
एक बड़ी—(माया) प्रकृति ।
पाँच हाथ—पांचतत्व ।
पच्चीस—२५ प्रकृतियाँ ।
बागुलि—माया या वाणी का जाल ।
अहेरी—व्याधि ।

ब—८

करपल्लौ—हाथ का पंजा ।
नारि—माया या वाणी ।

चा—२

देवघरा—शरीर ।
कालबूत की हस्तिनि—विषय भोग ।
गज—मन ।

अकुंस—यातना।
घर घर—योनियाँ।
डांग—दुःख
बिलैया—माया।

बे—१

हंसा—जीव।
सरवर—शरीर।
चोर—मन।
घर—हृदय।
बिराने देस—चौरासी।
भवन—शरीर या हृदय।
पांच लदुनवा, नौ बहियाँ, दस गोनि — दे० प० ग।
खांखरि—खोपड़ी।
सरवर मीत—शरीर के सम्बन्धी।

बिरहुली—१

बिरहुली—विरही जीव।
असाढ़—प्रथमारम्भ।
सातो बीज—दे० प० ग सात बीज या सात सुरति।
फूल—संसार।
सांप—मन।
विषहर मंत्र—गुरु उपदेश।
गारुड़ि—सद्गुरु।
फल—ज्ञान।

हिं—१

हिंडोला—भ्रम।
खंभा—पाप, पुण्य।
मेरु—माया।
मरुवा—लोभ।
भंवरा—विषय।
कील—कामना।
डांडी—शुभाशुभ।
पटरिया—कर्म।

हिं—२

हिंडोला—मन।
खंभा—लोभ, मोह।
रविसुत—यमराज।
धरती अकास—पिंड ब्रह्मांड।

स—८

सम्बल—ज्ञान।
पुर—मनुष्य तन।
झालि—(अंधेरा) अज्ञान।
दिन आथये—शरीरान्त होने पर।

स—९

सम्बल—ज्ञान।
बनिया—सद्गुरु।
हाट—सतसंग।

स—१६

हंसा—जीव।
सरवर—शरीर।

स—१७

हंसा—विवेकी।
बग—अविवेकी।
ताल—संसार।
छीर—सद्गुण।

स—१८

हरनी—बुद्धि।
ताल—शरीर।

अहेरी—व्याधि।
म्रिग—जीव।
भाल—ताप।

स—२१

आधी साखी—अर्ध मात्रा।

स—२५

जरद् बुंद्—रजो वीर्य।
जल कूकुही—शरीर।

स—३२

सम्बल—ज्ञान।
परोहन—विवेक।

सा—३३

सिखर—ब्रह्मांड।
पिपील—बुद्धि।
खलकन—संसारी।

सा—३६

परबत—ब्रह्मांड।
हर—प्राण।
घोरा—मन।
गांव—संकल्प।

सा—३७

चंदन—जीव।
बास—वासना।
बन—संसार।

सा—३८

चंदन—जीव।
सरप—अहंकार।
विष—विषय।
अमृत—सद् उपदेश।

सा—३९

मोदाद्—काला पत्थर।
सावज—कुत्ता।

सा—४२

झिलमिल—ज्योति।
कालपुर—मन नगरी।

सा—४४

बन—संसार।
बिहंड़े—हठयोग।
करहा—मन या जीव।

सा—४९

मलयागिरि—गुरु या संत।
ढाक पलास—अज्ञानी।
बेना—शून्य हृदय (अहंकारी)।

सा—५०

पगु—शरीर।
नगर—परमपद या दसवाँ द्वार।
नौ-कोस—पंच विषय और अन्तःकरण चतुष्टय या नव द्वार दे० प० ग।
डेरा पड़ना—मर जाना।

सा—५१

झालि—(अंधेरा) अज्ञान।
दिन आथये—वृद्धावस्था।
सांझ—मृत्यु
रसिक—नाना देवी देवता।
बेसवा—जीवात्मा।

सा—५२

छौ मास—साधन अवधि।
आध कोस—अर्धमात्रा (माया)।
गांव—चेतन धाम।

सा—५६

दरपन की गुफा—संसार।
सुनहा—मनुष्य।
भूंकना—स्त्री, पुत्र, धनादि के लिये प्रयत्न करना।

सा—६७

आगि—कामाग्नि।
समुद्र—संसार या शरीर।

सा—६८

लाई—(अग्नि) कामाग्नि।
लावनहार—जीव।
छप्पर—आत्मा।
घर—शरीर या हृदय।

सा—६९

बूंद—जीव।
समुद्र—ईश्वर या संसार।

सा—७०

जहर—विषय विकार।
जमी—हृदय।
अमी—सद्‌उपदेश।

सा—७१

धौकी—गर्भवास या संसार।
लाकड़ी—मनुष्य या जीवात्मा।
लोहार—वासना या यम।
दूजी बार डाहना—दूसरी योनि में जन्माना।

सा—७२

बिरह—विरहाग्नि।
लाकड़ी—मनुष्य या जीवात्मा।
जरना—वासना क्षय होना।

सा—७६

काठ की कोठी—शरीर।
आगि—वासना।
पंडित—अहंकारी।
साकट—अपठित।

सा—८५

भाल—संशय।
तीर—भ्रम।
चुंबक—ज्ञान।
पाहन—कर्म।

सा—१०१

काला सरप—अहंकार।

सा—१०३

काली काठी—शरीर।
काला घुन—संशय।
काल—संशय।

सा—१११

स्वान—मन।
चौक—सतसंग।
ऐपन—विषय।

सा—११४

रतन—चैतन्य।
माटी—शरीर।

सा—११६

खोवा—सद्‌उपदेश।
छांछ—व्यवहारिक ज्ञान।

सा—१२६

राउर—चैतन्य।

चारो सैन—चारों वेद।

सा—१२७

चौगोड़ा—साधन चतुष्टय।

व्याधा—मन।

मूवा—जीवन मृतक।

काल—कल्पना।

सा—१२८

बिना मूड़ का चोर—मन।

सा—१२९

चक्की—विषय वासना।

दुइ पट—जन्म मरण।

सा—१३०

चारि चोर—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार।

पानही—विवेक विचार।

चारिउ दर—चारो खानि।

थूनी—अध्यास।

सा—१३१

दूध—ज्ञान।

घीव—विवेक।

सा—१३२

खांड़—मुक्ति (गुरुपद)।

खारी—विषय विकार या सकाम कर्म।

सा—१३३

बिरवा—विषय।

घर—हृदय।

सरप—अहंकार।

सा—१४२

सांपिन—माया।

विष—विषय।

बाट—संसार।

सा—१४४

तामस—तमोगुण युक्त प्रधान माया।

तीन गुन—सत, रज, तम।

भंवर—मन।

एकै डारी—माया।

तीन फल—(भांटा) मोह (ऊख) दुःख (कपास) सुःख।

सा—१४५

मंतग—मन।

गइयर—सात्विकी वृति।

सचान—(मनसा) कामना।

सा—१४६

गयन्द—मन।

महावत—जीव।

अंकुस—ज्ञान।

सा—१४७

चूहड़ी—माया।

चूहड़ा—मायासक्त।

बाप—ईश्वर।

पूत—जीव।

सा—१५०

पीपरि—माया।

खसम—चैतन्य।

सा—१५१

साहू—सद्गुरु या चेतन।
चोर—वञ्चक गुरु या मन।

सा—१५५

अथाइया—बैठक
खेत—संसार
बाघ—दुर्जन।
गदेरा—मूर्ख।
गाय—सज्जन।

सा—१५६

चारि मास—चारों युग।
घन—उपदेश।
जड़—अज्ञान।
बखतरी—वस्त्र।
तीर—ज्ञान

सा—१५८

ससै—तन।
सोनहा—मन।
अहेरी—काल।
डांग—संसार या शरीर।

सा—१६२

मूढ़—अज्ञान।
पाखर—वस्त्र।
वाहनहारा—उपदेशक।
बान—ज्ञान (उपदेश)।

सा—१६३

सेमर—संसार।
सुगना—जीव।
छिउले—परलोक।

सा—१६५

सेमर—संसार।
सुगना—जीव।
दुइ टेढ़ी—कनक और कामिनी।
दे० प० ग।

सा—१८४

सहना—काल।
पयार—काया।

सा—१९७

नौ मन दूध—दे० प० ग।
टिपका—अहंकार।
दूध—सद्गुण।
घ्रित—विवेक।

सा—२१७

बेलरी— माया।
जर काटना—त्यागना।
सींचना—चाहना।

सा—२१८

बेलि—माया।
फल—जन्म और मरण।
फूलवा—शरीर।

सा—२२१

करुवाई बेलरी—माया।
करुवा फल—जन्म मरण।
सिद्ध—सिद्ध होना।

सा—२२२

बास—महिमा।
बीज—वासना।
जामना—जन्म लेना।

सा—२३५

लोहा—अज्ञान ।
नाव—शरीर ।
पाहन—कर्म ।
विष—विषय विकार ।

सा—२६०

रतन—आत्मधन ।
रेत—भ्रम ।
कंकर—विषय ।

सा—२६३

गुनिया—ज्ञानी ।
निरगुनिया—अज्ञानी ।
बैल—मूर्ख ।
जायफर—सद् उपदेश ।

सा—२६४

अहीर—श्रीकृष्ण (सगुन ब्रह्म)
खसम—ईश्वर (निर्गुण ब्रह्म)

सा—२७४

बन—ब्रह्मांड ।
सिंघ—मन ।
पंछी—प्राण ।

सा—२८५

खेत—हृदय ।
बीज—वासना ।
बोना—साधन ।

सा—२६७

जंत्र—शरीर ।
तार—श्वास ।
बजावनहार—जीव ।

सा—३११

रास—सद्‌गुण ।
घर का खेत—निज स्वरूप ।

सा—३२८

सिंघ—जीव ।
बन —शरीर ।

सा—३३७

सुरहुर पेड़—शरीर ।
अगाध फल—मोक्ष ।
पंछी —मन ।

सा—३३६

दौ—संसार ।
जरना—नाश होना ।
हरियर होना—पैदा होना ।
वृक्ष—संसार ।
जर काटना—त्यागना ।
फल—मोक्ष ।

शुद्धी-पत्र

बीजक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१	११	ज ई	जाई
२३	६	अधा ा	अधारा
२४	२	भाम	भरम
३२	१८	×	१०
३३	८	अग्नि	अगिनि
३४	६	हिग्न्य	हिरन्य
४७	१६	जना चारि (पूरी पंक्ति)	संग न सूती (पूरी पंक्ति)
४७	२०	संग न सूती (पूरी पंक्ति)	जना चार (पूरी पंक्ति)
४६	६	बिकार, बिन ईधन	बिकार बिन ईधन,
५२	५	गुप्ता धारी	गुप्ताधारी
६२	११	गल	गैल
७८	३	इकरान्हि	इकराइन्हि
८०	६	मेरू दंड	मेरुदंड
८१	८	है	है
१०२	५	खेलै	खुलै
१०८	२०	सुनहा	सहना
१११	१८	हलाहन	हलाहल
१११	२२	और	ओर
११३	१६	२२७	२३७
११६	१६	के ते	केते

प० क, कोश

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२	१०	०	सं०
५	२	३१	ब्राह्मांड	ब्रह्मांड
१३	१	१	अ० य०	अव्य०
१३	१	१६	अ० य०	अव्य०
१७	२	१३	गुरूवा	गुरुवा
१६	२	२३	कुक्कुम	कुक्कुभ
२१	१	२२	सात्वकी	सात्विकी

नाट—बीजक मूल पृष्ठ ११२ में साखी २१३ से २१६ तक की संख्या के स्थान पर २२३ से २२६ पढ़िये।

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	१	१	गोता	गोत
		१८	की कृष्ण	श्री कृष्ण
		२६	कंडलनी	कुंडलिनी
३६	२	६	गुरू पद	गुरुपद
३७	२	२३	चोखा	चोरवा
४०	२	४	माय	माया
४५	१	१८	मौजा	मौज
५०	२	१६	बैब	बैल
५४	१	१	तुरूकी	तुरुकी
५६	१	१८	सद्गुरू	सद्गुरु
६२	२	१४	०	सं०
६४	२	१४	पिलंगा	पिंगला
६६	२	२	सं०	सं० ब्रह्मांड
७४	२	२८	विरहग्नि	विरहाग्नि
१००	२	१७	मंडन	मंडान
१०३	२	२	मसकल	मसकला
		२७	स० महतर	सं० महत्तर
१०४	१	२	गुरुपाद	गुरुपद
१०७	२	२१	मकराने	मुसकराने
१०६	२	४	आ० निजपद	आ० संसार
१२४	१	२८	बयान	बयाना
१२६	१	४	आपस्तं वाद	आपस्तबादि
		६	उशनसू	उशनस्
१३२	२	६	सं० पु०	सं० स्त्री०

प० ग, संख्यावाची शब्द

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	२	अकास	आकाश
४	२	२०	बोताल	बेताल
५	१	५	इरिवर्ष	हरिवर्ष
		१५	पस्यनी	पयस्विनी
६	१	२४	प्रथमाधिप	प्रमथाधिप
		२८	ब्रह्माण	ब्राह्मण

नोट—प० ङ के पृष्ठ १४, १५ में साखी संख्या ८ से ३२ तक में स के स्थान पर सा पढ़िये।

सहायक ग्रन्थों की सूची

बीजक ग्रन्थ

१—टीका विचारदास शास्त्री प्रथम संस्करण स० १९८३ वि० काशी
२—टीका विचारदास शास्त्री दूसरा संस्करण सं० १९२८ ई० प्रयाग
३—शिशुबोधनी टीका स्वामी हनुमानदास षटशास्त्री सं० १९२६ ई० पटना।
४—संस्कृत व्याख्या हिन्दी टीका टीकाकार स्वामी हनुमानदास षटशास्त्री १९३९ ई० बड़ौदा।
५—संस्कृत बीजक प्रथम भाग स्वामी हनुमानदास षटशास्त्री १९५० ई० बड़ौदा
६—टीका श्री पूरन साहेब बुरहानपुर सं० १८९२ ई० लखनऊ
७—टीका पूरन साहेब बुरहानपुर सं० १९८३ वि० बम्बई
८—टीका महाराज विश्वनाथ सिंह रीवाँ सं० १८९८ ई० बनारस (कुछ भाग)
९—टीका महराज विश्वनाथ सिंह रीवाँ १९०६ वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई।
१०—टीका महराज विश्वनाथ सिंह रीवाँ सन् १९१५ नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
११—टीका पं० महराज राघवदास जी सं० १९३७ बनारस।
१२—टीका महर्षि शिवव्रत लाल एम० ए० गोपीगंज बनारस।
१३—टीका महात्मा मिहीदास जी।
१४—बीजक अंग्रेजी अहमदशाह सं० १९१७ हमीरपुर।
१५—मूल बीजक स्वामी हनुमानदास षटशास्त्री।
१६—मूल बीजक साधु लखनदास जी कबीर चौरा काशी।
१७—मूल बीजक महराज राघवदास जी कबीर मठ काशी।
१८—मूल बीजक कबीर मंदिर सियाबाग बड़ौदा।
१९—हस्त लिखित मूल प्रतियाँ श्री उदयशङ्कर जी शास्त्री के पुस्तकालय से जो शास्त्री जी के कथनानुसार इन कबीर पंथी स्थानों से प्राप्त हुई हैं। विद्दुपुर, ४ प्रतियाँ, फतुहा, २ प्रतियाँ, उदयपुर, १ प्रति, इन्दौर, १ प्रति, सेवकदास बसहा, १ प्रति तथा एक अन्य छोटी प्रति।
२०—हस्त लिखित प्रति कबीर मंदिर कबीर चौरा काशी। (इस प्रति से केवल पद संख्या तथा कुछ शब्द मिलाये गये हैं)।

कबीर सम्बंधी अन्य ग्रन्थ

१—कबीर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी।
२—संत कबीर डा० रामकुमार वर्मा एम० ए० प्रयाग।
३—कबीर का रहस्यवाद डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०
४—कबीर पदावली डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०

५—कबीर ग्रन्थावली नागरी प्रचारणी सभा काशी।
६—कबीर योग (उर्दू) महर्षि शिवव्रत लाल।
७—कबीर मन्शूर (उर्दू) साधू परमानंददास जी क० पं० फीरोजपुर।
८—कबीर साहेब का साखी ग्रन्थ टिप्पणी विचारदास शास्त्री।
९—पंचग्रन्थी टीका पं० महराज दास जी।
१०—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल।

अन्य ग्रन्थ

१—गोरखबानी डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।
२—जायसी ग्रन्थावली पं० रामचन्द्र शुक्ल।
३—पद्मावति जी० ए० ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी कलकत्ता।
४—गरीबदास जी की बाणी सम्पादक स्वामी मंगलदास जयपुर।
५—तुलसी ग्रन्थावली नागरी प्रचारणी सभा काशी।
६—सूरसागर नागरी प्रचारणी सभा काशी।
७—रामायण गीता प्रेस गोरखपुर।
८—गुटका विश्राम सागर नवलकिशोर प्रेस लखनऊ।
९—प्रबोध चन्द्रोदय नाटक बम्बई।
१०—ब्राह्मण ले० भगवान स्वामी सुखानंद जी लखनऊ।
११—शिरो रोग विज्ञान ले० पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य प्रयाग।
१२—गाइत्री तंत्र श्रीराम शर्मा।
१३—भक्तमाल नाभा जी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ।
१४—नाथ सम्प्रदाय श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी।

कोश

१—हिन्दी शब्दसागर नागरी प्रचारणी सभा काशी।
२—विश्व-कोश श्री नगेन्द्रनाथवसु प्राच्यविद्या महार्णव कलकत्ता १९२२ ई०।
३—संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा इलाहाबाद।
४—श्रीधर भाषा कोश। ५—रामायण कोश। ६—अनेकार्थ मंजरी।
७—करीमुल्लुगात। ८—लुगात किशोरी।

पत्रिकायें

१—कल्याण गीता प्रेस गोरखपुर।
साधनांक, शिवांक, योगांक, पद्मपुराणांक, मार्कण्डेय, ब्रह्मपुराणांक, रामायणांक, हिन्दू संस्कृत अंक।
२—संतबाणी जयपुर।